गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा पटियाला, श्रीगंगानगर व नेपाल से प्रसारित
साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

Impact Factor : 7.834

ISSN : 2321-8037
May-June 2025
Volume 13, Issue 5-6

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Editor :
Dr. Rekha Soni

Chief-Editor :
Dr. Naresh Sihag Adv.

संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष
डॉ. विश्वकीर्ति

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

www.ginajournal.com

संस्थापक संरक्षक :
स्मृति शेष
श्री हरविन्द्र कमल चौधरी

वर्ष : 13 | अंक : 5-6(1) | मई-जून : 2025 | आईएसएसएन : 2321-8037

सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी
शिक्षा विभाग, टांटिया वि.वि.,
श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

प्रधान सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान,
भिवानी (हरियाणा)

मार्गदर्शन :
डॉ. राजेन्द्र गोदारा
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

डॉ. लक्ष्मी जोशी
त्रिभुवन वि.वि. काठमाण्डू।

डॉ. सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स
एंड कम्युनिकेशन,
सरकारी पॉलिटेक्निक कॉलेज फॉर
गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।

श्री श्रेष्ठ चौधरी,
सीनियर मैनेजर,
स्टेट बैंक ऑफ इंडिया,
साहिबजादा अजित सिंह नगर,
मोहाली, पंजाब।

कानूनी सलाहकार :
डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट,
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
नूंह (हरियाणा)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।

डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर

डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय
भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज
धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज,
अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
यूक्रेन।

श्री हेमराज न्यौपाने
नेपाल।

डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।

डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।

डॉ. संदीप
ओम विश्वविद्यालय, हिसार।

प्रो. मधुबाला
राजकीय महिला महाविद्यालय, हिसार।

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग
विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश

डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग हरियाणा

डॉ. राजेश शर्मा
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय,
सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुद्दस्सिर अहमद भट्ट
हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर

डॉ. सीहेच वी. महालक्ष्मी
सीहेच एसडीएसटी थेरेसा महिला
महाविद्यालय, एलुरू, आंध्र प्रदेश

डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।

डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर,
अंकारा विश्वविधालय, अंकारा, टर्की

डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, टांटिया, वि.वि.

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक **डॉ. नरेश सिहाग,** एडवोकेट ने **मनभावन प्रिन्टर्ज,** पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

(Journal of Literature, Arts, Science, Commerece, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा।
सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

Impact Factor : 7.834

ISSN : 2321-8037

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक / शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान / अभियांत्रिकी / कृषि / चिकित्सा / पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा / मानविकी / कला / सामाजिक विज्ञान / पुस्तकालय / शिक्षा / शारीरिक शिक्षा / वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. रेखा सोनी	07–07
2.	श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से नारी विमर्श	डॉ. रूद्र नारायण	08–12
3.	**Environmental Law : Mitigating Pollution and Promoting Sustainability**	**Anuj Bishnoi**	**13-19**
4.	**Environmental change and its impact on the economic life of the Birhor tribe of the North Chotanagpur Plateau**	**Dr. Aravind Kumar**	**20-31**
5.	नालंदा जिला में बच्चों के टीकाकरण में आंगनबाड़ी सेविकाओं की भूमिका	पूर्णिमा कुमारी	32–36
6.	जयश्री राय की कहानियों में चित्रित स्त्री-पुरूष संबंध (प्रेम संबंध के सन्दर्भ में)	शिवराजकुमार कल्लूर	37–41
7.	रामायण कालिन धार्मिक जीवन : एक ऐतिहासिक अध्ययन	डॉ. सिकन्दर कुमार वर्मा	42–45
8.	**The Hammer & Sickle : The Ultimate Symbol of Communism**	**Vikram Rajat Dungdung**	**46-51**
9.	**Role of ICT & AI in Enhancing Public Service Delivery Systems**	**Amarjeet Kumar**	**52-58**
10.	महिला और बौद्ध संघ की स्थापना : बौद्ध धर्म में लिंग समानता का चिंतन	प्रीति भारती	59–64
11.	'आवाजें' कहानी में चित्रित दलित प्रतिरोध	अमृता सी. एस.	65–69
12.	पंचपरगनिया भाषा शिक्षण में भाषा विज्ञान की भूमिका	अरूण कुमार प्रमाणिक	70–75
13.	लोकसाहित्य में लोकगाथा का वैशिष्ट्य	डॉ. डूरी शांति	76–82
14.	भाषा में व्याकरणिक शिक्षण का महत्व	सुरेखा लकड़ा	83–89
15.	शूद्रों की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धांत और डॉ. अंबेडकर के विचार	सुंदर लाल	90–97
16.	**The Varieties of Religious Experience : Phenomenological Approaches to Spirituality**	**Dr. Gauranga Das**	**98-105**
17.	श्रीग्वल्लदेवचरितमहाकाव्ये ग्वल्लदेवस्य चरित्र-चित्रण	सोनिया सैनी, डॉ० प्रतिभा शुक्ला	106–109
18.	पर्यावरण संरक्षण के प्रति इतिहास की भावना का प्रत्यक्षिकरण	डॉ. मनीश राठौर	110–113
19.	**NATIONAL MISSION ON LIBRARIES**	**ANIL KANT SAHU**	**114-121**
20.	**Reimagining Assessment to Align with 21st-Century Skill Development**	**Ishika Sen**	**122-123**
21.	नागार्जुन साहित्य में आर्थिक चिन्तन	डॉ. रंजीता कटकवार	124–130

22.	जौनपुर जनपद के स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के व्यक्तित्व, अध्ययन आदत एवं मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन	अनिल कुमार यादव, डॉ. राजेश कुमार सिंह (II)	131–136
23.	"SPEAK TO SELL" LINGUISTICS AS A MARKETING TOOL	Dr. R. Rekha, Dr. J. Sajitha, Dr. P. Vidhya	137-144
24.	भवानी प्रसाद मिश्र के खण्ड काव्य 'कालजयी' में मिथकीय चेतना	डॉ. हरिभजन प्रियदर्शी	145–150
25.	मध्यप्रदेश के श्योपुर जिले के सौंईकलां की स्थापत्यकला	डॉ. मीना श्रीवास्तव,. खेमराज आर्य	151–155
26.	विनयचन्द्रसूरि कृत 'काव्यशिक्षा' ग्रन्थ में प्रतिपादित अनेकार्थक शब्दों में द्वयक्षरकाण्ड	शिवराज मीणा	156–160
27.	शेखावाटी क्षेत्र के ग्रामीण समुदाय के लोक-देवता : बाबा मालदास	डॉ. कमल महला	161–165
28.	Romeo Juliet : Artistic Study	Dr. Sanyukta Thorat	166-172
29.	हिंदी भाषा शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की संभावनाएं	Hicky Devadas	173-177
30.	राजस्थान की पंचायती राज व्यवस्था में महिला सशक्तिकरण : न्यायिक दृष्टिकोण	रामचंद्र सिंह डॉ. संजुला थानवी	178–186
31.	The Impact of the Indian Knowledge System in Education	Dr. Vidhya. P, Dr. Reka. R, Dr. Sajitha. J	187-191
32.	नारी सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	सत्यवती कुमारी	192–196
33.	परिवार में नातेदारी का घटता महत्व : एक सामाजिक चुनौती	डॉ. दीपिका शुक्ला	197–200
34.	समाज और शिक्षा के क्षेत्र में डॉ. आम्बेडकर के जीवन दर्शन की प्रासंगिकता	डॉ. बिक्रम कुमार साव	201–205
35.	पर्यावरणीय चिंता, करियर प्राथमिकताएं और बच्चा न पैदा करने का निर्णय : वाराणसी के युवाओं की दृष्टि से	डॉ. चन्द्रशेखर सिंह	206–213
36.	श्रीमंत शंकरदेव और गुरू नानक : एक तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. करबी देवी	214–223
37.	'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक में व्यक्त सामाजिक सरोकार	डॉ. प्रकाश अठावले	224–229
38.	समग्र दृष्टिकोण और शैक्षणिक नींव (एनईपी–2020)	डॉ. कविता शर्मा	230–232
39.	पर्यावरण संरक्षण की भावना का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य	डॉ मनीष राठौर	233–235
40.	संत रैदास का जीवन दर्शन एवं लोकप्रचलित जनश्रुतियाँ	डॉ. परवीन वर्मा	236–239
41.	आंचलिकता और राष्ट्रीयता	प्रो.(डॉ.) विजयकुमार राऊत	240–242
42.	Study of Kinetics and Mechanism of Ligand Substitution Reaction of Tetraaza Macrocyclic Ligand with Tridentate Schiff Base Dianionic Ligand in Copper(II) Complexes	Dr. Ramdas Narsingrao Katapalle	243-247
43.	Reimagining Teacher Education : The Transformative Impact of NEP 2020	Harsh	248-254

सम्पादक की कलम से.....

परिवर्तन के संधि–क्षण में शोध की भूमिका

आपके हाथों में 'गीना शोध संगम' का यह 'मई–जून 2025' अंक एक नए युग की आहट के साथ पहुंचा है। जब बाहर दुनिया तेजी से बदल रही है–चुनावी हलचल से लेकर जलवायु परिवर्तन तक, तकनीक की उड़ान से लेकर मानव संबंधों की बदलती प्रकृति तक–तो शोध की भूमिका केवल अकादमिक जगत तक सीमित नहीं रह जाती, वह समाज की आत्मा में उतरती है। इस अंक की थीम है : 'समय की चाल और शोध की दिशा।' यह केवल एक वाक्य नहीं, बल्कि एक चुनौती है, जो हम सबके सामने खड़ी है। आज जब सोशल मीडिया पर क्षणिक जानकारी की बाढ़ है, तब शोध का कार्य–सत्य की पड़ताल और दीर्घकालिक समझ विकसित करना और भी जरूरी हो जाता है।

शोध : एक सामाजिक उत्तरदायित्व :– शोध केवल विश्वविद्यालयों और प्रयोगशालाओं तक सीमित नहीं है, वह एक सामाजिक उत्तरदायित्व है। जब एक ग्रामीण शिक्षक अपनी पाठशाला में पढ़ने की शैली बदलता है, जब एक किसान परंपरागत तरीकों की जगह नवाचार करता है, या जब कोई लेखक जनसंघर्षों को दस्तावेज करता है–ये सभी रूप अपने–अपने स्तर पर शोध ही हैं।

आज आवश्यकता है उस शोध की, जो समाज के हाशिये पर खड़े लोगों की आवाज बने, जो केवल आंकड़ों की नहीं बल्कि अनुभवों की भी पड़ताल करे। इसीलिए गीना शोध संगम का यह अंक शिक्षा, समाजशास्त्र, पर्यावरण, और भारतीय भाषाओं के विविध विमर्शों को समेटते हुए आपके समक्ष प्रस्तुत है।

समय की नब्ज पहचानना जरूरी है :– आज का युग 'डेटा' का युग है, परंतु इस असीम डेटा में 'दृष्टि' खो ना जाए, यह चिंता की बात है। इस अंक में प्रकाशित कुछ लेख इस द्वंद्व को बेहतरीन ढंग से उजागर करते हैं–कैसे तकनीक मानवता का साधन बन सकती है, और कैसे यह मानवता पर हावी भी हो सकती है। शोध तभी सार्थक है जब वह प्रश्न उठाने का साहस रखे और उत्तरों को समय के कसौटी पर परखे।

नवाचार और परंपरा का संगम :– शोध में नवाचार की बात होती है, लेकिन क्या नवाचार परंपरा को नकार कर ही संभव है? भारतीय ज्ञान परंपरा में शोध का अर्थ 'स्वाध्याय' रहा है–अपने भीतर झांकना, संसार को देखने का नया दृष्टिकोण पाना। यह दृष्टिकोण जब हमारी जड़ों से जुड़ता है, तब वह केवल शोध नहीं, वह एक सांस्कृतिक आंदोलन बन जाता है। हमारे इस अंक में शामिल कुछ लेख जैसे 'लोक साहित्य में पर्यावरण चेतना' या 'गांधी और वर्तमान शिक्षा प्रणाली' इसी दृष्टिकोण को सामने लाते हैं–जहाँ परंपरा के आलोक में वर्तमान की दिशा तय होती है।

शोध को जनभाषा से जोड़ना होगा :– यह भी एक विचारणीय प्रश्न है कि आज भी अधिकतर शोध अंग्रेजी में होते हैं, जिससे वे समाज के बड़े हिस्से से कट जाते हैं। शोध यदि जनकल्याण का माध्यम है, तो उसे जनभाषा से जुड़ना ही होगा। गीना शोध संगम इस दिशा में प्रतिबद्ध है कि शोध केवल विद्वानों के बीच न सिमटे, बल्कि गाँव–शहर, छात्र–शिक्षक, युवा–वृद्ध सभी तक पहुंचे।

हमारी भाषा में वह शक्ति है जो शोध को जनांदोलन बना सकती है। हमें हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में अधिक से अधिक गंभीर शोध सामग्री तैयार करनी चाहिए, ताकि शोध भारतीय संदर्भों में नई जमीन तोड़ सके। अंत में..इस अंक को पढ़ते समय एक बात याद रखें–शोध केवल तथ्य नहीं है, वह दृष्टि है। जब तक यह दृष्टि समाज को बेहतर बनाने की ओर न जाए, तब तक वह अधूरा है। आईए, हम सब मिलकर शोध को एक आंदोलन बनाएं–जिसका लक्ष्य हो ज्ञान से कल्याण तक।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 08–12

श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से नारी विमर्श

डॉ. रूद्र नारायण
सह–प्राध्यापक, इतिहास विभाग, डॉ. सी. वी.रमण विश्वविद्यालय, वैशाली, बिहार।

सारांश (Abstract) :–

यह शोध पत्र 'श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से नारी विमर्श' के अंतर्गत स्त्री चेतना, आत्मनिर्भरता, और आध्यात्मिक समता की अवधारणाओं का विश्लेषण करता है। गीता में प्रत्यक्ष रूप से स्त्री पात्रों की संख्या सीमित है, किंतु इसके दार्शनिक सिद्धांत– जैसे आत्मा की निरपेक्षता, कर्म का महत्व, और समत्व–नारी के आत्मबल, विचार स्वातंर्त्य, और सामाजिक मर्यादा को एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। यह अध्ययन यह दर्शाता है कि गीता केवल एक धार्मिक ग्रंथ न होकर स्त्री स्वतंत्रता एवं समानता के गूढ़ सिद्धांतों का भी आधार बन सकती है। शोध में यह भी विश्लेषण किया गया है कि कैसे गीता की शिक्षाएं आज की नारीवादी विचारधारा से संवाद स्थापित कर सकती हैं।

कुंजी शब्द (Keywords) :–

नारी विमर्श, भगवद्गीता, आत्मा, स्त्री चेतना, कर्मयोग, आध्यात्मिक समता, भारतीय दर्शन, स्त्री स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, गीता का स्त्री दृष्टिकोण।

प्रस्तावना :–

वर्तमान युग को यदि 'नारी जागरण का युग' कहा जाए, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। स्त्री चेतना, अधिकार और अस्मिता के सवाल आज के वैश्विक बौद्धिक विमर्श के केन्द्रीय बिंदु बन चुके हैं। नारी विमर्श केवल स्त्रियों की सामाजिक स्थिति या उनकी समस्याओं की चर्चा नहीं करता, बल्कि यह उनके अस्तित्व, आत्मसम्मान, स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता के गहन प्रश्नों को केंद्र में लाता है। यह विमर्श स्त्री को केवल एक जैविक सत्ता नहीं, बल्कि एक संपूर्ण 'मानव' के रूप में देखने की आवश्यकता पर बल देता है। इस सन्दर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा, विशेष रूप से श्रीमद्भगवद्गीता, एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण दार्शनिक ग्रंथ के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता, जो कि महाभारत के भीष्म पर्व का एक अंश है, न केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक है, बल्कि एक गहन दार्शनिक संवाद के रूप में भी स्थापित है। यह संवाद धर्म और अधर्म, आत्मा और शरीर, कर्म और निष्कर्म, मोह और विवेक के बीच के द्वंद्व को उजागर करता है। भगवद्गीता की यह विशेषता उसे केवल आध्यात्मिक या धार्मिक ग्रंथ के रूप में सीमित नहीं रखती, बल्कि इसे एक सामाजिक, नैतिक और दार्शनिक ग्रंथ के रूप में भी स्वीकार किया जाता है। यद्यपि गीता में स्त्री पात्रों की उपस्थिति नगण्य है, किंतु

इसके भीतर निहित सिद्धांत और दृष्टिकोण स्त्री विमर्श के लिए अत्यंत उपयोगी और प्रासंगिक बनते हैं।

पश्चिमी देशों में नारीवाद की शुरुआत 18वीं सदी से हुई, जिसका स्वरूप धीरे–धीरे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों की माँग तक पहुँचा। सिमोन द बोउवा, मैरी वोल्स्टोनक्राफ्ट, वर्जीनिया वुल्फ, जूडिथ बटलर आदि ने स्त्री को पितृसत्तात्मक व्यवस्था से मुक्ति दिलाने की दिशा में गंभीर प्रयास किए। उन्होंने स्त्री को एक स्वतंत्र अस्तित्व के रूप में स्वीकार करने की माँग की। वहीं, भारतीय स्त्री विमर्श की जड़ें अधिक गहरी और व्यापक हैं। यहाँ स्त्री विमर्श केवल बाह्य स्वतंत्रता तक सीमित नहीं रहता, बल्कि आत्मा की पहचान, कर्तव्य बोध और आध्यात्मिक चेतना से जुड़ जाता है।

भारतीय स्त्री विमर्श की यह विशेषता उसे पश्चिमी विचारधारा से भिन्न बनाती है। यहाँ नारी को केवल एक सामाजिक इकाई के रूप में नहीं, बल्कि 'शक्ति' के रूप में देखा गया है– एक ऐसी शक्ति जो सृजन भी करती है, संरक्षण भी करती है और आवश्यकता पड़ने पर विनाश भी कर सकती है। देवी दुर्गा, काली, सरस्वती, सीता, द्रौपदी, कुंती, मीराबाई, अक्का महादेवी, गार्गी, मैत्रेयी जैसी अनेक नारियाँ इस चेतना का प्रतीक हैं। इन नारियों का योगदान केवल सामाजिक या धार्मिक सीमाओं तक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक और दार्शनिक क्षेत्रों में भी व्यापक रहा है।

श्रीमद्भगवद्गीता इसी भारतीय ज्ञान परंपरा का एक जीवंत दस्तावेज है, जो आत्मा की अमरता, कर्म की प्रधानता और समत्व की शिक्षा देता है। गीता का सबसे मूलभूत सिद्धांत यह है कि 'आत्मा न कभी जन्म लेती है, न मरती है, न उसे जलाया जा सकता है, न काटा जा सकता है।' यह आत्मा न पुरुष है, न स्त्रीय न वर्ण आधारित है, न जाति आधारित। इस अवधारणा से यह स्पष्ट होता है कि गीता स्त्री को केवल एक देह या सामाजिक स्थिति के रूप में नहीं देखती, बल्कि उसे आत्मा के स्तर पर एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में स्वीकार करती है।

यह दृष्टिकोण अत्यंत क्रांतिकारी है, विशेष रूप से उस समय में जब स्त्रियाँ सामाजिक, धार्मिक और पारिवारिक बंधनों में जकड़ी हुई थीं। गीता का यह विचार कि हर व्यक्ति का 'स्वधर्म' है, जिसे निभाना उसका कर्तव्य है, स्त्री के लिए भी उतना ही प्रासंगिक है। यदि स्त्री अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेने में सक्षम हो, यदि वह अपने 'स्वधर्म' को पहचान सके और उसे निष्काम भाव से निभा सके, तो नारी सशक्तिकरण की दिशा में यह एक महत्त्वपूर्ण कदम होगा।

नारी विमर्श के संदर्भ में गीता की प्रासंगिकता को समझने के लिए हमें कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं पर ध्यान देना होगा :–

1. **आत्मा की निरपेक्षता :** गीता का यह दर्शन लिंगभेद की सीमाओं को तोड़ता है और व्यक्ति को उसके कर्म व चेतना के आधार पर परखने की प्रेरणा देता है।
2. **कर्म की प्रधानता :** स्त्री को निष्काम कर्म करने की प्रेरणा मिलती है। गीता का 'कर्मयोग' स्त्री को अपनी सामाजिक भूमिका में सक्रियता और आत्मबल का संबल देता है।
3. **मोह और बंधन से मुक्ति :** स्त्री को भावनात्मक और पारिवारिक बंधनों से ऊपर उठकर आत्मिक विकास की प्रेरणा मिलती है।
4. **स्वधर्म की पहचान :** गीता हर व्यक्ति को उसका 'स्वधर्म' निभाने का संदेश देती है, जो स्त्री को अपनी

स्वतंत्र भूमिका निर्धारित करने की शक्ति देता है।

इन सिद्धांतों के आलोक में यदि हम भारतीय समाज की नारी की स्थिति का मूल्यांकन करें, तो स्पष्ट होगा कि गीता की शिक्षाएँ केवल पुरुषों के लिए नहीं, बल्कि स्त्रियों के लिए भी उतनी ही उपयोगी हैं। वह उन्हें सामाजिक अन्याय, लिंग भेद और मानसिक उत्पीड़न से ऊपर उठने की दिशा दिखाती हैं।

इतिहास साक्षी है कि अनेक स्त्रियों ने गीता के सिद्धांतों को अपने जीवन में आत्मसात कर समाज को नई दिशा दी। महाभारत की द्रौपदी, जो न केवल अपमानित हुई, बल्कि अपने साहस और विवेक से धर्म की रक्षा का प्रेरक बन गई। कुंती, जो एक माँ के रूप में अपने कर्तव्यों को निभाते हुए भी एक दार्शनिक दृष्टिकोण अपनाती है। सावित्री, जिसने अपने पति के प्राणों के लिए यमराज से संघर्ष किया और ज्ञान, साहस, और धर्म का अनुपालन किया। गार्गी और मैत्रेयी, जिन्होंने वैदिक काल में दार्शनिक चर्चाओं में भाग लेकर यह सिद्ध किया कि स्त्री भी ब्रह्मविद्या की अधिकारी हो सकती है।

आज जब स्त्रियाँ शिक्षा, राजनीति, विज्ञान, साहित्य, कला, व्यवसाय, रक्षा, अंतरिक्ष और अन्य क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही हैं, तब भी सामाजिक, पारिवारिक और सांस्कृतिक बंधनों से उन्हें पूर्ण मुक्ति नहीं मिली है। उनके अधिकार, उनकी स्वतंत्रता और उनकी अस्मिता को आज भी चुनौती दी जाती है। ऐसे समय में गीता की शिक्षाएँ उन्हें एक नई दृष्टि और आत्मिक संबल प्रदान कर सकती हैं।

इस शोध का उद्देश्य गीता की शिक्षाओं को केवल धार्मिक परिप्रेक्ष्य में देखना नहीं है, बल्कि उनके माध्यम से स्त्री चेतना, सशक्तिकरण, आत्मनिर्भरता और आत्मसम्मान की आधुनिक परिभाषाओं को पुनः व्याख्यायित करना है। यह अध्ययन यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि गीता के दर्शन में निहित सिद्धांत आज के नारी विमर्श के साथ किस प्रकार गूढ़ रूप से जुड़े हुए हैं और वे किस प्रकार नारी को एक समग्र 'मानव' के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं।

उद्देश्य :-

1. श्रीमद्भगवद्गीता के सिद्धांतों के माध्यम से नारी चेतना और सशक्तिकरण की अवधारणा को समझना।
2. गीता के दार्शनिक सिद्धांतों को समकालीन नारी विमर्श के साथ जोड़ना।
3. भारतीय सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री की भूमिका को पुनर्परिभाषित करना।

शोध पद्धति (Research Methodology)

यह शोध कार्य मुख्यतः गुणात्मक (Qualitative) पद्धति पर आधारित है। इसमें गीता के विभिन्न श्लोकों और टीकाओं का गहन अध्ययन किया गया है। साथ ही आधुनिक नारीवादी दृष्टिकोणों और साहित्य का तुलनात्मक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है। शोध के दौरान प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है।

परिणाम एवं चर्चा :-

श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से किए गए इस शोध का प्रमुख निष्कर्ष यह है कि गीता एक ऐसा दार्शनिक ग्रंथ है जो नारी को उसकी आत्म–चेतना, आत्मबल और कर्तव्य के प्रति सजग रहने की प्रेरणा प्रदान करता है। यद्यपि गीता में स्त्री का प्रत्यक्ष उल्लेख बहुत सीमित है, फिर भी उसके सिद्धांत स्त्री सशक्तिकरण के लिए समान रूप से उपयोगी हैं।

1. **आत्मा की समता का सिद्धांत :**

गीता यह स्पष्ट करती है कि आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है, वह न स्त्री होती है, न पुरुष। इस सिद्धांत के अनुसार नारी और पुरुष के बीच कोई मौलिक भेद नहीं है, जिससे नारी की गरिमा और आत्म–स्वरूप की पुष्टि होती है।

2. **कर्म का दर्शन :**

गीता कर्मयोग का उपदेश देती है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्तव्य का पालन निष्काम भाव से करना चाहिए। यह स्त्री को सामाजिक भूमिका से ऊपर उठकर अपने कर्तव्यों को आत्मविश्वास और निर्भीकता से निभाने की प्रेरणा देता है।

3. **स्वधर्म का पालन :**

गीता में अपने 'स्वधर्म' का पालन करने पर विशेष बल दिया गया है। स्त्री यदि अपने जीवन के प्रति सजग है, तो वह अपने स्वाभाविक गुणों और सामाजिक भूमिकाओं को गीता के दृष्टिकोण से पुनः परिभाषित कर सकती है।

4. **नारी चेतना का विस्तार :**

गीता की शिक्षाएँ स्त्री को आत्मबल, विवेक और सहनशीलता प्रदान करती हैं। वह अन्याय, अपमान और पारिवारिक बंधनों से मुक्त होकर आत्मनिर्भर जीवन की ओर अग्रसर हो सकती है।

5. **समकालीन नारीवादी विमर्श में गीता की प्रासंगिकता :**

जहाँ आधुनिक नारीवादी चिंतन स्त्री को संघर्ष और विरोध की स्थिति में चित्रित करता है, वहीं गीता स्त्री को आंतरिक शक्ति और आत्म–साक्षात्कार का मार्ग दिखाती है। यह अधिक स्थायी और सकारात्मक समाधान प्रस्तुत करती है।

निष्कर्ष एवं सुझाव :–

निष्कर्ष :

'नारी विमर्श : श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम सेष विषय पर आधारित इस शोध के निष्कर्ष स्वरूप यह स्पष्ट होता है कि गीता केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि एक सार्वकालिक दार्शनिक मार्गदर्शिका है जो मानव जीवन के सभी पहलुओं को छूती है – विशेषतः नारी चेतना को। गीता की शिक्षाएँ आत्मा की समानता, कर्म का दायित्व, आत्मबल, विवेक और निष्काम कर्म जैसे सिद्धांतों के माध्यम से स्त्री को आत्म–सशक्तिकरण की ओर प्रेरित करती हैं।

गीता की दृष्टि में स्त्री और पुरुष के मध्य कोई भेद नहीं है। यह आत्मा के स्तर पर समता की बात करती है। इस समता को आधार बनाकर गीता स्त्री को आत्मबोध, आत्मसम्मान और सामाजिक दायित्व की ओर उन्मुख करती है। वर्तमान समय में जब नारी अपने अधिकारों, स्वतंत्रता और पहचान के लिए संघर्षरत है, तब गीता की शिक्षाएँ एक वैचारिक आधार प्रदान कर सकती हैं।

नारी विमर्श को केवल पश्चिमी नारीवादी विचारधाराओं के परिप्रेक्ष्य से देखने के स्थान पर, भारतीय सांस्कृतिक एवं दार्शनिक ग्रंथों के आलोक में देखने की आवश्यकता है, और गीता इस दिशा में एक सशक्त पथ–प्रदर्शक बन सकती है।

सुझाव :

1. स्त्री शिक्षा में गीता के दर्शन को सम्मिलित किया जाए, जिससे छात्राओं को आत्म–बल, आत्म–निर्भरता और नैतिक मूल्य की समझ मिल सके।
2. नारी सशक्तिकरण कार्यक्रमों में गीता की शिक्षाओं का उपयोग किया जाए, विशेष रूप से 'कर्मयोग', 'स्वधर्म' और 'समत्व' जैसे सिद्धांतों का।
3. आधुनिक नारीवादी चिंतन को भारतीय ग्रंथों के साथ जोड़ने की पहल की जानी चाहिए, जिससे विमर्श की एक समावेशी और संतुलित धारा विकसित हो।
4. गीता के स्त्री–केन्द्रित पाठ और व्याख्याएं विकसित की जाएं, जो महिलाओं की भूमिका और अधिकारों को एक दार्शनिक परिप्रेक्ष्य प्रदान करें।
5. शैक्षणिक संस्थानों में शोध को प्रोत्साहित किया जाए जो गीता के आलोक में स्त्री विमर्श, सामाजिक न्याय और समता पर केंद्रित हों।
6. धार्मिक संगठनों में स्त्रियों की भागीदारी को और बढ़ावा दिया जाए, जिससे गीता की शिक्षाएं केवल धार्मिक सीमाओं में सीमित न रहकर सामाजिक जागरूकता का माध्यम बन सकें।

संदर्भ सूची :–

1. गीता प्रेस, (द.क.), श्रीमद्भगवद्गीता. गीता प्रेस, गोरखपुर।
2. चिद्भवानंद, स्वामी, (द.क.), भगवद्गीता भाष्य सहित।
3. गांधी, महात्मा, (1948), गीता माता, अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन।
4. राधाकृष्णन, डॉ. (1993), The Bhagavadgita : With An Introduction and Notes. HarperCollins
5. ओशो, (2005), गीता दर्शन (खंड 1–4). पुणे : ओशो इंटरनेशनल।
6. घोष, अरविंद, (1972), Essays on the Gita. Pondicherry : Sri Aurobindo Ashram.
7. महर्षि रमण, (2003), Talks with Sri Ramana Maharshi, Ramanasramam.
8. कुमार, मीरा, (2006). नारी विमर्श और भारतीय साहित्य, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
9. जैन, निर्मला, (2007), भारतीय नारीवाद : एक पुनर्विचार, दिल्ली : पेंगुइन इंडिया।
10. सिंह, शशिकला, (2010), नारी विमर्श : दृष्टि और सृजन. दिल्ली : भारतीय प्रकाशन।
11. शर्मा, डॉ. आर. एन. (2012). Women in Indian Philosophy, New Delhi : Oxford University Press.
12. देसाई, नीरा, और कृष्णराज, मैत्रेयी, (1987). Women and Society in India. Sage Publications.
13. रॉय, कुमकुम. (2005). The Emergence of Gender Consciousness in Early India. Delhi : Oxford University Press.
14. देवी, अन्नपूर्णा, (2018). स्त्री और धर्मशास्त्र. दिल्ली : शंकर पुस्तकालय।
15. Ministry of Women and Child Development, Government of India. (2020). Reports on Women Empowerment in India. Ministry of Women and Child Development, Government of India.

narayanrudra09@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 13–19

Environmental Law : Mitigating Pollution and Promoting Sustainability

Anuj Bishnoi
Assistant Professor, Faculty of law, Skd University Hanumangarh

Introduction :

Environmental law constitutes a complex and evolving body of statutes, regulations, treaties, conventions, and judicial decisions designed to protect the natural environment and human health from the adverse impacts of human activity. Its significance lies in its role as the primary legal framework for addressing critical global challenges such as pollution, biodiversity loss, resource depletion, and climate change, aiming to ensure ecological integrity for present and future generations (Sands & Peel, 2018). This paper examines the effectiveness of current environmental regulations in mitigating pollution and promoting sustainable practices. The scope encompasses the core principles, major regulatory areas (air, water, waste, conservation), enforcement mechanisms, and the international context, with a focus on pollution control and sustainability outcomes. The methodology involves analysis of key legislation, legal principles, enforcement data, scholarly literature, and case studies to evaluate regulatory successes, persistent challenges, and future trajectories.

Historical Development of Environmental Law :

Early environmental protection efforts were often localized and focused on nuisance abatement or specific conservation concerns, such as the establishment of national parks like Yellowstone in 1872 (Nash, 2014). The modern era of environmental law, however, is largely a product of the late 20th century. The publication of Rachel Carson's Silent Spring (1962) was a pivotal moment, galvanizing public awareness about pesticide dangers and the interconnectedness of ecosystems. This environmental awakening culminated in the "Environmental Decade" of the 1970s, marked by landmark legislation including the US National Environmental Policy Act (NEPA, 1969), Clean Air Act (CAA, 1970), Clean Water Act (CWA, 1972), and Endangered Species Act (ESA, 1973). Similar legislative surges occurred in other industrialized nations and internationally, such as the Stockholm Declaration (1972) (Sands & Peel, 2018).

Major environmental disasters have consistently acted as catalysts for legal reform. The 1969 Santa Barbara oil spill significantly influenced the passage of NEPA. The 1976 Seveso disaster in Italy, involving a toxic chemical release, led to the European Union's Seveso Directives on industrial accident prevention. The 1984 Bhopal gas tragedy in India, one of the world's worst industrial disasters, spurred global initiatives on hazardous chemical management and emergency preparedness (Kibel, 2007). The discovery of the ozone hole in the 1980s directly led to the rapid negotiation and adoption of the Montreal Protocol (1987). These events underscored the limitations of existing laws and the urgent need for preventative and precautionary approaches.

- **Key Principles of Environmental Law :**

Several fundamental principles underpin modern environmental law, guiding its interpretation and application :

A. Polluter Pays Principle (PPP) : This principle mandates that the costs of pollution prevention, control, and remediation should be borne by the polluter, not society or government. It internalizes environmental externalities, incentivizing pollution reduction at the source. PPP is embedded in liability schemes for contamination cleanup (e.g., CERCLA/Superfund in the US) and economic instruments like pollution taxes and emissions trading systems (OECD, 1972; Sands & Peel, 2018).

B. Precautionary Principle : Where there are threats of serious or irreversible environmental damage, lack of full scientific certainty shall not be used as a reason for postponing cost-effective measures to help environmental declination(Rio Declaration, Principle 15). This principle shifts the burden of proof, justifying preventative action in the face of uncertainty, such as in regulating novel chemicals or genetically modified organisms (Fisher, Jones, & von Schomberg, 2006).

C. Principle of Sustainable Development : Principle of Sustainable Development Vulgarized by the Brundtland Commission(1987), sustainable development seeks to meet" the requirements of the present without compromising the capability of unborn generations to meet their own requirements." It integrates environmental protection, profitable development, and social equity. This principle is central to international agreements like the UNFCCC and domestic policies aiming for long-term ecological balance (WCED, 1987).

D. Principle of Public Participation : Effective environmental protection requires access to information, participation in decision- making processes, and access to justice in environmental matters. This principle, elevated in the Aarhus Convention(1998), empowers citizens and NGOs, enhances translucency, and improves the quality of environmental opinions(Stec, 2010).

- **Major Areas of Environmental Regulation :**

Environmental law operates across different sectors, employing colorful nonsupervisory tools :

A. Air Quality Regulations :

i. Industrial Emissions : Regulations like the US CAA and the EU Industrial Emissions Directive (IED) set emission limit values (ELVs) for pollutants (SO?, NO?, PM, VOCs) from power plants, refineries, and factories, often requiring Best Available Techniques (BAT). While significantly reducing point source pollution in developed nations, challenges remain with enforcement in some regions and cumulative impacts (Kubasek & Silverman, 2020).

ii. Vehicle Emissions : Standards for tailpipe emissions (e.g., US Tier standards, Euro norms) and fuel quality have dramatically reduced per-vehicle emissions of CO, NO?, and PM. However, increasing vehicle numbers and issues like the "Dieselgate" scandal highlight ongoing challenges. Regulations now increasingly target greenhouse gas emissions (GHGs) from transportation (Faure & Partain, 2019).

B. Water Quality Regulations :

i. Wastewater Discharge : Regulations like the US CWA (NPDES permits) and the EU Urban Waste Water Treatment Directive mandate treatment of municipal and industrial wastewater before discharge to surface waters, setting technology-based and water quality-based standards. These have significantly improved water quality in many rivers and lakes, though aging infrastructure and emerging contaminants (pharmaceuticals, microplastics) pose new challenges (Adler, 2019).

ii. Agricultural Runoff : Diffuse pollution from agriculture (nutrients, pesticides, sediments) is a major cause of water quality impairment (e.g., dead zones). Regulation is often less direct, relying on voluntary best management practices (BMPs), cross-compliance in farm subsidies, and buffer zone requirements, proving less effective than point source controls (Shortle & Horan, 2013).

C. Waste Management Regulations :

i. Hazardous Waste : Frameworks like the US Resource Conservation and Recovery Act (RCRA) and the EU Hazardous Waste Directive govern the "cradle-to-grave" management of hazardous wastes, including identification, tracking, treatment, storage, and disposal (e.g., in secure landfills). While preventing catastrophic dumping, illegal trafficking and legacy sites remain problems (Mandel, 2020).

ii. Solid Waste & Recycling : Regulations increasingly prioritize waste hierarchy : prevention, reuse, recycling, recovery (energy), disposal (landfill). Landfill taxes, extended producer responsibility (EPR) schemes (e.g., for packaging, electronics), and recycling mandates aim to reduce

landfill reliance and promote circularity. Success varies significantly by region and material stream (Kinnaman, 2017).

D. Conservation of Natural Resources :

i. Endangered Species : Laws like the US ESA and the EU Habitats Directive prohibit the "taking" (harming, killing) of listed species and mandate critical habitat protection and recovery plans. These laws have prevented extinctions (e.g., Bald Eagle) but face challenges from habitat fragmentation, climate change, and political opposition (Bean & Rowland, 2021).

ii. Habitats and Biodiversity : Protected area networks (national parks, nature reserves) and broader ecosystem protection laws (e.g., US Wilderness Act, EU Natura 2000 network) aim to conserve biodiversity and ecosystem services. The effectiveness depends on adequate funding, management, and addressing threats from development and climate change outside protected boundaries (Boyd, 2017).

- **Enforcement and Compliance :**

The effectiveness of environmental law hinges critically on enforcement :

A. Role of Agencies : Dedicated agencies (e.g., US EPA, Environment Agency in England, DG Environment in the EU Commission) are responsible for monitoring compliance, inspecting facilities, issuing permits, and taking enforcement actions (warnings, fines, injunctions, criminal prosecution). Their capacity and political independence significantly impact effectiveness (Scholz & Wang, 2006).

B. Enforcement Challenges : Persistent challenges include limited agency resources for monitoring vast numbers of regulated entities, sophisticated methods of non-compliance and concealment, difficulties in detecting non-point source pollution (like runoff), regulatory complexity, and sometimes, political pressure against stringent enforcement (Gunningham, 2009).

C. Penalties and Incentives : Effective deterrence requires penalties that exceed the profitable of non-compliance. Beyond traditional command-and-control and penalties (fines, jail), regulators increasingly use market-based instruments (emissions trading, pollution taxes) and positive incentives (subsidies for green tech, recognition programs) to encourage compliance and innovation (Stavins, 2003).

VI. International Environmental Law :

Transboundary and global nature of environmental problems necessitates transnational cooperation :

A. Major Agreements : Key treaties address specific issues: Montreal Protocol (ozone depletion - widely hailed as a success), UNFCCC and Paris Agreement (climate change - implementation challenges remain), Convention on Biological Diversity (CBD - targets largely unmet), Basel

Convention (hazardous waste trade), CITES (endangered species trade) (Bodansky, Brunnée, & Rajamani, 2021).

B. Role of International Organizations : Organizations like the United Nations Environment Programme (UNEP) facilitate negotiations, provide scientific assessments, and support capacity building. The International Court of Justice (ICJ) and specialized tribunals (e.g., ITLOS) adjudicate disputes, though jurisdiction is often limited by state consent (Birnie, Boyle, & Redgwell, 2009).

C. Enforcement Challenges : International law primarily relies on state consent and voluntary compliance. Enforcement mechanisms are often weak, relying on reporting, peer pressure, and non-compliance procedures rather than coercive sanctions. Sovereignty concerns and differing national capacities hinder uniform implementation (Raustiala & Slaughter, 2002).

VII. Emerging Issues and Future Trends :

Environmental law must continually adapt to new challenges :

A. Climate Change : Climate change is reshaping environmental law, driving new regulations on GHG emissions (cap-and-trade, carbon taxes, renewable energy mandates), adaptation planning, and litigation (e.g., tort cases against emitters, rights-based cases). Integrating climate considerations across all regulatory areas is crucial (Markell & Ruhl, 2012).

B. Technology : Technology offers both challenges and solutions. Remote sensing (satellites, drones) and AI enhance monitoring and enforcement capabilities. Advances in pollution control tech and renewable energy create new regulatory opportunities. Conversely, regulating emerging technologies (nanotechnology, geoengineering) and addressing e-waste streams present novel challenges (Marchant, 2011).

C. Balancing Economy and Environment : The tension between economic development and environmental protection remains central. Concepts like "green growth" and the circular economy aim to decouple economic activity from environmental degradation. Environmental Impact Assessment (EIA) and Strategic Environmental Assessment (SEA) are vital tools for integrating environmental considerations into development planning, though their influence can be limited (Dernbach & Cheever, 2015).

VIII. Conclusion :

Environmental law has achieved significant successes since its modern inception. Regulatory frameworks for air and water pollution have demonstrably improved environmental quality in many developed regions, landmark laws like the ESA have prevented extinctions, and international cooperation through agreements like the Montreal Protocol has addressed global threats. Core principles like Polluter Pays, Precaution, and Sustainable Development provide a robust conceptual

foundation.

However, the effectiveness of current environmental regulations in comprehensively mitigating pollution and promoting sustainable practices remains uneven and faces substantial challenges. Persistent issues include the difficulty in regulating diffuse pollution sources (notably agricultural runoff), ongoing struggles with enforcement capacity and political will, the slower-than-needed response to the climate crisis, biodiversity loss continuing largely unabated, and the complexities of achieving global cooperation with equitable burden-sharing. Emerging threats like novel pollutants and the impacts of climate change demand constant legal evolution.

While essential tools exist, their full potential is often unrealized. Future efforts must focus on strengthening enforcement mechanisms, embracing innovative regulatory approaches (including market instruments and technology-enabled monitoring), fully integrating climate and biodiversity considerations across all sectors, enhancing international cooperation with tangible commitments, and fostering a deeper societal commitment to sustainability that transcends purely regulatory solutions. Research should prioritize evaluating the effectiveness of novel regulatory tools, improving measurement of ecosystem services and biodiversity loss, understanding behavioral drivers of compliance, and developing robust legal frameworks for emerging technologies and climate adaptation.

References :

1. Adler, R. W. (2019). Restoring Clean Water: Beyond the IWRP. Environmental Law Institute.
2. Bean, M. J., & Rowland, M. J. (2021). The Evolution of National Wildlife Law (4th ed.). Praeger.
3. Birnie, P., Boyle, A., & Redgwell, C. (2009). International Law and the Environment (3rd ed.). Oxford University Press.
4. Bodansky, D., Brunnée, J., & Rajamani, L. (2021). International Climate Change Law. Oxford University Press.
5. Boyd, D. R. (2017). The Rights of Nature: A Legal Revolution That Could Save the World. ECW Press.
6. Carson, R. (1962). Silent Spring. Houghton Mifflin.
7. Dernbach, J. C., & Cheever, F. (2015). Sustainable Development Law: Principles, Practices, and Prospects. Oxford University Press.
8. Faure, M., & Partain, R. A. (2019). Environmental Law and Economics: Theory and Practice. Cambridge University Press.
9. Fisher, E., Jones, J., & von Schomberg, R. (Eds.). (2006). Implementing the Precautionary Principle: Perspectives and Prospects. Edward Elgar Publishing.
10. Gunningham, N. (2009). Environment law, regulation and governance: Shifting architectures.

Journal of Environmental Law, 21(2), 179–212.
11. Kibel, P. S. (Ed.). (2007). The Earth on Trial: Environmental Law on the International Stage. Routledge.
12. Kinnaman, T. C. (2017). The economics of municipal solid waste management. Foundations and Trends® in Microeconomics, 11(3-4), 161–305.
13. Kubasek, N., & Silverman, G. S. (2020). Environmental Law (9th ed.). Pearson.
14. Mandel, G. N. (2020). Environmental Law (2nd ed.). Aspen Publishing.
15. Marchant, G. E. (2011). The growing gap between emerging technologies and the law. In G. E. Marchant, B. R. Allenby, & J. R. Herkert (Eds.), The Growing Gap Between Emerging Technologies and Legal-Ethical Oversight: The Pacing Problem (pp. 19-33). Springer.
16. Markell, D. L., & Ruhl, J. B. (2012). An empirical assessment of climate change in the courts: A new jurisprudence or business as usual? Florida Law Review, 64(1), 15-86.
17. Nash, R. F. (2014). Wilderness and the American Mind (5th ed.). Yale University Press.
18. OECD. (1972). Guiding Principles Concerning International Economic Aspects of Environmental Policies. OECD Publishing. (Introduces PPP formally).
19. Raustiala, K., & Slaughter, A. (2002). International law, international relations and compliance. In W. Carlsnaes, T. Risse, & B. A. Simmons (Eds.), Handbook of International Relations (pp. 538-558). SAGE Publications.
20. Sands, P., & Peel, J. (2018). Principles of International Environmental Law (4th ed.). Cambridge University Press.
21. Scholz, J. T., & Wang, C. (2006). Cooptation or transformation? Local policy networks and federal regulatory enforcement. American Journal of Political Science, 50(1), 81–97.
22. Shortle, J., & Horan, R. D. (2013). Policy instruments for water quality protection. Annual Review of Resource Economics, 5(1), 111–138.
23. Stavins, R. N. (2003). Experience with market-based environmental policy instruments. Handbook of Environmental Economics, 1, 355-435.
24. Stec, S. (Ed.). (2010). Handbook on Access to Justice under the Aarhus Convention. The Regional Environmental Center for Central and Eastern Europe.
25. United Nations. (1992). Rio Declaration on Environment and Development. Principle 15. UN Doc. A/CONF.151/26 (Vol. I).
26. United Nations Economic Commission for Europe (UNECE). (1998). Convention on Access to Information, Public Participation in Decision-making and Access to Justice in Environmental Matters (Aarhus Convention).
27. WCED (World Commission on Environment and Development). (1987). Our Common Future. Oxford University Press. (Brundtland Report).

Anuj.bishnoi7@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 20–31

Environmental change and its impact on the economic life of the Birhor tribe of the North Chotanagpur Plateau

Dr. Aravind Kumar

Abstract :-

Birhor, included in the primitive tribal group, was a nomadic tribe. Traditionally, it is a tribe residing in the forests. When there was a shortage of food items in a forest, they would migrate to another forest. Their life was based on the forest. In the early days before and after Independence, forests were destroyed rapidly for development work. The destruction of forests adversely affected the environment of the Birhor tribe. The changes that came in the economic life of the Birhor tribe of the North Chotanagpur Division (Plateau) due to this environmental change have been studied in this research paper.

keywords – Birhor, environmental changes, economic changes, North Chotanagpur Division, nomadic life, forest product collection, hunting, pastoralist, rope-makers etc.

Introduction :-

Environment generally means 'the surrounding atmosphere'. It includes all the non-physical elements (land, water, air, light etc.) as well as animals and plants.

Geographers refer to environment primarily as the environment of human beings.

But human existence is not possible by separating it from other forms of life, especially animal and plant life (A N Strahler and A H Strahler, 1979). According to Professor Savindra Singh, initially the human environment is composed of the physical elements of the earth (land, air and water) and biological elements (animal and plant communities). But with the passage of time, human beings keep expanding their environment through their social, economic and political activities. Thus, social environment, economic environment, political environment etc along with physical environment are included in the human environment.[1]

Although the changes in the economic life of the Birhor tribe have been influenced by their

social, economic and political environment, the present research has studied the changes in their physical environment and examined the effect of these changes on their economic life. Birhor is a Primitive Tribal Group (PTG). It is mainly settled in Jharkhand, Chhattisgarh, West Bengal, Odisha, Bihar, Maharashtra and Madhya Pradesh. According to the 2011 census, the total population of Birhor in India is 17,241, of which 62% resides in Jharkhand state. 69.6% of the total Birhors living in Jharkhand resides in the North Chotanagpur plateau region. 18% of the total Birhor population of India resides in Chhattisgarh, 13% in West Bengal, 3.45% in Odisha and 2.18% in Bihar. In this research paper, geographical boundary of Chotanagpur Plateau is considered as the administrative boundary of Chotanagpur division.

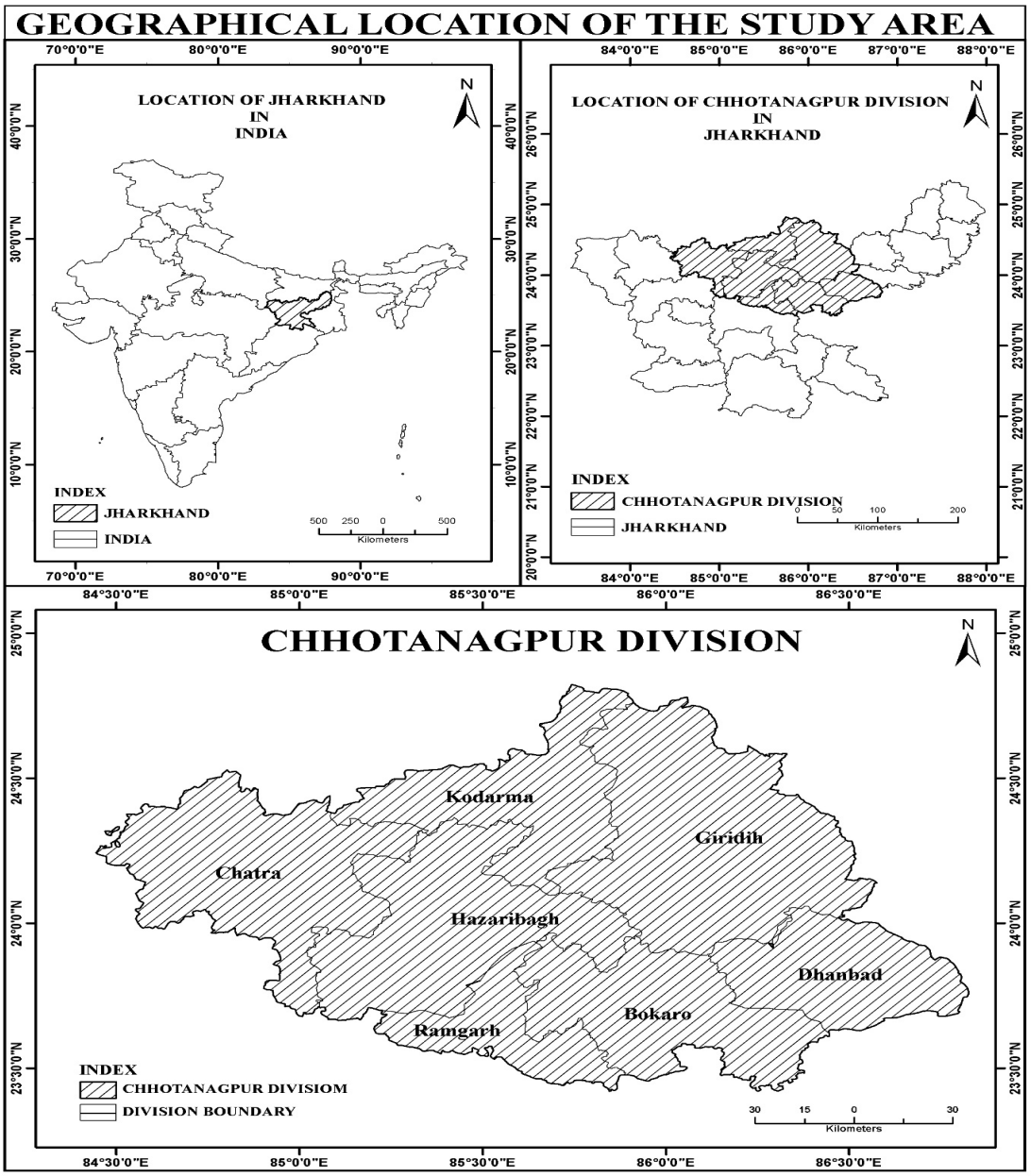

Objective of the study :

Due to gradual decline in the forest area of the North Chotanagpur plateau, the animals, roots and fruits found in the forest are no longer enough for the Birhors to keep them alive. Their traditional economic activities were hunting, collection of forest products and making ropes. The main objective of this research was to collect information about the effect of the depletion of forest area in North Chotanagpur Division on their economic life. Due to this change, the changes in their standard of living can also be studied and it will be easy to make and implement government schemes for them.

Hypothesis - The economic activities of the Birhors have changed owing to environmental changes in their habitat.

Review of Previous Studies - More study has been done on the Birhor tribe by sociologists and anthropologists than by geographers. A major book written on the Birhors is 'The Birhors: A Little-Known Jungle Tribe of Chotanagpur' by S C Roy (1925). This book provided an opportunity to know the social life of the Birhor tribe before independence. Other prominent books studied during the research include :

A K Adhikary (1984) : Society and World View of the Birhor; N K Bose (1972): 'The Birhors', in Some Indian Tribes; B Chakraborty (1984): Relationship between Nature and Nomads. A Case Study on the Birhor of West Bengal; B M Mukherjee et. al. (1995): Birhor Ek Monographic Adhyayan. Project Report; D P Sinha (1957): World and the World View of Birhors; B B Verma (1976): The Birhors – A Nomadic Tribe; L P Vidyarthi (1960), The Birhor: A Study in Ecology, Economy and Wandering.

Research Methodology - During the research, 150 Birhor families of North Chotanagpur Division were selected as sample. By interacting with the selected families, a questionnaire was prepared, and traditional and new data related to their economic activities was collected. While analyzing the collected data, conclusions were drawn regarding the changes in their economic activities.

Discussions and Results - As we have come to know in the beginning of the research paper that the forest has been the traditional habitat of the Birhors. Their food and housing needs were fulfilled by the food items and things available in the forest. But as the forests were destroyed, their economic activities also changed. The facts related to the traditional life of the Birhors and their economic activities can be studied under the following headings.

Birhors : Forest-based Lifestyle :

Forests play an important role in the physical environment of the Birhors. The Birhor tribe has traditionally been living in forests. '**Birhor**' means **'the man of the forest'**. In the language of the Santhal tribe who live around them, '**bir**' means '**fores**t' and '**hor**' means '**man**'. Traditionally, the

entire life of the Birhors presents a great example of harmony with their environment. The Birhors take from the forest only that much which is required on a minimum level for their survival. They neither have the tendency to hoard for the future nor to over-exploit to satisfy their unnecessary desires. The forest and the natural resources scattered in the forest are not only the basis of the economic life of the Birhors but also the basis of their social and cultural life. Their gods are also a part of their environment. Besides the sun and the moon, they worship the hillocks, which are called '**buru**'.

When we observe carefully, we find that traditionally there is a positive correlation between the multitude of the Birhor tribe and the density of forests. This does not mean that wherever there is density of forests, there will be multitude of the Birhor tribe. But it definitely means that wherever there is multitude of the Birhor tribe, there will be abundance of forest area. In entire Jharkhand, most Birhors are found in the North Chotanagpur plateau region because it is a dense forest region. In the North Chotanagpur plateau also, the percentage of forests in Hazaribagh, Ramgarh, Chatra etc districts is more than that in other districts. Hence, the concentration of the Birhor is found more in these districts. In 1981, the areas of Hazaribagh, Ramgarh and Chatra districts were covered by forests to the extent of 47.45, 30.86 and 65.29 per cent respectively.[2] According to the data of 2011, although the forest area has reduced to half, the proportion of forest areas here is still much higher than that in other areas. That is why when we look at the 2011 census, 66.64% of the Birhor population of the North Chotanagpur plateau is settled in the above mentioned three districts only.[3]

Nomadic Life : An Example of Harmony with the Environment :

Traditionally, the Birhor are a nomadic tribe. They would not stay at one place throughout the year. They used to make temporary and makeshift huts at some safe place in the forest using wood, straw, leaves etc obtained from the forest itself and used to live at that place as long as the environment there was good enough for their sustenance. When they felt that the forest resources of that place were unable to fulfil their economic needs, they used to leave that place and migrate to some new forest. It does not mean that they were not attached to their place of residence or surroundings. They too were attached to their forest and land. That is why their nomadic life progressed in the form of a 'cyclic nomadic life'. Almost all Birhor families used to roam in different forests and return to their old shelter after 1 or 2 years. If we look at their lifestyle, we find that unlike modern technological human beings, they neither had the tendency of overexploiting nature nor the tendency of collecting things out of their apprehension for the future. They had immense faith in the forest. They knew that when the time would come, it (forest) would definitely fulfil their needs. In difficult times, they would reduce their needs but would not harm the forest. In the rainy season, when it would rain

continuously for many days, they would adapt their bodies to bear the hunger for a few evenings or a few days. In such a situation, the elderly person of the family would leave his share of food for the children of the family. Sometimes, in a difficult situation, he would even give up his own life for the lives of other family members. Thus, we can say that the entire nomadic life of the Birhor presented a great example of harmony between environment and human life.

The Birhor Tribe : Traditional Economic Activities :

All the traditional economic activities of the Birhor community were based on the forest. Hunting, collection of forest products and rope-making were their basic economic activities.

(a) Hunting :

The Birhor are non-vegetarians, and hunting was their most important economic activity. They often hunted small animals. Monkeys were their most favourite hunt. Outsiders knew a Birhor as a **'Monkey Catcher'**. In Odia language he was called **'Mankirdiya' (Monkey-eater)**, and in Munda language **'Jamsara' (Jam = Eater; Sara = Monkey)**.[4] Apart from this, they used to hunt deer, wild boar, wild cat, squirrel, mongoose, etc. When their interaction towards the neighbouring villagers increased, they started focusing more on hunting rabbits as per the demand of the villagers. They call rabbit **'Kulhai'**. Their skill in catching monkeys was so great that many legends were popular in the surrounding areas about it. It is believed that monkeys would not climb the tree which they touched. Many times, to save fruits and crops from the terror of monkeys, the villagers of the nearby villages used to specially call the Birhor to their place. Since they were monkey-eaters, the nearby Santhal and Hindu community looked down upon them. In fact, both Santhal and Hindu communities worship Hanuman, a subspecies of monkey. The Birhor also devised a trick to defend themselves. They propagated that Hanuman himself had told them the method of catching monkeys.[5]

It was the specialty of the Birhor that they used to hunt not with the help of bow and arrows but with the help of nets. There were two reasons behind it. Firstly, they wanted to catch the prey alive. They could sell the live prey in the neighbouring village or take grains in exchange for it. Villagers usually did not buy a dead prey. Secondly, the forest in which they lived had abundance of dense forests of Sal (Sakhua; Shorea robusta). Usually, the prey would hide in its leaves. Therefore, it was difficult to see them from a distance. The Birhor used to go out in groups to catch their prey. The strong people would hold the net and children and women would chase the prey and force it to go towards the net. The Birhor also used to hunt birds like junglefowl, parrot, sparrow, partridge, quail, owl etc.

(b) Collection of Forest Products :

They used to collect several things found in the forest like fruits, flowers, leaves, creepers,

roots, medicinal plants, mushrooms, honey etc. They used to satisfy their hunger with some of these things and by selling or exchanging some of these things, they used to fulfil their other needs of life.

(i) Fruits : They used to pluck fruits found in the forest like *jamun*, *bael* (wood-apple), papaya, banana, *piya*r, *ber* (jujube), *kanaula*, mango, jackfruit, *kadamb* (bur flower), mulberry etc. and eat them themselves and sell them if they had excess.

(ii) Flowers : They also used to consume many types of flowers like *koynar*, *kachnar* (orchid), *jirhul* (queen's flower), *nair* etc. They are especially fond of *mahua* flowers. They prepare country liquor (*handia*) by rotting mahua flowers. Handia is an essential and integral part of their life and culture. They also prepare handia by rotting rice. They drink handia in every ceremony, sing and dance.

(iii) Leaves : The Birhor used to consume leaves as vegetables obtained from more than 50 types of trees. Example- *churi, dhal, gitil, doobha, ora, chhata* etc. [6]

(iv) Mushroom : Mushroom has been their main food item. During rainy season, many types of mushrooms grow near the roots of trees. Here they are known by the names of *futka, khukhandi, bans khukhandi, moranda* etc.

(v) Root : The Birhor used to collect many types of roots. They used them for food and medicine. Sometimes they used to dig 5-6 feet below the ground and extract the roots. The main roots eaten by them are *rataalu* (yam)*, haset, kukuch, jarangh, duda, tasar, kundri, konhra* etc. These roots are full of nutrients and protect them from malnutrition.

(vi) Medicinal Plants : The Birhor are also known as native doctors in the surrounding areas. They have knowledge of many types of herbs. They collect many plants of medicinal importance such as wild grasses, greens, thorny plants, creepers, fruits and flowers etc to make the people of their community healthy, and also sell them in the local market. Almost every Birhor hamlet has a local doctor.

(vii) Honey Collection : Honey collection and its sale in the nearby villages was a major occupation of the Birhor community. Besides honey, they would also eat beehives and their small larvae. They had deep knowledge about bees. They could estimate the distance of the beehive from the speed and angle with which the bees would fly over water. They could estimate the age of the beehive and the amount of honey from the way the bees would enter the hive.[7]

(c) Rope-making :

Making ropes from the creepers of trees found in the forest is one of their oldest economic activities. They used ropes to make nets which was the main basis of their most important economic activity and hunting. The importance of their rope-making art can be understood from the following

points. The Birhor do not consider those people of their caste as their cultural hero who started farming for the first time and created the agrarian society, rather they consider them their hero who first learned the art of living in the forest and made ropes and nets for hunting from the fibers of *siyali*.[8]

Till four decades ago, the Birhor used to make ropes from the fibers obtained from the inner bark of *'bahunia'* (vine) and '*mahulan*' (lama) trees. To make the ropes more flexible, they used to keep the bark immersed in mud overnight.[9] It is mentioned in some places that they used to make ropes and nets from the creepers of *bahunia*. [10]

Environmental Changes and Development in Economic Activities :

We have come to know that forest is an important component of the environment of the Birhor. After independence, as the pace of development increased, the process of deforestation also increased. Since forest was the only basis of the life of the Birhor, deforestation has brought about extensive changes in all their economic activities. These can be studied under the following headings —

(a) Nomadic life :

Following the decline in forests and the stringent forest policy of the government, the resources of the forest no longer remained sufficient to meet the economic needs of the Birhor. So, under compulsion, they had to abandon their birthplace and land of work. They were forced to adopt agriculture, animal husbandry and other economic activities. Its primary impact was on their nomadic life process. Now it became necessary for them to stay at one place so that they could feed themselves by producing food through activities like agriculture. At present, most of the Birhor reside permanently in the rural areas near the forest or in the slums of the city.

Since the 70s, some Birhors started turning towards agriculture and settled life, as mentioned by Mr. Williams in his article.[11] On the basis of it, the researchers divided the Birhor into two categories — Uthlu Birhor and Janghi Birhor. 'Uthlu Birhor' were those who were leading their traditional nomadic life. 'Janghi Birhor' were those who settled permanently at a place. At present, the number of Uthlu Birhor is negligible. The rapid decline in forests and forest resources has forced them to come out of the forest and live a permanent life.

(b) Hunting :

Deforestation has led to a very less amount of hunt today. That is why the Birhor community is facing extreme difficulty in earning their livelihood. At present, they have adopted many alternative economic activities, agriculture being the most important one. They have been settled in many areas by the government and have been encouraged for agriculture. According to a statistic, while 12% Birhors were involved in agriculture in 1981, 43% Birhors joined it in 1991. The government gave

50 decimal land to each Birhor family for farming, along with bullock cart and paddy seeds.[12] The Birhor community gladly accepted agriculture but they failed in it due to a few reasons. Many were forced to return to their old profession and some remained mere labourers. The most important reason was that the land allotted to them was mostly infertile and rocky. Firstly, farming in such land was already full of difficulties. Secondly, they did not have the skill to do this work. Another reason was that the government land which was given to them was till now occupied by the people of the neighbouring village. If there was a fruit tree on that land, the villagers had been consuming its fruit till date and they considered it their right. With these farms going into the hands of the Birhor, the animosity between the two communities increased and the situation even reached the level of fighting. The Birhor found it better to return to the forest. But there too, the difficulties for them were no less.

Under various forest and wildlife acts, hunting in the forest was no longer easy. On one hand, the government contractors were cutting down the forest in an uncontrolled manner. On the other hand, the Birhor, who were the protectors of the forest, were being declared enemies of the forest and were being harassed. In such a situation, a large number of Birhors migrated to the slums of the nearby urban areas and were forced to become daily wage labourers. Very few Birhors were able to get a good job because those who had recently come from the forests could not even speak Hindi (the contact language) properly, let alone being educated. Very few people were able to become artisans like masons, carpenters or blacksmiths. Most of them either became labourers for building construction work or at nearby mines.

Today, hardly any Birhor goes out in a group with a net in the forest and survives on hunting. Now their art of catching monkeys has also gradually become extinct.

(c) Collection of Forest Products :

Even after leaving the forests, the Birhor mostly settled in the same places which were close to the forest. They still go to the forest and collect many things from there so that they can somehow make their living. There has also been a slight change in the products collected from the forests. Earlier they used to collect forest products according to their needs but now they have started collecting such things which are in demand in the nearby cities and they can get some money by selling them. After leaving the forest, there was a change in their lifestyle also. Now they felt the need for more money to live properly. They also turned towards educating their children. Therefore, to fulfil the increasing demands, they felt the compulsion to join the market-oriented economy.

66% of the women and 32% of the men interviewed said that they still go to the forests to collect forest products. 12% people said that they sell the herbs obtained from the forests in the market.

Fruits : Earlier, the Birhor themselves used to consume most of the fruits obtained from the trees found in the forest and its outer areas. But now they want to earn as much money as possible by plucking these fruits and selling them in the local market and other places. The Birhor community can often be seen with baskets of fruits like *bael, jamun, kanaul*, jackfruit, mulberry etc. in the market or on the roadside in the cities and towns adjacent to the forest.

Flowers : They do not get the cash value of flowers today, but if they get the flowers that their ancestors used to eat, they still eat them with great relish. *Mahua* and *handia* made from it are still an important part of the culture of the Birhor community. In rural areas, they also get some grains by exchanging Handia.

Leaves : They still consume the leaves that are traditionally eaten by their society. In addition to it, they collect some leaves of commercial importance on a large scale. Among these, *kendu (tendu)* leaf is the most important. They dry the leaves and make a bundle of them. A bundle which contains about 20 leaves, provides them a maximum of Rs 10 from the middlemen who sell these leaves to traders at a higher price. These leaves are used for making bidis.

They also collect sal *(sakhua)* leaves on a large scale. They are used for making *pattals* (eating plates). For the last 20-30 years, they have been collecting *sakhua* and *neem* twigs and selling them in the market as *datwan* or *datun* (tooth brush).

28% of the men and 17% of the women interviewed said they worked as labourers in the bidi industry.

Mushrooms : Collection and sale of mushrooms is the main economic activity of the Birhor. Currently, there is a lot of demand for natural mushrooms in the market. The Birhor earn some income from its sale during the rainy season. The price of mushrooms is definitely high in the market but their production is very low.

Only 2% people said that they collect mushrooms and sell them in the market.

Medicinal Plants : Even today, elderly Birhor women search for medicinal herbs in the forest and sell them in the market at a low price to earn some money.

Honey Collection : The Birhor are still very skilled in extracting honey from beehives. If they see a beehive whether it is in a forest or urban or rural area, they extract honey from it and sell it in the market or by going door to door to get some income.

(d) Rope-making :

Traditionally, the Birhor used to make ropes from the vines of *bahunia* found in the forest. But at present, the quantity of these vines has reduced considerably. Today, almost every Birhor (especially women) earns some money by making ropes. Initially, instead of bauhinia vines, they used

to make ropes of jute. But due to its high price in the market, the demand was low. After the advent of plastic, they started making ropes of plastic. They first open the plastic fibers from plastic bags (cement) and then make ropes from it and sell them in the market. At present, it contributes significantly to their income.

They are paid Rs. 200 per day by the rope-making agents. 26% of the people interviewed were engaged in rope making.

(e) Begging :

Extensive environmental change has created such dire circumstances in front of the Birhor community that some people are forced to beg to earn a living. In his field study conducted in 1974, Mr. Williams found that a large section of the Birhor were begging in the streets of the city to make a living.[13] Rajesh Pankaj, in his survey conducted in 2008, particularly emphasized this fact and wrote that 'the habit of begging has taken such deep roots in them that it can be classified as a separate economic activity of the Birhor.' [14] Today, many Birhors (especially women and children) can be seen begging in long queues outside temples and mosques in the cities.

(f) Animal Husbandry :

In recent years, the government has given animals like pigs, goats, chickens, cows, bulls etc to every Birhor family so that they can develop it as an alternative economy. Unfortunately, the Birhor are not very skilled in animal husbandry either. Moreover, money is needed for care, maintenance and food for the animals. But, the Birhor absolutely suffer from the lack of it. That is why they could not develop animal husbandry as an alternative economy.

Cows were seen in only 2% of the houses and poultry farming was seen in 10 houses.

Conclusion :-

The present research study shows that post-independence, there have been extensive changes in the economic activities of the Birhor tribe living in the North Chotanagpur division. Their nomadic life is now changed into a settled life. The lack of forests made getting hunt scarce because of which their hunting life transformed into a peasant life. At one time they were skilled in catching monkeys. But today hardly any Birhor catches and eats monkeys. 'Rope-making' was one of their major economic activities. Till four decades ago, the Birhor used to make ropes with the fibers obtained from the inner bark of *bahunia* (vine) and *mahulan* (loma) trees. Even today, many Birhors are found making ropes. But at present they make ropes with the help of fibers extracted from plastic bags. The Birhor who live close to the forests, even today collect medicinal tubers, roots, flowers, leaves etc and sell them in urban markets. In the city, they go door to door in search of beehives. They are skilled in extracting honey from the beehive. However, they get very little remuneration for it.

All the economic activities that the Birhor adopted after coming out of the forest turned out to be subsistence economic activities. This could neither strengthen their health structure nor could there be any improvement in their standard of living. Two efforts can be most effective for improving their standard of living. Firstly, 100% of their children should be given free quality education and hostel facilities at the government level so that, later on, they can get good jobs in the government or private sector. Secondly, the present generation that has grown up should be taught technical skills so that they can earn a living for their families through cottage industry or home-based industry. If they are given animals, they should also be given training in animal husbandry so that they can adapt themselves to the market-oriented economy.

We hope that extensive work will be done in this area by the government or voluntary organizations and the king of the jungle will be brought back to a dignified life.

References :

1. Environmental Geography, Savindra Singh, 2001, Prayag Pustak Bhawan, Allahabad
2. Forest Department of Jharkhand Government, 1981 & 2011.
3. Census of India, 2011.
4. Nadal Deborah, 2014, Hunting Monkeys and Gathering Identities: Exploring Self-representation Among the Birhor of Central-East India, La Ricerca Folklorica, No. 69, pp. 263-278.
5. Ibid.
6. Sahu Chaturbhuj, 1995, 'Food and Health Condition of the Birhor: A Vanishing Tribe of Bihar', Indian Anthropologist, Vol. 25, No. 2, pp. 13-24.
7. Williams B. J., 1974, A Model of Band Society, "Memoirs of the Society for American Archaeology", No. 29, pp. 1-138.
8. Nadal Deborah, 2014, Hunting Monkeys and Gathering Identities: Exploring Self-representation Among the Birhor of Central-East India, La Ricerca Folklorica, No. 69, pp. 263-278.
9. Williams B. J., 1974, A Model of Band Society, "Memoirs of the Society for American Archaeology", No. 29, pp. 1-138.
10. Firdos Sohel, 2005, 'Forest Degradation, Changing Workforce Structure and Population Redistribution: The Case of Birhors in Jharkhand', Economic and Political Weekly, Vol. 40, No. 8, pp. 773-778.
11. Williams B. J., 1974, A Model of Band Society, "Memoirs of the Society for American

Archaeology", No. 29, pp. 1-138.
12. Firdos Sohel, 2005, 'Forest Degradation, Changing Workforce Structure and Population Redistribution; The Case of Birhors in Jharkhand', Economic and Political Weekly, Vol. 40, No. 8, pp. 773-778.
13. Williams B. J., 1974, A Model of Band Society, "Memoirs of the Society for American Archaeology", No. 29, pp. 1-138.
14. Pankaj Rajesh, 2008, The Changing Economy of the Birhor of Jharkhand, Indian Anthropologist, Vol. 38, No. 2, pp. 75-82.

Email - arvindashokpuri@yahoo.co.in

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 32–36

नालंदा जिला में बच्चों के टीकाकरण में आंगनबाड़ी सेविकाओं की भूमिका

पूर्णिमा कुमारी
भोध छात्रा, गृह विज्ञान विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।

सार :–

मेरे अध्ययन का विशय ''नालंदा जिला में बच्चों के टीकाकरण में आंगनबाड़ी सेविकाओं की भूमिका का एक अध्ययन है।'' अध्ययन का मूल उद्देश्य नालंदा जिले में बच्चों के टीकाकरण में आंगनबाड़ी सेविकाओं की भूमिका एवं वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करना। अध्ययन कि परिकल्पना आंगनबाड़ी सेविकाएं बच्चों के नियमित टीकाकरण में व्यवस्थित है। परिणामत् यह पाया गया कि जिन क्षेत्रों में आंगनबाड़ी सेविकाएं सक्रिय थीं, वहाँ 85% बच्चों को पूर्ण टीका मिला था, जबकि कमजोर क्षेत्रों में यह दर केवल 60% पायी गयी। अतः नालंदा जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में आंगनबाड़ी सेविकाएं बाल टीकाकरण की रीढ़ साबित हो रही हैं। उनकी मेहनत, सामुदायिक संबंध, और कार्य के प्रति समर्पण के कारण ही टीकाकरण कार्यक्रम गाँव–गाँव तक पहुँचा है।

विशिष्ट शब्द :– टीकाकरण, सामुदायिक संबंध, स्वास्थ्य, PHC, CHC, आंगनवाड़ी सेविकाएं, एवं बच्चें।

आंगनबाड़ी सेविकाएं बिहार में बच्चों के टीकाकरण कार्यक्रम को सफल बनाने में एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं। उनकी मेहनत, समर्पण और सामुदायिक संपर्क की क्षमता के बिना टीकाकरण कार्यक्रमों का समुचित कार्यान्वयन संभव नहीं है। अगर उन्हें उचित प्रशिक्षण, संसाधन और प्रोत्साहन मिले, तो वे बच्चों के संपूर्ण स्वास्थ्य को बेहतर बनाने में और भी प्रभावी भूमिका निभा सकती हैं। भारत सरकार द्वारा बाल मृत्यु दर को कम करने एवं बच्चों के संपूर्ण स्वास्थ्य को सुनिश्चित करने के लिए कई योजनाएं चलाई जा रही हैं, जिनमें टीकाकरण कार्यक्रम एक प्रमुख पहल है।[1] इस कार्यक्रम को गाँव–गाँव तक पहुँचाने में आंगनबाड़ी सेविकाएं एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। बिहार राज्य के नालंदा जिले में, जहाँ बड़ी जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, बच्चों तक समय पर टीकाकरण पहुँचाना एक चुनौती रहा है। लेकिन आंगनबाड़ी सेविकाएं न केवल इस कार्य में सहायता करती हैं, बल्कि माता–पिता को जागरूक भी करती हैं।[2] यह शोध आलेख इस जिले में आंगनबाड़ी सेविकाओं की भूमिका का विस्तृत विश्लेषण करता है।

इस अध्ययन को आधार प्रदान करने हेतु विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय शोध, रिपोर्ट्स, तथा सरकारी दस्तावेजों की समीक्षा की गई।[3] राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS–5), बिहार में बच्चों के टीकाकरण की दर, आंगनबाड़ी केंद्रों की भूमिका और ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं की स्थिति पर विस्तृत जानकारी उपलब्ध है। वहीं

यूनिसेफ के एक रिपोर्ट (2021) के अनुसार बच्चों के टीकाकरण में फ्रंटलाइन कार्यकर्ताओं, विशेषकर आंगनबाड़ी सेविकाओं और आशा कार्यकर्ताओं की भूमिका पर प्रकाश डालती है।[4] रिपोर्ट में बताया गया है कि स्थानीय स्वास्थ्यकर्मी समुदाय के विश्वास अर्जन में सहायक होते हैं। ICDS कार्यक्रम का मूल्यांकन यह रिपोर्ट बताती है कि कैसे आंगनबाड़ी सेविकाएं न केवल पोषण बल्कि टीकाकरण में भी सहायक हैं। एन.आई.टी.आई आयोग ने वर्श 2021 में बिहार के जिलों की स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार हेतु आंगनबाड़ी सेविकाओं की कार्यप्रणाली और उनकी सशक्त भूमिका को रेखांकित किया गया है।[5] जर्नल ऑफ सोशल हेल्थ रिसर्च (2020) के एक अध्ययन के अनुसार जिन क्षेत्रों में सेविकाएं नियमित गृहभेंट और माता मीटिंग करती हैं, वहाँ बच्चों में टीकाकरण की स्थिति बेहतर पाई गई।[6]

बिहार जैसे विकासशील राज्य में बच्चों के स्वास्थ्य और पोषण को सुनिश्चित करना एक महत्वपूर्ण चुनौती रही है। इसमें आंगनबाड़ी सेविकाएं एक अहम भूमिका निभा रही हैं, विशेष रूप से बच्चों के नियमित टीकाकरण कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में भारत सरकार द्वारा शुरू की गई एकीकृत बाल विकास सेवा (ICDS) योजना के अंतर्गत आंगनबाड़ी केंद्रों की स्थापना की गई है, जहाँ सेविकाएं बच्चों और गर्भवती महिलाओं को पोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा और टीकाकरण जैसी सेवाएं प्रदान करती हैं।[7]

टीकाकरण, बच्चों को जानलेवा बीमारियों जैसे कि पोलियो, टीबी, डिप्थीरिया, खसरा, टेटनस आदि से बचाने का एक सशक्त माध्यम है। आंगनबाड़ी सेविकाएं इस कार्य में एक सेतु का कार्य करती हैं जो स्वास्थ्य विभाग और स्थानीय समुदाय को जोड़ती हैं।[8] बिहार के ग्रामीण और पिछड़े इलाकों में जागरूकता की कमी, रूढ़िवादी सोच और संसाधनों की कमी के चलते टीकाकरण कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक लागू करना कठिन होता है। ऐसे में सेविकाएं न केवल सेवा प्रदान करती हैं, बल्कि समुदाय में जागरूकता भी फैलाती हैं।[9]

आंगनबाड़ी सेविकाओं की प्रमुख भूमिकाएं इस प्रकार हैं :-

क. **जागरूकता फैलाना** – सेविकाएं घर–घर जाकर माता–पिता को टीकाकरण के महत्व के बारे में बताती हैं। वे उन्हें टीकों की अनुसूची और संभावित लाभों से अवगत कराती हैं।

ख. **टीकाकरण सत्र का आयोजन** – वे नियमित रूप से स्वास्थ्य विभाग के साथ मिलकर टीकाकरण शिविरों का आयोजन करती हैं और लाभार्थियों की सूची बनाती हैं।

ग. **बच्चों और माताओं की निगरानी** – सेविकाएं बच्चों की उम्र और स्वास्थ्य स्थिति के अनुसार उनके टीकों का रिकॉर्ड रखती हैं और टीका छूटने पर माता–पिता को सूचना देती हैं।

घ. **स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं के साथ समन्वय** – वे एएनएम (सहायक नर्स मिडवाइफ) और आशा कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर काम करती हैं ताकि टीकाकरण की प्रक्रिया सुचारू रूप से चल सके।

ड. **सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाओं को दूर करना** – कई बार लोग टीकाकरण को लेकर भ्रमित या डरे रहते हैं। सेविकाएं स्थानीय भाषा और विश्वासों के अनुरूप लोगों को समझाकर उनका भरोसा जीतती हैं।

अध्ययन का उद्देश्य :-

1. नालंदा जिले में बच्चों के टीकाकरण की वर्तमान स्थिति का मूल्यांकन करना।
2. आंगनबाड़ी सेविकाओं की कार्यप्रणाली, जिम्मेदारियों और चुनौतियों को समझना।

3. यह जानना कि सेविकाएं टीकाकरण के लिए माता–पिता को किस प्रकार प्रेरित करती हैं।
4. समुदाय और स्वास्थ्य विभाग के बीच सेविकाओं की मध्यस्थ भूमिका का अध्ययन करना।
5. बाल टीकाकरण कार्यक्रम की सफलता में उनकी व्यावहारिक भूमिका का विश्ले ाण करना।

परिकल्पना :–

1. आंगनबाड़ी सेविकाएं बच्चों के नियमित टीकाकरण में सकारात्मक और निर्णायक भूमिका निभाती हैं।
2. जिन क्षेत्रों में सेविकाएं सक्रिय और जागरूक हैं, वहाँ टीकाकरण की दर अधिक है।
3. आंगनबाड़ी सेविकाओं की कार्य कुशलता को संसाधनों, प्रशिक्षण और सामुदायिक सहयोग से बढ़ाया जा सकता है।

अध्ययन का क्षेत्र :–

अध्ययन का क्षेत्र नालंदा जिला है जहां से 100 माताओं का और 15 आंगनबाड़ी सेविकाओं का चयन किया गया है। नालंदा बिहार का एक प्रमुख जिला है, जिसकी जनसंख्या लगभग 28 लाख से अधिक है। यहाँ के अधिकांश निवासी कृषि पर निर्भर हैं और करीब 80% जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। जिला स्वास्थ्य मिशन के अनुसार, यहाँ के कई प्रखंडों में बाल टीकाकरण की स्थिति असमान है। कुछ इलाकों में बेहतर तो कुछ में बहुत कमजोर।

अध्ययन की पद्धति :–

यह शोध वर्णनात्मक और क्षेत्र आधारित है। नालंदा जिले के 5 ब्लॉक (बिहार शरीफ, हिलसा, क'तरीसराय, इस्लामपुर और सिलाव) के 20 आंगनबाड़ी केंद्रों का चयन किया गया। प्रत्येक केंद्र से 3 सेविकाएं, 5 माताएं और 2 आशा कार्यकर्ताओं से साक्षात्कार लिए गए। साथ ही, स्वास्थ्य विभाग और आंगनबाड़ी रिकॉर्ड की समीक्षा की गई।

आंगनबाड़ी सेविकाओं की भूमिका :–

1. **टीकाकरण की जानकारी देना** – सेविकाएं समय–समय पर माता–पिता, विशेषकर माताओं को टीकाकरण की महत्ता, समय–सारणी, और इसके लाभों की जानकारी देती हैं। वे यह भी बताती हैं कि प्रत्येक टीका किन बीमारियों से बचाता है। नालंदा जिले कि एक सेविका ने बताया कि "हम हर महीने टीका दिवस से पहले घर–घर जाकर माताओं को बुलाते हैं, और डरने वाले अभिभावकों को समझाते हैं कि यह बच्चों के जीवन की सुरक्षा है।"
2. **टीका दिवस का आयोजन** – प्रत्येक माह निर्धारित दिन को "टीका दिवस" मनाया जाता है, जिसमें आशा कार्यकर्ता, नालंदा जिला के ए.एन.एम., और सेविकाएं मिलकर बच्चों का टीकाकरण करती हैं। सेविकाएं बच्चों के टीका कार्ड को भरवाती हैं और अनुपस्थित बच्चों को चिन्हित कर अगले दौर में बुलाने की जिम्मेदारी निभाती हैं।[10]
3. **माताओं को प्रेरित करना** – ग्रामीण क्षेत्रों में टीकाकरण को लेकर कई मिथक एवं डर फैले होते हैं (जैसे– बुखार आ जाएगा, बच्चा कमजोर हो जाएगा आदि), सेविकाएं इन भ्रांतियों को मिटाने के लिए व्यक्तिगत समझाइश से लेकर सामूहिक बैठकें तक आयोजित करती हैं।
4. **स्वास्थ्य विभाग से समन्वय** – सेविकाएं सरकारी अस्पतालों, उप–स्वास्थ्य केंद्रों और ANM से संपर्क में रहकर टीके की उपलब्धता, टीका लगाने वाले कर्मचारियों की उपस्थिति, और टीकाकरण के परिणामों की

जानकारी जुटाती हैं।

5. **विशे□ा परिस्थितियों में मदद** – जैसे महामारी के दौरान या बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में सेविकाएं घर–घर जाकर या अस्थायी केंद्रों पर टीकाकरण में सहयोग करती हैं।

परिणाम :–

1. **सेविकाओं की कार्य–कुशलता** – 20 में से 17 सेविकाएं नियमित रूप से टीका दिवस आयोजित करती थीं और पूर्ण टीकाकरण सूची तैयार रखती थीं।
2. **टीकाकरण की दर** – जिन क्षेत्रों में सेविकाएं सक्रिय थीं, वहाँ 85.00% बच्चों को पूर्ण टीका मिला था, जबकि कमजोर क्षेत्रों में यह दर केवल 60.00% थी।
3. **चुनौतियाँ** – इसकी प्रमूख चुनौतियां में टीकों की अनियमित आपूर्ति कराना, समुदाय का विरोध या उपेक्षा करना, सेविकाओं का कम मानदेय और कार्यभार अधिक का होना एवं प्रशिक्षण की कमी आदि को माना जा सकता है।
4. **माताओं की राय** – 90.00% माताओं ने कहा कि उन्हें टीकाकरण की जानकारी सेविकाओं से ही मिली थी। इसका मूल कारण संसाधनों की कमी है। कई केंद्रों पर फ्रिज, रजिस्टर, बैठने की जगह और टीका कार्ड तक की कमी है। स्वास्थ्य विभाग का सहयोग सीमित रहती है, कभी–कभी ANM या टीका कर्मी निर्धारित समय पर नहीं आते। समाज की मानसिकता भी एक कारण है, कुछ वर्ग अभी भी वैक्सीन को अनावश्यक मानते हैं। साथ ही मानसिक थकान भी एक कारण रहता है, सेविकाओं को पोषण, स्वास्थ्य, शिक्षा, सर्वेक्षण जैसे कई कार्यों के बीच टीकाकरण संभालना होता है।

नि□क□ि :–

नालंदा जिले के ग्रामीण क्षेत्रों में आंगनबाड़ी सेविकाएं बाल टीकाकरण की रीढ़ साबित हो रही हैं। उनकी मेहनत, सामुदायिक संबंध, और कार्य के प्रति समर्पण के कारण ही टीकाकरण कार्यक्रम गाँव–गाँव तक पहुँचा है। हालांकि संसाधनों और सहयोग की कमी उनकी कार्यक्षमता को सीमित कर रही है, फिर भी सेविकाएं हर परिस्थिति में बच्चों के स्वास्थ्य को प्राथमिकता देती हैं। इस शोध से यह स्पष्ट होता है कि यदि आंगनबाड़ी सेविकाओं को पर्याप्त संसाधन, प्रशिक्षण और सम्मान मिले, तो वे न केवल टीकाकरण को 100% तक पहुँचा सकती हैं, बल्कि ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा की गुणवत्ता में भी क्रांतिकारी बदलाव ला सकती हैं।

सुझाव :–

1. नियमित प्रशिक्षण द्वारा सेविकाओं के लिए बाल स्वास्थ्य, पोषण और टीकाकरण विषय पर विशेष प्रशिक्षण की व्यवस्था करना होगा।
2. प्रोत्साहन योजनाओं को इसमें सम्मिलित करें ताकि जो सेविकाएं 100% टीकाकरण सुनिश्चित करें, उन्हें पुरस्कार या मान्यता दी जाए।
3. सामुदायिक जागरूकता अभियान द्वारा गाँवों में नुक्कड़ नाटक, माता बैठक, पंपलेट, और प्रचार–वाहन के माध्यम से टीकाकरण के प्रति सोच बदली जाए।
4. संवेदनशील प्रबंधन द्वारा भी स्वास्थ्य विभाग द्वारा सेविकाओं को समय पर टीका सामग्री और प्रशासनिक सहयोग दिया जाए।

5. डिजिटल निगरानी जैसे मोबाइल ऐप या MIS सिस्टम से सेविकाओं के कार्यों की निगरानी और प्रगति रिपोर्ट तैयार की जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस–5), बिहार रिपोर्ट, 2020–21।
2. भारत सरकार, एकीकृत बाल विकास सेवा (आईसीडीएस) दिशानिर्देश, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय।
3. यूनिसेफ इंडिया, "ग्रामीण भारत में नियमित टीकाकरण को मजबूत करना", वार्षिक रिपोर्ट, 2021।
4. योजना आयोग, आईसीडीएस पर मूल्यांकन रिपोर्ट, 2015।
5. नीति आयोग, आकांक्षी जिले : स्वास्थ्य क्षेत्र की समीक्षा, 2022।
6. शर्मा, आर. (2020), बाल टीकाकरण में आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की भूमिका। जर्नल ऑफ कम्युनिटी हेल्थ रिसर्च, खंड 8(2), पृष्ठ 45–56।
7. विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ), टीकाकरण एजेंडा 2030– किसी को पीछे न छोड़ने की वैश्विक रणनीति, 2021।
8. सिन्हा, ए. (2019), भारत में जमीनी स्तर के स्वास्थ्य कार्यकर्ता और सार्वजनिक स्वास्थ्य वितरण, सेज प्रकाशन।
9. बालवाड़ी मॉडल : बाल विकास परियोजना कार्यालय, बालवाड़ी जिला।
10. बिहार राज्य स्वास्थ्य सोसायटी, जिला स्वास्थ्य कार्य योजना–नालंदा, 2021–22।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 37-41

जयश्री राय की कहानियों में चित्रित स्त्री–पुरूष संबंध (प्रेम संबंध के सन्दर्भ में)

शिवराजकुमार कल्लूर
शोधार्थी, हिंदी अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग, कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, मैसुरु – ५७०००६

मुख्य शब्द :- जयश्री राय, कहानी, स्त्री–पुरुष संबंध, प्रेम संबंध।

सार लेख :-

जयश्री राय की कहानियाँ 'निषिद्ध', 'काँच के फूल', 'काली कलूटी', 'बेटी बेचवा', 'वर्जित सुख', 'अपनी कैद', और 'औरत जो नदी है' प्रेम की जटिलताओं, सीमाओं, और विकृत रूपों का प्रभावी चित्रण करती हैं। इन कहानियों में प्रेम का वह स्वरूप सामने आता है, जो सृजनात्मकता के बजाय जुनून, आसक्ति और आत्म–विनाश की ओर बढ़ता है।

'निषिद्ध' में राका का अस्वस्थ प्रेम उसे विनाश की ओर ले जाता है, जबकि 'काँच के फूल' में हिया और नील का आकर्षण उसे भटकाव की स्थिति में डाल देता है। 'काली कलूटी' में लावण्य के प्रेम में छल और भ्रम का पहलू सामने आता है। 'बेटी बेचवा' में बबुनी का गंगा के प्रति अटूट प्रेम उसे आत्मविस्मृति की ओर धकेलता है, जबकि 'वर्जित सुख' में नायिका को उसके सौंदर्य की गहराई समझने वाला साथी न मिल पाने का दर्द झेलना पड़ता है। 'अपनी कैद' में बीली और लीजा का प्रेम कोमलता और सौंदर्य के प्रति एक अभिव्यक्ति है, वहीं 'औरत जो नदी है' में अशेष और दामिनी के बीच का प्रेम आवेग और पागलपन की हदों को पार कर जाता है।

इन कहानियों में राय ने प्रेम की सीमा और उसके गहरे मानसिक व भावनात्मक प्रभावों का चित्रण किया है। उनके पात्र प्रेम के असीमित आकर्षण में खोकर अपना आत्म–संयम, स्वतंत्रता, और पहचान खो देते हैं, जो दर्शाता है कि प्रेम जब सीमाओं से परे जाकर जुनून और आसक्ति में बदलता है, तो वह जीवन की दिशा को बुरी तरह प्रभावित कर सकता है। इन कहानियों में सामाजिक मुद्दों, जैसे बाल विवाह और स्त्री की स्थिति पर भी राय ने गंभीर दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।

भूमिका :-

स्त्रियों और पुरुषों के प्रेम के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव, विशेष रूप से सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण, महत्वपूर्ण हैं। एक समय था जब प्रेम को केवल भावनात्मक या शारीरिक जुड़ाव के रूप में देखा जाता था, लेकिन अब यह व्यापक और गहरे रूप में समझा जा रहा है। स्त्रियाँ अब केवल भावनात्मक संतोष नहीं, बल्कि सुरक्षा, सम्मान, और समानता भी चाहती हैं। यही कारण है कि प्रेम को केवल एक 'भावनात्मक संबंध' के

रूप में नहीं, बल्कि 'समानता' और 'साझेदारी' के रूप में देखा जा रहा है।

आधुनिक स्त्री की आत्मनिर्भरता और विवेकशीलता यह दर्शाती है कि वह अपनी पसंद और निर्णयों में अधिक स्वतंत्र हो गई है, और यह बदलाव केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि समाज और संस्कृति के संदर्भ में भी है। शहरीकरण, शिक्षा, और आर्थिक स्वतंत्रता ने स्त्रियों को अधिक सक्षम और समृद्ध बनाया है, और इसके साथ ही उनके रिश्तों के प्रति दृष्टिकोण में भी बदलाव आया है। अब, वह केवल प्यार में खोने की बजाय, जीवन के सभी पहलुओं में परस्पर सम्मान और समझदारी चाहती हैं।

यहां तक कि प्रेम के व्यावसायिक पहलू को जोड़ने की प्रवृत्ति भी इस बदलाव का एक हिस्सा है। जैसे आपने कहा, प्रेम अब सिर्फ भावनाओं के आदान–प्रदान तक सीमित नहीं है, बल्कि यह 'सुविधाओं' और 'आर्थिक सुरक्षा' से भी जुड़ने लगा है। यह विशेष रूप से उन लोगों के लिए प्रासंगिक है जो जीवन की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में संघर्ष कर रहे हैं, और उनके लिए आर्थिक स्थिरता एक महत्वपूर्ण कारक बन गई है।

फिर भी, यह सच है कि प्रेम के प्रति प्रत्येक व्यक्ति का दृष्टिकोण अलग होता है। कुछ लोग अभी भी प्रेम को एक गहरे, भावनात्मक संबंध के रूप में मानते हैं, जबकि कुछ लोग इसे अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखते हैं। यह विविधता ही प्रेम की जटिलता और इसकी अनगिनत परतों को दर्शाती है। समाज की बदलती धारा के साथ प्रेम का स्वरूप बदल सकता है, लेकिन इसकी मूल भावना–संबंध, जुड़ाव, और आपसी समझ–अभी भी उसी स्थान पर बनी हुई है।

जयश्री राय की कहानी 'निषिद्ध' में प्रेम की जटिल और विकृत रूप में परिणति का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। यह कहानी गहन मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक द्वंद्व को उजागर करती है, जिसमें प्रेम अपने स्वस्थ और सृजनात्मक स्वरूप से विकृत होकर आत्म–विनाश की ओर बढ़ता है।

राका के सौतेले पिता द्वारा प्रेम की दी गई परिभाषा यह बताती है कि जब प्रेम सीमाओं को पार करके जुनून और आसक्ति में बदल जाता है, तो वह न केवल प्रेम करने वाले व्यक्ति को, बल्कि उसके आसपास के लोगों को भी गहरे मानसिक और भावनात्मक संकट में डाल सकता है। राका का अनुभव इस बात को रेखांकित करता है कि प्रेम, जो सामान्यतः सृजन, पोषण और जीवन की प्रेरणा का आधार माना जाता है, गलत दिशा में बढ़कर विनाशकारी बन सकता है। राका की स्थिति एक ऐसे प्रेम की प्रतीक है, जो अत्यधिक और अस्वस्थ जुनून में बदल गया। उसकी भावनाएँ कैंसर की तरह उसके पूरे अस्तित्व को दुर्बल और पीड़ित कर गईं, जिससे उसका जीवन असहनीय हो गया। कहानी इस विचार को भी प्रस्तुत करती है कि जब जीवन में ऐसी भावनात्मक बीमारियाँ जड़ें जमा लेती हैं, तब कभी–कभी मृत्यु ही एकमात्र राहत का मार्ग प्रतीत हो सकती है।

'काँच के फूल' में हिया और नील का प्रेम एक ऐसा जुनून बन गया है, जो हिया की जिंदगी को पूरी तरह से अपनी गिरफ्त में ले लेता है। हिया कॉलेज की पढ़ाई छोड़कर नील के साथ बाइक पर घूमने, पार्टियों में शामिल होने और उसके साथ हर वक्त बिताने में ही व्यस्त रहती है। यह प्रेम उसकी सोच और समझ पर पूरी तरह से हावी हो गया है। वह अपनी जिम्मेदारियों और भविष्य की परवाह किए बिना नील के आकर्षण में खो जाती है। कभी–कभी उसे अपनी इस स्थिति पर ग्लानि भी होती है, लेकिन नील के प्रति उसकी भावनाएँ इतनी प्रबल हैं कि वह खुद को रोक नहीं पाती। यह कहानी दर्शाती है कि प्रेम जब अपनी सीमाएँ पार कर जुनून और आसक्ति में बदल जाता है, तो वह व्यक्ति की सोच और जीवन की दिशा को पूरी तरह बदल सकता है, उसे

एक भटकाव की स्थिति में डाल सकता है।

'काली कलूटी' में लावण्य की कहानी एक और प्रकार के प्रेम को प्रस्तुत करती है, जो छल और भ्रम से भरा हुआ है। लावण्य ने आलोक के प्रेम को सच्चाई मान लिया और अपने बंजर जीवन में पहली बार किसी के प्रति अपनी भावनाओं को इतने प्रगाढ़ रूप में महसूस किया। आलोक की आँखों में अपने लिए प्रशंसा देखकर उसका आत्मविश्वास जागा, और उसने उस प्रेम को अपनी दुनिया का केंद्र बना लिया। लावण्य का यह अनुभव यह दर्शाता है कि कभी–कभी प्रेम के छलावे में व्यक्ति अपने आत्मसम्मान और वास्तविकता की समझ को खो देता है। आलोक का छल लावण्य के जीवन में एक मीठे भ्रम की तरह आया, जिससे उसे एक पल के लिए तो जीवन में सार्थकता और खुशी मिली, लेकिन अंततः यह प्रेम एक छलावा ही साबित हुआ।

'बेटी बेचवा' कहानी में प्रेम का चित्रण बेहद गहन और काव्यात्मक रूप में किया गया है। बबुनी का चरित्र प्रेम की स्वाभाविकता और उसकी अनियंत्रित शक्ति को दर्शाता है। बबुनी अपने गाँव में बड़ी हो गई है, और उसके आसपास कई लड़के उसे चाहते हैं। लेकिन गंगा, जो सबसे अलग है, उसके प्रति बबुनी के मन में प्रेम जाग उठता है। वह इस प्रेम को रोकने की बहुत कोशिश करती है, अपने दिल को समझाने की कोशिश करती है, लेकिन यह भावनाएँ इतनी प्रबल हैं कि वह अंततः हार मान जाती है – गंगा से भी और अपने आप से भी। यह प्रेम उसके लिए बेकाबू जुनून बन जाता है। उसकी बेचैनी और व्याकुलता का वर्णन बेहद प्रभावी है – जैसे उसका मन बार–बार मरखहे बैल की तरह बंधन तोड़कर गंगा की ओर भागने को तैयार है। प्रेम उसके लिए एक बंधन की तरह हो जाता है, जिसमें वह स्वयं को खो देती है। बबुनी, जो पहले खुद को एक स्वतंत्र व्यक्ति समझती थी, अब गंगा के प्रेम में बँधकर रह गई है। यह प्रेम उसके अस्तित्व पर इतना प्रभाव डालता है कि उसकी स्वतंत्रता और स्वाभाविकता गंगा के प्रति उसकी भावनाओं में उलझकर रह जाती है। प्रेम की यह अनुभूति बबुनी के लिए ऐसी स्थिति में बदल जाती है, जहाँ वह अपने अस्तित्व का हर पहलू गंगा से जोड़ देती है। उसकी तुलना उस मछली से की गई है, जो पानी में तैरने की स्वतंत्रता भूलकर किसी की कटार में बिंध जाती है। अब उसकी साँसें और उसके आँसू, सब कुछ गंगा से जुड़ गए हैं।

'वर्जित सुख' में नायिका एक सुंदर, लेकिन अकेली और उदास महिला है, जो अरुण के साथ विवाह तो कर लेती है, परंतु वह आत्मीयता और प्रेम जो उसे चाहिए था, वह अरुण से नहीं मिल पाता। अरुण उसे महज एक खूबसूरत वस्तु की तरह देखता है, जिससे घर की शोभा बढ़ती है। उसका जीवन केवल बाहरी सुंदरता तक सीमित हो जाता है, भावनात्मक जुड़ाव उससे दूर रह जाता है। ऋत्विक का उसके जीवन में आना उसे पहली बार यह एहसास कराता है कि उसका सौंदर्य केवल सजावट नहीं, बल्कि एक संवेदनशील आत्मा का भी प्रतीक है। ऋत्विक उसकी सुंदरता और उदासी को महसूस करता है, और यह एहसास उसे एक नई दृष्टि प्रदान करता है। कहानी में नायिका के भीतर उठते भावनात्मक तूफान को जयश्री राय ने बहुत ही मार्मिकता से प्रस्तुत किया है।

'अपनी कैद' में बीली और लीजा के बीच का आकर्षण भी बहुत ही जीवंत और काव्यात्मक रूप में चित्रित किया गया है। लीजा के सौंदर्य ने बीली के दिल में पहली बार प्रेम की हलचल मचाई, और उसकी कोमलता और ममता ने उसे गहरे तक छुआ। बीली के लिए लीजा न केवल एक सुंदर लड़की थी, बल्कि एक ऐसी शख्सियत थी जिसने उसके भीतर कविता और कल्पना को जन्म दिया। लीजा का सजीव वर्णन, उसकी सुंदरता

और स्नेहिल स्वभाव का चित्रण कहानी को बेहद संवेदनशील बना देता है।

'औरत जो नदी है' में अशेष और दामिनी के बीच की कहानी प्रेम की तीव्रता और आवेग को दर्शाती है। अशेष पहली नजर में दामिनी को देखकर उसके प्रति एक अनिवार्य आकर्षण अनुभव करता है। उसकी उपस्थिति उसके पूरे अस्तित्व को हिला देती है, और उसकी देह गंध और त्वचा का स्वाद उसे एक गहरे, पागलपन भरे प्रेम में डुबो देता है। कहानी में प्रेम की तीव्रता और उसका मानवीय अस्तित्व पर प्रभाव बहुत प्रभावशाली ढंग से उभरता है।

'बेटी बेचवा' में बिरजू की कहानी एक अलग ही सामाजिक और भावनात्मक पहलू को दर्शाती है। बिरजू दो विवाहों के बाद तीसरी शादी के लिए तैयार होता है, और जब वह बबुनी को देखता है, तो उसकी मासूमियत और अपरिपक्व सुंदरता उसे मोह लेती है। बबुनी की छोटी सी, गोल–मटोल, मासूम छवि उसके मन में गहरी छाप छोड़ती है। उसकी मासूमियत और अपरिपक्वता के प्रति यह आकर्षण बिरजू के मन में एक नया भाव पैदा करता है, और वह विवाह का प्रस्ताव भिजवाता है। यह कहानी समाज में स्त्री की स्थिति, मासूमियत, और बाल–विवाह की प्रथा पर भी एक गंभीर दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है।

निष्कर्ष :-

जयश्री राय की कहानियाँ प्रेम के विभिन्न रूपों और उसके जटिल प्रभावों का गहन और मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती हैं। इन कहानियों में प्रेम का रूप न केवल मानसिक और भावनात्मक तनाव की ओर बढ़ता है, बल्कि यह विकृत होकर आत्म–विनाश और भ्रम की ओर भी मुड़ सकता है। चाहे वह राका का अस्वस्थ जुनून हो, हिया का बिना किसी भविष्य की चिंता किए नील के प्रति आसक्ति हो, या बबुनी का गंगा के प्रेम में उलझा हुआ अस्तित्व– प्रेम के ये रूप यह दर्शाते हैं कि जब प्रेम अपनी सीमा से बाहर बढ़ जाता है, तो वह व्यक्ति के जीवन को उलझा कर, उसे भटकाव और मानसिक पीड़ा में डाल सकता है।

कहानियाँ प्रेम के न केवल शारीरिक या भावनात्मक पहलुओं को, बल्कि उसके सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभावों को भी उजागर करती हैं। काली कलूटी में लावण्य की स्थिति, जहां वह अपने आत्मसम्मान और वास्तविकता की समझ को खो देती है, वर्जित सुख में नायिका की अनमोल आत्मीयता की तलाश, और अपनी कैद में बीली और लीजा के बीच का आकर्षण– ये सभी उदाहरण प्रेम की जटिलता और उसकी ताकत को दर्शाते हैं।

इन कहानियों के माध्यम से जयश्री राय यह दिखाती हैं कि प्रेम के आदान–प्रदान में जब कोई असंतुलन उत्पन्न होता है– चाहे वह जुनून हो, भ्रम हो, या अस्वस्थ आसक्ति– तो यह व्यक्ति की सोच और जीवन को प्रभावित करता है। अंततः, प्रेम के विकृत रूप में परिणत होने पर कभी–कभी व्यक्ति को शांति या राहत मृत्यु के रूप में ही मिलती है, जैसा कि राका के अनुभव में दिखाई देता है।

कुल मिलाकर, जयश्री राय की कहानियाँ प्रेम के अस्थिर और असंतुलित रूपों को पकड़ती हैं, जो व्यक्ति के अस्तित्व और मानसिक स्थिति पर गहरा प्रभाव डालते हैं। इन कहानियों का निष्कर्ष यह है कि प्रेम की स्वाभाविकता, उसकी सृजनात्मकता, और उसकी मर्यादा का उल्लंघन उसे न केवल नष्ट कर देता है, बल्कि वह व्यक्ति के पूरे जीवन को संकट और पीड़ा का कारण भी बना सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. 'निषिद्ध' – तुम्हें छू लू जरा, जयश्री राय : 2012 (सामयिक प्रकाशन)
2. 'काँच के फूल' – तुम्हें छू लू जरा, जयश्री राय : 2012 (सामयिक प्रकाशन)
3. 'काली कलूटी' – तुम्हें छू लू जरा, जयश्री राय : 2012 (सामयिक प्रकाशन)
4. 'बेटी बेचवा' – तुम्हें छू लू जरा, जयश्री राय : 2012 (सामयिक प्रकाशन)
5. 'वर्जित सुख' – तुम्हें छू लू जरा, जयश्री राय : 2012 (सामयिक प्रकाशन)
6. 'अपनी कैद' – तुम्हें छू लू जरा, जयश्री राय : 2012 (सामयिक प्रकाशन)
7. 'औरत जो नदी है' – तुम्हें छू लू जरा, जयश्री राय : 2012 (सामयिक प्रकाशन)
8. 'बेटी बेचवा' – तुम्हें छू लू जरा, जयश्री राय : 2012 (सामयिक प्रकाशन)

Email : sbkallur8@gmail.com

Mob : 8073466950

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 42-45

रामायण कालिन धार्मिक जीवन : एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. सिकन्दर कुमार वर्मा
पी–एच0 डी0, प्रा.भा. एवं ए. अध्ययन विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया।

शोध सार :–

प्रस्तुत शोध लेख ''रामायण कालिन धार्मिक जीवन : एक ऐतिहासिक अध्ययन'' है। इस शोध लेख में रामायण जीवन जीने की संपूर्ण कलाओं को बुद्धि विवेक को जागृत करने की कल्याणकारी ग्रँथ है जिसमें सारे जीवन का सार छुपा हुआ है। रामायण हमें धर्म के रास्ते पर चलना सिखलाती है। जीवन के हर मोड़ पर मार्गदर्शन करती है। रामचरित मानस की कुछ चौपाई व दोहे को पढ़ने से मन शांत हो जाता है। कलयुग में राम नाम लेने से ही जीवन का उद्धार हो जाता है। रामकथा सभी मनोरथो को पूर्ण करने की 'संजीवनी बूटी' है जिस घर में प्रतिदिन सुबह रामायण पढ़ने से घर मे सुख शांतिपूर्ण माहौल बना रहता है, कलह क्लेश दूर हो जाते हैं। राम नाम जपने से भवसागर तर जाते हैं और परमधाम मुक्ति का यही एकमात्र उपाय है।

विशिष्ट शब्द : धार्मिक जीवन, माकाव्य, आद ा, पुरान, बौद्धिक एवं मानसिक इत्यादि।

विस्तार :–

रामायण में एक आदर्श परिवारों का समावेश है जिसमें 'आदर्श पिता, भाई, पुत्र, मित्र, सेवक, गुरु, शिष्य, तथाकथित पति पत्नी के कीर्तिमान स्थापित करने की एकमात्र स्त्रोत्र रामायण ही है'। 'राम जी की कही गई वो बात आज सार्थक सिद्ध हो रही है कि "जीवन में जो कुछ भी मिले उसे सहर्ष स्वीकार करो उसे नियति का निर्णय मानकर सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिए। रामायण जीवन जीने की संपूर्ण कलाओं को बुद्धि विवेक को जागृत करने की कल्याणकारी ग्रँथ है। जिसमें सारे जीवन का सार छुपा हुआ है। रामायण हमें धर्म के रास्ते पर चलना सिखलाती है। जीवन के हर मोड़ पर मार्गदर्शन करती है। रामचरित मानस की कुछ चौपाई व दोहे को पढ़ने से मन शांत हो जाता है। कलयुग में राम नाम लेने से ही जीवन का उद्धार हो जाता है।

'कलयुग केवल नाम आधारा'।
'जपत निरन्तर नर होई है पारा'।।

रामकथा सभी मनोरथो को पूर्ण करने की 'संजीवनी बूटी' है जिस घर में प्रतिदिन सुबह रामायण पढ़ने से घर में सुख शांतिपूर्ण माहौल बना रहता है, कलह क्लेश दूर हो जाते हैं। राम नाम जपने से भवसागर तर जाते हैं और परमधाम मुक्ति का यही एकमात्र उपाय है। भारतीय संस्कृति में रामायण ग्रँथ सिर्फ किताब नहीं है ये जीवन

के इतिहास के पन्नों में छिपी हुआ गूढ़ रहस्यों का अदभुत खजाना है जिसे हमें सभी परिवार सहित पूरे विश्व में सारे संसार में इसे रामायण को पढ़ते हुए अमल करते हुए उन गड़े हुए खजानों को खोज निकालना चाहिए।

महर्षि वाल्मीकिकृत रामायण प्राचीन भारत का धार्मिक ग्रन्ध होने के साथ ही सामाजिक और राजनीतिक विचारों और आदर्शो का प्रमुख स्रोत है। श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में रामकथा के माध्यम से देश की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है। इसमें राजा दशरथ के पुत्र श्रीराम के जीवन और राक्षसों के राजा रावण के युद्ध और उनकी विजय का विस्तृत वर्णन करते हुए विभिन्न प्रकार के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक मूल्यों और आदर्शो की स्थापना की गयी है। रामायण में वर्णित महत्वपूर्ण राजनीतिक विचार निम्नलिखित हैं–

(1) राज्य सम्बन्धी विचार :-

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में राजा को ईश्वर का अंश कहा गया है। श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में राज्य और राजा एक दूसरे के पूरक माने गये। राज्य में राजा को केन्द्रीय स्थान दिया गया। उसके बिना राज्य का अस्तित्व नहीं था। राज्य को आवश्यक मानते हुए श्री वाल्मीकि ने अराजक राज्य का विस्तार से वर्णन किया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि समाज में शान्ति और सुव्यवस्था के लिए राजा का होना अति आवश्यक है।[2] श्री वाल्मीकि ने उल्लेख किया है कि राजा दशरथ की मृत्यु के बाद सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण, पुरोहित वशिष्ठ जी और सभी मन्त्रियों ने एकत्र होकर मन्त्रण की और कहानि ''इक्ष्वाकुवंशी राजकुमारों में से किसी को आज ही यहाँ का राजा बनाया जाय क्योंकि राजा के बिना इस राज्य का नाश हो जायेगा।'' जहाँ भी राजा नहीं होता वहाँ के खेतों में मुट्ठी के मुट्ठी बीच नहीं बिखेरे जाते, राजा से रहित देश में पुत्र पिता के और स्त्री पति के वश में नहीं रहती। बिना राजा के राज्य में मनुष्य कोई पंचायत भवन नहीं बनवाते, रमणीक उद्यान का निर्माण नहीं करवाते तथा हर्ष और उत्साह के साथ पुष्यगृह, धर्मशाला, मन्दिर आदि भी नहीं बनवाते हैं। अराजक राज्य में राष्ट्र को उन्नतिशील बनाने वाले उत्सव जिसमें नट और नर्तक हर्ष भर अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं, बढ़ने नहीं पाते हैं तथा दूसरे राष्ट्र–हितकारी संघ भी पनपने नहीं पाते हैं। राजा के अभाव में राज्य में धनी लोग सुरक्षित नहीं रह पाते तथा कृषि और गोरक्षा से जीवन निर्वाह करने वाले वैश्य भी दर दरवाजा खोलकर नहीं सो पाते हैं।

राजा रहित जनपद में दूर जाकर व्यापार करने वाले वणिक बेचने की बहुत सी वस्तुयें साथ लेकर कुशलपूर्वक मार्ग तय नहीं कर सकते। जहाँ कोई राजा नहीं होता उस जनपद में संध्या होने पर वहीं डेरा डाल देने वाला, अपने अन्तःकरण के द्वारा परमात्मा का ध्यान करने वाला और अकेला ही विचरने वाला जितेन्द्रिय मुनि घूमता नहीं है (क्योंकि उसे कोई भोजन देने वाला नहीं होता)। अराजक राज्य में लोगों को अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति और प्राप्त वस्तु की रक्षा नहीं हो पाती।[3] राजा के न रहने पर सेना भी युद्ध में शत्रुओं का सामना नहीं करती। जैसे जल के बिना नदियाँ, घास के बिना वन और ग्वालों के बिना गौवों की शोभा नहीं होती, उसी प्रकार राजा के बिना राज्य शोभा नहीं पाता है। राजा के बिना राज्य में किसी भी मनुष्य की कोई भी वस्तु अपनी नहीं रह जाती। जैसे मतस्य एक दूसरे को खा जाते हैं, उसी प्रकार अराजक देश के लोग सदा एक दूसरे को खाते–लूटते–खसोटते रहते हैं। जो वेद शास्त्रों की तथा अपनी–अपनी जाति के लिए नियत वर्णाश्रम की मर्यादा को भंग करने वाले नास्तिक मनुष्य पहले राजदण्ड से पीड़ित होकर दबे रहते थे वे भी अब राजा के न रहने से निशंक होकर अपना प्रभुत्व प्रकट करेंगे।

उपर्युक्त वर्णन के द्वारा वाल्मीकि ने प्रत्यक्ष रूप से राज्य की महत्ता को प्रदर्शित किया है। रामायण में वाल्मीकि ने विभिन्न प्रकार के राज्यों का वर्णन किया है जिसमें कौशल नाम के जनपद का उल्लेख है। रामायण में यह उल्लेख है– ''कौशल नाम से प्रसिद्ध एक बहुत बड़ा जनपद है जो सरयू नदी के किनारे बसा हुआ है। वह प्रचुर धन–धान्य से सम्पन्न, सुखी और समृद्धशाली हैं। उसी जनपद में अयोध्या नाम की एक नगरी है जो समस्त लोकों में विख्यात है। उस पुरी को स्वंय महाराज मनु ने बनवाया और खुदवाया था। ''वह शोभा शालिनी महापुरी बारह योजन लम्बी और तीन योजन चौड़ी थी। वहाँ बाहर के जनपदों में जाने का जो विशाल राजमार्ग था, वह उभयपार्श्व में विविध वृक्षावलियों से सुशोभित होने के कारण सुस्पष्टतया अन्य मार्गो से विभक्त जान पड़ता था।

रामायण में कहा गया है कि राजा दशरथ के आधिपत्य में 300 राज्य थे। वे एक ही प्रकार की सत्ता रखते थे। वे माण्डलिक अथवा करद राज्य थे। राजा दशरथ द्वारा किये गये अश्वमेघ यज्ञ के समय सभी राज्यों के राजा आमन्त्रित किये गये थे जिनमें मिथिला के जनक, काशी और कैकेय देश के नरेश, अंग देश के राजा रोमपाद, कौशल राज्य के भानुभान, मगध देश के राजा प्राप्तिज्ञ का नाम उल्लेखनीय है। उसके साथ ही पूर्व देश, सिन्धु सौवीर एवं सुराष्ट्र के भूपालों को भी निमन्त्रित किया गया था। ये सभी राजा महाराज दशरथ के लिए बहुत सी रत्नों की भेंट लेकर आये थे। पुनः ये सभी राजा राम के राज्याभिषेक के अवसर पर आमन्त्रित किये गये थे। अयोध्या की सुन्दरता, भवयता, समृद्धि, जनसंख्या आदि का वर्णन भी रामायण में विस्तार से किया गया है जो इस प्रकार है– ''जैसे स्वर्ग में देवराज इन्द्र ने अमरावती बसायी थी उसी प्रकार कर्म और न्याय के बल से अपने महान राष्ट्र की वृद्धि करने वाले महाराज दशरथ ने अयोध्यापुरी को पहले की अपेक्षा विशेष रूप से बसाया था। कर देने वाले नरेशों के समुदाय उसे सदा घेरे रहते थे। विभिन्न देशों के निवासों वैश्य उस पुरी की शोभा बढ़ाते थे। देवलोक में तपस्या से प्राप्त हुए सिद्धों के विमानों की भाँति भी उस पुरी का भूमंडल में सर्वोत्तम स्थान था। वहाँ के सुन्दर महल बहुत अच्छे ढंग से बनाये और बसाये गये थे। उनके भीतरी भाग बहुत सुन्दर थे।[4] बहुत से श्रेष्ठ पुरूष उस पुरी में निवास करते थे। अग्निहोत्री, शम–दम आदि उत्तम गुणों से सम्पन्न तथा अगों सहित सम्पूर्ण वेदों के पारंगत विद्वान, श्रेष्ठ ब्राह्मण उस पुरी को सदा घेरे रहते थे। ऐसे महर्षि कल्प महात्माओं और ऋषियों से अयोध्यापुरी सुशोभित थी तथा राजा दशरथ उसकी रक्षा करते थे।

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में एक धार्मिक नगरी के रूप में अयोध्या का चित्रण किया गया है। राजा दशरथ को धर्म, अर्थ और काम का सम्पादन करने वाला बताया गया है जिनके राज्य में सभी मनुष्य प्रसन्न, धर्मात्मा, बहुश्रत, निर्लोभी, सत्यवादी तथा अपने–अपने धन से सन्तुष्ट रहने वाले थे। इसके विपरीत रावण के राज्य का वर्णन (जो अधर्म पर आधारित था) भी रामायण में किया गया है जो राक्षसों और उनकी राक्षसी प्रवृत्तियों से भरा हुआ था जिसका विस्तार सौ योजन था। इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवता और असुर मिलकर भी इसे ध्वस्त नहीं कर सकते थे। रावण के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि देवता, यक्ष, गन्धर्व, ऋषियों आदि किसी के द्वारा उसके पराक्रम की समानता नहीं की जा सकती थी, जिसके अधीन बत्तीस करोड़ राक्षस थे।

उद्देश्य :-

1. रामायण जीवन जीने की संपूर्ण कलाओं को बुद्धि विवेक को जागृत करने की कल्याणकारी ग्रँथ है इसकी जानकारी प्राप्त करना।

2. रामकथा के माध्यम से देश की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है इसे ज्ञात करना।
3. संस्कार दाम्पत्य जीवन के उत्तरदायित्व के प्रतीक है इसकी जानकारी प्राप्त करना।
4. वर्ण और आश्रम की विविधता के अनुरूप इन संस्कारों में भी विविधता दृष्टिगोचर होती है इसे ज्ञात करना।

निष्कर्ष :-

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि रामकथा सभी मनोरथो को पूर्ण करने की 'संजीवनी बूटी' है जिस घर में प्रतिदिन सुबह रामायण पढ़ने से घर में सुख शांतिपूर्ण माहौल बना रहता है कलह क्लेश दूर हो जाते हैं। राम नाम जपने से भवसागर तर जाते हैं और परमधाम मुक्ति का यही एकमात्र उपाय है। भारतीय संस्कृति में रामायण ग्रँथ सिर्फ किताब नहीं है ये जीवन के इतिहास के पन्नों में छिपी हुआ गूढ़ रहस्यों का अदभुत खजाना है जिसे हमें सभी परिवार सहित पूरे विश्व में सारे संसार में इसे रामायण को पढ़ते हुए अमल करते हुए उन गड़े हुए खजानों को खोज निकालना चाहिए।

संदर्भ सूचि :-

1. वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 8 सर्ग–श्लोक–2।
2. ब्रह्मसूत्र 1, 3,33 पर भांकरभाश्य, 2007 पृ0 58
3. निरूक्त दैवतकाण्ड, ब्रह्मसूत्र उन पर भांकर भाश्य, गीता 7. 20–23 तु0 योगसूत्र 2009, पृ0 44
4. महिल्म्नस्त्रोत भलोक 20, क्रतौ सुप्ते जाग्रत्वमसि फलयोगे क्रतुमताम् इत्यादि तथा उस पर मधुसूदनी व्याख्या, 2009, पृ0 58
5. वाल्मीकि रामायण–बालकाण्ड–9 सर्ग–श्लोक–5।
6. ऋ0 सं0 10.14–18
7. उदाहाराणार्थ, वैदिक रूद्र का संबंध सिन्धु संस्कृति से अनायास प्रतिपाद्य है– तु0 दि वैदिक एज, 2011, पृ0 203
8. वही, पृ0 168
9. महाभाश्य अश्टध्यायी 2.2.6 कपिल पिंगलकेश इत्येनानप्पभ्यन्तरान् ब्राह्मण्ये गुणान् कुर्वन्ति।
10. बौद्धचर्या पद्धति, भदन्त बोधानन्द।
11. म0 नि0 2/4/5 अनुवाद, पृ0 348
12. संक्षिप्त भविश्यपुराण मध्यम पर्व 3/2/13,13
13. भविश्य पुराण अं0 संक्षिप्त भविश्य पुराण विशेशांक, 2002, पृ0 226
14. वही, अं0 9–11
15. भगवद्गीता 3–11
16. भगवतद्गीता 3–11
17. भगवद्गीता, पृ0 16
18. सुत्तनिपात सुन्दरिक भारद्वाज सुत्त, पृ0 9–24
19. गीता 4–32

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 46–51

The Hammer & Sickle : The Ultimate Symbol of Communism

Vikram Rajat Dungdung
M.A - International Relations & Political Science
UGC Net Qualified – Political Science

Abstract :

The hammer and sickle when people see this symbol they mostly think of things like communism socialism and the USSR and it's true that lots of communist organizations down the years have used this symbol in their logos. Today the flag of Russia is rectangular in form and comprises three equal horizontal stripes: the upper one white, the middle one blue, and the lower one red. But before December 1991 Russia was a part of the Soviet Union and the flag of the Soviet Union looked like this. This flag is commonly called the hammer and sickle flag because it has a hammer and sickle inside it. Although this flag belonged to the Soviet Union, but after that whenever there is talk of communism in the world, then generally you will see this symbol somewhere or the other. The hammer and sickle is one of the world's most widely recognized symbols that carry a powerful symbolic message that reflects the alliance between rural and urban workers a union considered essential for the success of a communist Society. So in this article, we will analyze how this hammer and sickle became the flag of the Soviet Union and after that why people started associating this symbol with communism.

Introduction :

The hammer and sickle became one of communism's most famous symbols the image has a powerful symbolic message since it represents the alliance of rural and urban workers the partnership is essential for the success of a communist society the sickle as an agricultural instrument represents all rural workers while the hammer is used to signify factory workers and manufacturers after a contest in 1917 the symbol started to be part of the soviet union coat of arms and would later be used as part of its flag. This symbol became part of several flags of communist countries or flags of political parties with the communist bias around the globe the hammer and sickle would become one

of the 20th century's most iconic symbols awakening feelings of love and hate but hardly ever viewed with indifference.[1]

Origin and Early Development :

In March 1917, Russia was under monarchy and the Russian Empire. The First World War began in 1914, with Russia in the Entente Powers, allied with France and Britain. America also joined the Russian Empire, fighting against the Central Powers, Germany, Austria-Hungary, and the Ottoman Empire. The Russian Empire struggled from the start of the war, compared to the Germans, and was on the back foot.[2]

The Russian Empire faced significant challenges during World War I, including a lack of resistance from the Germans on the Eastern Front. By 1917, the condition of Russian soldiers on the Eastern Front and the internal conditions of Russia were dire, with many civilians, workers, peasants, and laborers facing hunger and dissatisfaction with their monarchy. This economic crisis was not solely due to the war but also to the Russian Empire's inability to adopt the industrial revolution well before the war. The February Revolution, which occurred in February, marked the beginning of the revolution, and after it, Tsar Nicholas II had to leave his throne. The economic struggles in Russia were not solely due to the war but also contributed to the country's economic struggles. The provisional government was tasked with handling Russia, but it failed to improve its internal struggles, economic condition, and World War One conditions. Germany, fighting on the Western Front and the Eastern Front, wanted the Russian Empire to exit the war. To achieve this, they supported the Russians in a revolution against the provisional government, leading to a significant change in the region's history.

In 1918, Russian leader Vladimir secretly transported them to Russia, where a group of Bolsheviks led by Vladimir Lenin took power. Lenin led a new government, but the Soviet Union was not yet formed. Anatoly Luna, head of Four's Education, organized a competition with Lenin to create an official seal for the new Soviet Republic. The competition was open to artists and designers, and anyone who wanted to submit their entry could participate. This marked the beginning of the formation of the Soviet Union.[3]

Competition for Symbol Design :

Yevgeny Kamzolkin, a Moscow artist, won a competition to design a symbol for the Russian communist movement in 1917. The hammer and sickle symbol, a symbol of unity and solidarity between industrial and agricultural workers, was adopted by the Soviet State in 1922. Kamzolkin, a deeply religious man from a wealthy family, was a member of the mystical artistic Society of Leonardo da Vinci for over 10 years and understood the meaning of symbols.[4]

Pic 1: The hammer & sickle symbol

Hammer : The hammer represents the industrial workers in the factories

Sickle: The sickle represents the farmers and the rural classes. These two are traditionally considered the bedrock of the working class by communist parties.

Kamzolkin played a significant role in establishing communism's symbol, which remains its global identity today. On 10 July 1918, the Soviet Republic adopted its constitution, declaring the flag with a red background, a crossed golden hammer and sickle, wheat ears, and the slogan "the world's workers unite." In August 1918, this became Soviet Russia's official national emblem. This design echoed Karl Marx's Communist Manifesto's last sentence, "the world's workers unite." Just one year after the October Revolution, the Bolsheviks formed the Communist International, known as Comintern, with the goal of establishing communist institutions worldwide.

Pic 2: Red star on the Flag

In 1923, the Soviet Union adopted a new national flag including the hammer and sickle along with a red star. The five-pointed red star is a symbol of communism as well as broader socialism in general. It is sometimes understood to represent the five fingers of the worker's hand, which run the five continents; or it is understood to symbolize the five entities "classes" of socialist society: workers, farmers, intellectuals, soldiers, and youth. The red star's impact was so significant that it continues to be used by many communist and socialist movements around the world today.[5]

Why the hammer and sickle was made the symbol of the flag?

Actually, in the beginning of the 20th century, three-fourths of the people in Soviet Russia were farmers and laborers, that is, those who wielded sickles and hammers. In the beginning of

communist rule, work was given a lot of importance. That is why when it came to choosing a symbol, the tools of work of farmers and laborers were chosen as the symbol of communism.

In February 1945, a high-profile meeting in Yale, Soviet Russia, was held with Britain's Prime Minister Winston Churchill, America's President Roosevelt, and Soviet Supreme Commander Stalin. The Allies' heads were present, and the agenda was to decide on Germany's post-war future. Churchill and Roosevelt favored western-style democracy, while Stalin wanted to hoist the flag of communism in Germany. During the debate, Stalin called for a flag, showing it to Roosevelt and Churchill. The flag had the symbols of communism, the hammer and sickle, representing farmers and laborers respectively. Stalin emphasized the importance of these symbols in the context of the war.[6]

Adoption and Variations :

The hammer and sickle symbol has become a global emblem of worker solidarity, anti-capitalist resistance, and classless society. Many Communist parties worldwide have adopted similar logos, such as the Communist Party of Turkey's half-cogwheel crossed by a hammer, the Communist Party of Britain's hammer and dove symbol, designed by Michal Boncza in 1988, and the liberal socialist parties of the Radical Civic Union in Argentina and the Czech National Social Party in the Czech Republic. These symbols emphasize the party's connection to the peace movement and the fight for a classless society.[7]

Fall of the Soviet Union :

The symbol of the hammer and sickle, which was the pride of the Soviet flag until the dissolution of the Soviet Union in 1991, remains the symbol of many communist parties and political parties worldwide. The collapse of the Soviet Union led to the formation of 15 post-Soviet states, including Armenia, Azerbaijan, Belarus, Estonia, Georgia, Kazakhstan, Kyrgyzstan, Latvia, Lithuania, Moldova, Russia, Tajikistan, Turkmenistan, Ukraine, and Uzbekistan. Many states distanced themselves from communist symbols, leading to the removal of the symbol from state emblems, flags, and public spaces.[8]

Controversy and Modern Relevance :

In several countries, there are laws that define the hammer and sickle as the symbol of a "totalitarian and criminal ideology," and the public display of the hammer and sickle and other Communist symbols, such as the red star, is considered a criminal offense. Georgia, Hungary, Latvia, Lithuania, Moldova, and Ukraine have banned communist symbols.

In 2010, that is, many years after the dissolution of the USSR, many states of Eastern Europe, which were once a part of the USSR, demanded from the European Union to ban the hammer and sickle symbol. All of them said that the hammer and sickle is a symbol of dictatorship. However, no

ban was imposed and the decision was left to the member countries to ban it if they wanted. Whether the symbol is adopted or not, one should feel proud, otherwise it does not matter. After the Russian invasion in 2022, Ukraine tried to erase every mark related to the Soviet Union from its country. In Ukraine, the country is represented by the statue of Mother Ukraine. Earlier, there used to be a sickle and a hammer on the shield held in the hand of this statue. But after the start of the war, this symbol was replaced with the symbol of the trident.

The hammer and sickles are currently used on the flags of almost all communist parties worldwide. In Russia, the Communist Party of the Russian Federation (CPRF) and its rival, the Communist Party of the Russian Federation (CRCP), has the same symbol with slight variations. The same symbol is used in Pakistan, Kyrgyzstan, China, and India. The symbol is yellow and is used by the Communist Party of China, the world's largest communist party. In India, the hammer and sickles are also present on the symbols of many leftist parties.[9]

Conclusion :

There was a time when the flag of the USSR was hoisted on 20% of the habitable land on earth. However, today the hammer and sickle are not seen on the flag of any of the five countries claiming communism, China, North Korea, Laos, Cuba and Vietnam. The hammer and sickles are still used by numerous Communist parties worldwide, including the Communist Party of the Russian Federation (CPRF), the Communist People's Party of Kazakhstan, and the Communist Party of China.10 These symbols are also present in the emblems of many left-wing parties in India, such as the Communist Party of India (CPI) and the Socialist Unity Centre of India. The hammer and sickle symbolise clarity and impeccability of socialist ideology and are still present in flags and emblems of these parties. In a communist regime, everyone is treated equally, regardless of education or financial status, promoting equality and preventing crime and violence. Economic boundaries are not used to categorize individuals, ensuring job security for all citizens. Despite the controversy, its enduring presence demonstrates the profound impact of class-based political ideologies on modern history, as well as the ongoing relevance of debates about labour, equality, and social organization.

References :

1. Woody, T. (1935). Towards a Classless Society under the Hammer and Sickle. The Annals of the American Academy of Political and Social Science, 182(1), 140-152.
2. https://www.youngpioneertours.com/what-does-the-hammer-and-sickle-mean
3. Radkey, O. (1963). V. The Fight for the Peasantry. In The Sickle under the Hammer : The Russian Socialist Revolutionaries in the Early Months of Soviet Rule (pp. 203-279).

4. Maier, H. (2006). Political Religions and their Images : Soviet communism, Italian Fascism and German National Socialism. Totalitarian Movements and Political Religions, 7(3), 267–281.
5. Platoff, Anne M. (2021). Symbols in Service to the State : The Role of Flags and Other Symbols in the Civil Religion of the Soviet Union. University of Leicester.
6. Svilicic, N. & Maldini, P. (2013). Visual Persuasion and Politics : Ideology and Symbols of the Totalitarian Regimes' – Case Study : Hammer and Sickle. Collegium antropologicum, 37 (2), 569-582.
7. https://educationprovince.com/russian-revolution-lenin-and-stalin/
8. https://www.ebsco.com/research-starters/history/russian-revolution-1917
9. https://daily.jstor.org/the-birth-of-the-soviet-union-and-the-death-of-the-russian-revolution
10. https://www.historyextra.com/period/20th-century/hammer-sickle-communism-soviet-symbol-why/

Mobile No – 9199670752
Email id – vikramr30.dungdung@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 52–58

Role of ICT & AI in Enhancing Public Service Delivery Systems

Amarjeet Kumar
Junior Research Fellow, Department of Public Administration
Veer Kunwar Singh University, Ara, Bihar -802301

Abstract :

Information and Communication Technology (ICT) means all the tools and technologies we use to communicate and share information easily. This includes things like computers, mobile phones, the internet, and software that help us connect with others, store data, and access information quickly.Artificial Intelligence (AI) is the technology that enables computers and machines to perform tasks that usually require human intelligence such as learning, reasoning, problem-solving and decision-making. AI systems can recognize speech, understand language, analyze data and even make recommendations or act independently.The public service delivery system is that way in which government gives important services to people like hospitals, schools, clean water, roads and electricity.

It is how the government makes sure everyone gets the help and facilities they need for daily life. A good public service delivery system is simple, quick and fair so that all citizens can easily get the services they need from the government.Role of ICT and AI together make public service delivery faster, easier and more citizen-friendly. With these technologies government services become more efficient, transparent and personalized. So people get better support and quicker solutions to their problems.The objective of this research is to explore how ICT and AI can improve the efficiency, accessibility and quality of public service delivery systems.Research Methodology applied in this research article includes qualitative analysis based on secondary resources.The Findings of this paper will help improve the speed and accessibility of public service delivery.

Keyword : ICT,AI, Public service delivery,Data-Driven Decisions, Citizen-Centric Services

Objectives of the Paper :

- To examine how ICT tools streamline access to public services for citizens.
- To explore the role of AI in automating and enhancing government service delivery.

- To identify how data-driven decisions powered by AI improve service efficiency.
- To analyze the impact of digital platforms on transparency and accountability in public services.
- To assess how AI and ICT together create more citizen-centric service experiences.

Research Methodology :

This Research Article follows qualitative methodology based on secondary resources. It involves an in-depth review and analysis of existing literature including scholarly articles, government reports, case studies and publications related to ICT, AI and public service delivery. The study focuses on understanding the integration of digital technologies in governance and their impact on service efficiency and citizen satisfaction. Comparative analysis of various successful digital governance models is also included to draw insights and best practices. This approach helps in exploring theoretical frameworks and practical applications of ICT and AI in public service systems.

Review of Related Literature :

Richard Heeks (1999), "Reinventing Government in the Information Age," highlight the transformational power of ICT in governance. He emphasized that digital platforms could reduce inefficiencies, improve information flow and bring about greater transparency in public administration. His work laid the foundation for how governments could leverage technology to redesign their service models.

Subhash Bhatnagar (2004), "E-Government : From Vision to Implementation", expanded real-world applications of ICT in countries like India. His study of the Bhoomi land records project in Karnataka demonstrated how digitizing services reduced corruption, improved delivery speed and empowered rural citizens by providing easier access to government services.

Miriam Lips (2008) ,"Digital Government : Managing Public Sector Reform in the Digital Era", emphasized that digital transformation should focus on the needs of the people it serves. She argued that citizen-centric design which supported by ICT can bridge the gap between citizens and governments that making services more user-friendly, secure and trusted.

World Bank (2012),"Delivering Public Services Effectively : Rule of Law, Democracy, and Human Rights",emphasizes that effective public service delivery goes beyond infrastructure and efficiency. it must also be rooted in democratic principles, legal accountability and human rights. It highlights that for services like health, education, water and sanitation to be truly effective, they must be accessible, equitable and transparent.

Janssen and Kuk (2016), "The Challenges and Limits of Big Data Algorithms in Technocratic Governance", introduced the idea of combining ICT infrastructure with AI capabilities to form intelligent governance systems. They discussed how data analytics and machine learning algorithms

could support decision-making in real time, predict public needs and allocate resources more effectively.

Melanie Mitchell (2019), "Artificial Intelligence : A Guide for Thinking Humans", highlighted how AI applications like chatbots, speech recognition and data analysis are changing the way governments interact with citizens. She highlighted the potential of AI to reduce administrative workloads and personalize services but also warned of ethical concerns like bias and accountability.

The Organisation for Economic Co-operation and Development (OECD) released a report in 2021 titled "The State of Implementation of the OECD AI Principles," which reviewed how AI is being adopted by public institutions globally. The report highlighted the AI is being used in areas such as healthcare diagnostics, fraud prevention, smart infrastructure and citizen engagement. It also stressed the need for clear regulations, ethical AI frameworks and inclusive digital strategies to ensure fair access to these services.

Introduction :

Information and Communication Technology(ICT) is the use of digital tools to store, process, share and communicate information. It includes things like computers, internet, mobile phones, email, websites, video calls and cloud services. These technologies help people connect with each other and access information quickly and easily. In daily life we use ICT to send messages, search for information, attend online classes, do digital payments. In the government sector ICT helps to provide services online so that people don't have to stand in long lines or visit government offices again and again.For example, citizens can apply for documents like birth certificates or driver's licenses through government websites. They can also pay taxes, check utility bills and register complaints online. This saves time, money and effort. ICT also helps governments manage their internal work more smoothly through digital files and communication systems. It increases transparency because people can track the progress of their requests and get updates online.

Artificial Intelligence(AI) is a type of technology that helps machines think and work like humans. It allows computers and systems to learn from data, make decisions, solve problems and even understand human language. Unlike regular computer programs that follow fixed instructions, AI can improve and adapt over time based on the data it receives.We see AI in our daily life in many ways. For example, virtual assistants like Siri or Alexa, auto-suggestions in search engines or recommendation systems on YouTube and Netflix are all examples of AI. In government services, AI can be used to answer common questions through chatbots, check documents automatically or even predict future problems like traffic congestion or health outbreaks.AI is very useful in analyzing large amounts of data. It can find hidden patterns or risks that humans might miss. For example, in

healthcare, AI can help doctors detect diseases early by studying medical reports. In the education sector, AI can suggest personalized learning content based on student performance.In public service delivery, AI can make processes faster, reduce errors, and offer 24/7 support to citizens.

Public Service Delivery Systems is that ways in which government services are provided to the public. These services include health care, education, electricity, water supply, public transport, social welfare schemes and administrative services like issuing ID cards, licenses, certificates. A good public service delivery system ensures that all citizens(rich/ poor, rural /urban) get equal access to these essential services.Traditionally many of these services were delivered manually through physical offices. People had to visit government departments, fill out paperwork, wait in long queues and often face delays and confusion. This system was time consuming, less transparent and sometimes unfair. As a result, many people especially those in remote areas could not access services properly.

Modern public service delivery systems aim to solve these problems. They focus on making services faster, easier and more people-friendly. A good delivery system should be transparent (so people know what's happening), accountable (so officials are responsible for delays) and accessible (so everyone can use it).Today, technology plays a big role in improving these systems. Online portals, mobile apps, helplines and tracking systems have made it easier for people to apply for services, get information and receive support. Feedback systems also allow citizens to report problems and share suggestions.The role of ICT and AI in enhancing public service delivery systems has transformed how governments provide services to citizens. ICT helps by offering online platforms where people can apply for services, make payments or get updates. AI adds intelligence by making these services faster, more accurate and more responsive. Together, they improve public service delivery in many ways.For example, with ICT citizens can fill out forms online, track their applications or get certificates digitally without going to a government office. AI systems can assist by checking documents automatically, answering questions through chatbots or predicting service demand based on data trends.

This saves time for both the government and the public.AI also helps in identifying problems early. In health, it can detect disease outbreaks. It can suggest better routes. AI can help in managing resources better and avoiding fraud in schemes like pensions or subsidies. ICT tools like SMS alerts and mobile apps keep citizens informed and involved.Together, ICT and AI also make government services more inclusive. People in remote areas can access services online. Disabled or elderly citizens can get help through voice-based AI systems. It also brings transparency, as people can see the status of their requests and give feedback.

Desk Research :

According to **"India AI Report : Looking Ahead – 2023"** highlights India's progress in

deploying AI in public services.The MyGov Helpdesk chatbot on WhatsApp supported over 5 crore users.It provided COVID-19 updates, vaccine info and document access via AI. The PM-Kisan AI chatbot helped farmers check payment and eligibility details.UMANG app introduced voice-based AI support in Hindi and English.AI was used for fraud detection, scheme monitoring and analytics.The report proves that AI can enhance speed,accuracy and outreach.It reflects India's shift toward AI-integrated governance.According to **"Digital India Progress Report (2023)"** tracks India's digital transformation through key platforms and services.Over 100 crore citizens are now registered with Aadhaar.Monthly e-KYC transactions have crossed 11 crore, reducing manual work.The UMANG app hosts 1,000+ services across various departments.Digital payments exceeded 1,300 crore transactions in one year.

The report shows increased accessibility, transparency and user convenience.Digital services have reduced in-person visits and paperwork for citizens.It confirms that ICT is central to modern service delivery.

CPGRAMS is India's main platform for handling citizen grievances online.According to **"CPGRAMS Annual Report (2024)"**, more than 1.15 crore complaints were resolved through the portal.Average resolution time dropped to 15 days, improving satisfaction.ICT tools like auto-sorting, dashboards and email alerts enhanced speed.AI integration helped prioritize complaints based on urgency and category.Citizens can track their complaints through SMS and web portals.The system now supports multiple languages, expanding rural reach.The report showcases a transparent and accountable grievance mechanism.CSCs are access points for delivering digital services in rural areas.According to "**Common Service Centres (CSC) Annual Report (2024)",** Over 5.3 lakh CSCs were operational across India in 2024.They offer services like Aadhaar, PAN, voter ID and banking.55% of CSCs are run by women, boosting digital inclusion.They provide access to government schemes, digital literacy and health services.

CSC centers are vital for bridging the rural-urban service divide.They operate in low-connectivity areas to support the underserved.The report confirms CSCs as pillars of inclusive ICT delivery**.**

Findings :

This research finds that the integration of ICT and AI has significantly improved the efficiency, accessibility and transparency of public service delivery systems. ICT tools like online portals, mobile apps and digital identity systems (like Aadhaar) have simplified access to government services. Meanwhile, AI technologies such as chatbots, predictive analytics and automated workflows have enhanced speed and responsiveness. The use of these technologies has reduced manual errors, improved citizen satisfaction and enabled data-driven decision-making. Overall, ICT and AI together are

transforming traditional public service systems into smart, inclusive and citizen-centric governance models, especially in rural and underserved areas.

Suggestion :

1. Promote AI training for government staff to ensure responsible and efficient use.
2. Expand digital infrastructure in rural areas for inclusive public service access.
3. Integrate multilingual AI tools to overcome language barriers in service delivery.
4. Ensure data privacy and ethical AI use in all government platforms.
5. Encourage public feedback systems to improve and update digital services regularly.

Conclusion :

The integration of Information and Communication Technology (ICT) and Artificial Intelligence (AI) into public service delivery systems marks a transformative shift in governance. This research has revealed that both technologies play a complementary role in making government services more accessible, transparent and efficient. ICT enables digital connectivity between citizens and authorities through platforms such as UMANG, DigiLocker and Common Service Centres (CSCs)while AI contributes through automation, personalized service delivery and real-time data analysis.Government reports such as the Digital India Progress Report and CPGRAMS Annual Report show measurable improvements. For example, grievance redressal timelines have dropped significantly, UPI transactions have surged, and millions of citizens now access essential services online. AI-driven systems like chatbots and automated sorting have reduced human workload and enhanced service response times.

Importantly, initiatives like the AI Competency Framework and the Bhashini language project show that India is not only adopting technology but also focusing on inclusive, ethical and multilingual access.However, challenges remain. Digital literacy gaps, rural internet connectivity issues and data privacy concerns must be addressed to fully realize the benefits of these technologies. Moreover, ethical AI implementation is critical to avoid bias and ensure fairness in decision-making. it is evident that ICT and AI are not just tools but enablers of good governance. They are shifting the public administration model from a manual, paperwork-heavy system to one that is smart, data-driven and citizen-centric. Therefore, the strategic integration of these technologies should be a continuous and evolving focus for policymakers and administrators.

Reference :

1. Ministry of Electronics and Information Technology. (2023). Digital India Progress Report. Government of India. https://www.digitalindia.gov.in
2. Ministry of Electronics and IT & UNESCO. (2025). AI Competency Framework for Civil

Servants. Government of India. https://www.unesco.org/en/articles/india-launches-ai-competency-framework-transform-public-service

3. IndiaAI. (2023). India and AI: Looking Ahead. Ministry of Electronics and IT. https://indiaai.gov.in/article/2023-india-and-ai-looking-ahead
4. Ministry of Electronics and Information Technology. (2024). Common Services Centres (CSC) Annual Report. Government of India. https://csc.gov.in
5. National Language Translation Mission. (2022). Bhashini Language AI Platform Report. Government of India.https://bhashini.gov.in
6. International Monetary Fund. (2023). Digital Public Infrastructure: PM-Kisan Case Study. https://www.elibrary.imf.org/view/journals/022/0060/004/article-A004-en.xml
7. Economic Times Government. (2024). India's Digital Public Infrastructure: Present Status and Future Prospects. https://government.economictimes.indiatimes.com
8. Prabhu, C. S. R. (2004). e-Governance: Concepts and case studies (2nd ed.). Prentice-Hall of India.
9. Mitchell, M. (2019). Artificial intelligence: A guide for thinking humans. Farrar, Straus and Giroux.
10. Weerakkody, V. (Ed.). (2012). Transforming government and public services using ICT: Case studies. Routledge.
11. Muttoo, S. K., & Kundu, A. (2020). Digital India: Understanding information and communication technology. PHI Learning Pvt. Ltd.

Mobile:7482839814
Email: akakjrf@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 59-64

महिला और बौद्ध संघ की स्थापना : बौद्ध धर्म में लिंग समानता का चिंतन

प्रीति भारती
लक्ष्मीबाई कॉलेज, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त वि वविद्यालय, नई दिल्ली।

सारांश :-

छठी भाताब्दी ईसा पूर्व के सामाजिक परिदृ य में महिलाओं की स्थिति सीमित और वंचित थी। बौद्ध चिंतन ने इस यथास्थिति को चुनौती दी और महिलाओं के लिए आध्यात्मिक मुक्ति के द्वार खोले। तथागत बुद्ध ने महाप्रजापति गौतमी और अन्य महिलाओं के आग्रह पर भिक्षुणी संघ की स्थापना की, जो धर्म और इतिहास में लिंग समानता की दि ाा में एक युगांतरकारी घटना रही।

हालाँकि, बुद्ध ने प्रारंभ में भिक्षुणी संघ की स्थापना को लेकर संकोच व्यक्त किया था, किंतु उनके इस निर्णय में उस समय की सामाजिक संरचना, धार्मिक व्यवस्था और संघ की स्थिरता के गहरे संदर्भ छिपे थे। अंततः महाप्रजापति गौतमी के नेतृत्व में महिलाओं के लिए पृथक भिक्षुणी संघ की स्थापना हुई, जिसे आठ वि ोश नियम पालन जिसे 'अट्ठगुरू धम्मा' कहा जाता था, के साथ स्वीकृति मिली थी। भिक्षुणी संघ की स्थापना केवल धार्मिक स्वतंत्रता का प्रतीक नहीं रही, बल्कि उसने महिला आत्मनिर्भरता, नैतिक जिम्मेदारी और आध्यात्मिक समानता के विचार को स्थापित किया। थेरीगाथा जैसे प्राचीन साहित्यिक स्रोत इस बात का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं कि बौद्ध संघ में महिलाओं ने न केवल मुक्ति प्राप्त की, बल्कि बौद्ध धर्म के प्रसार और विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

यह भोध पत्र ऐतिहासिक तथ्यों, बौद्धग्रंथों और समकालीन वि लेशणों के आधार पर यह स्पश्ट करेगा कि बौद्ध चिंतन ने किस प्रकार महिलाओं के लिए समान अधिकार और आध्यात्मिक गरिमा के आद ार्ा को प्रस्तुत किया, जो आज भी वैि वक स्तर पर लिंग समानता के विम ार्ा में प्रेरणा स्रोत बना हुआ है।

शब्द कुंजियाँ : बौद्ध चिंतन, महिला विम ार्ा, भिक्षुणी संघ, महाप्रजापति गौतमी, अट्ठगुरू धम्मा, बौद्ध संघ, लिंग समानता, आध्यात्मिक मुक्ति, नैतिक स्वतंत्रता, संघ की स्थापना, बौद्ध साहित्य, सामाजिक परिवर्तन, बौद्ध धर्म और नारी चेतना।

भूमिका :-

छठी भाताब्दी ईसापूर्व का भारतीय सामाजिक परिदृ य गहरे सामाजिक भेदभाव और लिंग विशमता से चिन्हित था। उस समय स्त्रियों को धार्मिक अनुश्ठानों, दा ार्निक विम ार्शों और आध्यात्मिक साधना में पूर्ण सहभागिता

का अवसर विरले ही उपलब्ध था। ऐसे में गौतम बुद्ध का चिंतन एक मौलिक और क्रांतिकारी दृश्टिकोण के रूप में उभरा, जिसने स्त्रियों के आध्यात्मिक अधिकारों को मान्यता दी।

बुद्ध का द र्न करूणा, अहिंसा और समानता पर आधारित था। उन्होनें प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार किया कि स्त्रियाँ भी पुरूशों की भांति अर्हत्त्व प्राप्त कर सकती हैं और निर्वाण की अधिकारी हैं। महाप्रजापति गौतमी, जो स्वयं बुद्ध की धायमाता थीं, ने जब स्त्रियों के लिए भिक्षुणी संघ की स्थापना हेतु अनुरोध किया, तो बुद्ध ने गहन विचार के प चात आठ वि ोश अनु ाासन (अट्ठगुरू धम्मा) के पालन की भार्त पर भिक्षुणी संघ की स्थापना को स्वीकृति दी।

बौद्ध संघ में महिलाओं का प्रवे ा केवल एक धार्मिक घटना नहीं थी, बल्कि यह सामाजिक क्रांति का संकेत था। थेरीगाथा जैसे प्राचीन ग्रंथों से यह सिद्ध होता है कि बौद्ध स्त्रियाँ ज्ञान, साधना और नैतिकता में पुरूश भिक्षुओं के समकक्ष थीं। बौद्ध संघ में महिलाओं को धार्मिक ि ाक्षा, व्रत, ध्यान और उपदे ा के माध्यम से आत्मनिर्भरता और आध्यात्मिक गरिमा का अधिकार प्रदान किया गया।

यह भाोध पत्र बौद्ध चिंतन में नारी स्थान के ऐतिहासिक विकास, भिक्षुणी संघ की स्थापना की प्रक्रिया, गुरूधर्मों की प्रकृति तथा समकालीन समाज में बौद्ध लिंग दृश्टि की प्रासंगिकता का गहन वि लेशण करेगा। इस वि लेशण के माध्यम से यह स्पश्ट होगा कि बुद्ध का दृश्टिकोण लिंग समानता के क्षेत्र में एक स्थायी प्रेरणा स्रोत रहा है, जो आज भी वैि वक संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है।

प्रारंभिक बौद्ध चिंतन में नारी का स्थान :-

प्रारंभिक बौद्ध चिंतन में नारी का स्थान वि ि ाश्ट और क्रांतिकारी था। बुद्ध के समकालीन समाज में जहां स्त्रियों को धर्म और मोक्ष के पथ से वंचित माना जाता था, वहीं बुद्ध ने स्पश्ट रूप से स्वीकार कि कि स्त्रियाँ भी पुरूशों के समान ही अर्हत्त्व प्राप्त कर सकती हैं और निर्वाण तक पहुंच सकती हैं। यह विचार उस समय के वैदिक और ब्राह्मणवादी परंपराओं के विपरीत था, जहां प्रायः स्त्रियों की आध्यात्मिक क्षमता को सीमित समझा जाता था।

बुद्ध ने अपने उपदे ाों में बार–बार यह प्रतिपादित किया कि जन्म, जाति या लिंग के आधार पर किसी की आध्यात्मिक क्षमता का निर्धारण नहीं होता। 'समणसुत्त' तथा 'महापरिनिब्बानसुत्त' जैसे ग्रंथो में यह दृश्टिकोण स्पश्ट रूप से परिलक्षित होता है। बुद्ध के अनुसार, सत्य का बोध और निर्वाण की प्राप्ति साधना, ज्ञान और संयम के माध्यम से होती है, न कि किसी सामाजिक पहचान के आधार पर।

महिला साध्वियों के जीवन का प्रत्यक्ष चित्रण 'थेरीगाथा' में मिलता है, जो प्रांरभिक बौद्ध भिक्षुणियों के द्वारा रचित गीतों और पदों का संग्रह है। इसमें अनेक भिक्षुणियों के आत्मानुभव, साधना के संघर्श और मोक्ष की उपलब्धि का सुंदर और मार्मिक चित्रण मिलता है। थेरीगाथा यह प्रमाणित करती है कि बौद्ध संघ में महिलाओं को न केवल साधना का अवसर मिला, बल्कि बौद्ध सिद्धांतों की गहरी व्याख्याकार और अध्यापक भी बनीं।

महाप्रजापति गौतमी, वि ाखा, केमाका, पठाचारा, धम्मदिन्ना जैसी अनेक भिक्षुणियां प्रारंभिक बौद्ध संघ में प्रतिश्ठित साध्वियाँ रहीं, जिन्होनें अपने तप, ि ाक्षा, और उपदे ा के द्वारा बौद्ध धर्म के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह भी महत्वपूर्ण है कि प्रारंभिक संघ में भिक्षुणियों को अलग प्रि ाक्षण संस्थान और व्यवस्थाएं दी गईं, जो उनके आध्यात्मिक उन्नयन को सुनि चत करती थीं।

इस प्रकार, प्रारंभिक बौद्ध चिंतन ने नारी को केवल एक गृहिणी या सहायक की भूमिका तक सीमित नहीं किया, बल्कि उसे स्वतंत्र साधक, ि ाक्षक और आध्यात्मिक नेता के रूप में स्वीकार किया। यह उस समय के सामाजिक ढांचे के विरूद्ध एक क्रांतिकारी अवधारणा थी, जिसने भविश्य के स्त्री विम र्ा की नींव रखी।

बौद्ध संघ की स्थापना में महिलाओं की भूमिका :-

बौद्ध संघ की स्थापना में महिलाओं की भूमिका एक ऐतिहासिक परिवर्तन का द्योतक है। प्रारंभ में बुद्ध ने केवल पुरूश भिक्षुओं के लिए संघ की स्थापना की थी, किंतु महाप्रजापति गौतमी के नेतृत्व में महिलाओं ने भी संघ में प्रवे ा का अनुरोध किया। महाप्रजापति गौतमी, जो बुद्ध की धाय माता थीं, ने पांच सौ अन्य महिलाओं के साथ मिलकर संघ में प्रवे ा हेतु आग्रह किया। यह घटना दीघनिकाय और विनय पिटक के महावग्ग में वर्णित है।

प्रारंभिक संकोच के बाद बुद्ध ने महाप्रजापति के आग्रह को स्वीकार करते हुए भिक्षुणी संघ की स्थापना की। तथापि, उन्होनें भिक्षुणियों के लिए 'अट्ठगुरू धम्मा' (आठ प्रमुख अनु ाासन) निर्धारित किए। ये नियम भिक्षुणी संघ की संरचना और उनके व्यवहार के मार्गद र्ान के लिए बनाए गए थे, जो पुरूश भिक्षुओं के प्रति सम्मान का भाव प्रकट करते थे। उदाहरणस्वरूप, भले ही कोई भिक्षुणी वरिश्ठ हो, उसे कनिश्ठ भिक्षु को भी सम्मान देना अनिवार्य था।

भिक्षुणी संघ की स्थापना बौद्ध धर्म के भीतर लिंग समानता की दि ाा में एक बड़ा कदम था, यद्यपि सामाजिक संरचना और समय की परिस्थितियों के कारण कुछ सीमाएं भी आरोपित रहीं। महिलाओं को संघ में दीक्षा पाने, धर्म दे ाना करने, ध्यान साधना करने और निर्वाण प्राप्ति के समान अवसर प्रदान किए गए। महाप्रजापति गौतमी स्वयं प्रथम भिक्षुणी बनीं और आगे चलकर अनेक महिलाएं संघ का हिस्सा बनकर बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार में सक्रिय हुईं। बौद्ध संघ में महिलाओं के प्रवे ा से नारी ि ाक्षा और साधना का एक नया युग प्रारंभ हुआ। थेरीगाथा में अनेक भिक्षुणियों के संघर्श और साधना के गीत मिलते हैं, जो प्रमाणित करते हैं कि महिलाओं ने बौद्ध संघ में न केवल आध्यात्मिक ऊँचाइयाँ प्राप्त कीं, बल्कि ि ाक्षण और नेतृत्व में भी महत्वपूर्ण स्थान अर्जित किया।

इस प्रकार, भिक्षुणी संघ की स्थापना ने बौद्ध धर्म को एक ऐसे मार्ग द र्ान में परिवर्तित किया, जो केवल पुरूशों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि संपूर्ण मानवता के लिए समान आध्यात्मिक अवसरों का उद्घाटन करता रहा। यह निर्णय बुद्ध की व्यापक करूणा और समानता के सिद्धांत का सजीव उदाहरण है।

संघ में महिलाओं के अधिकार और सीमाएँ :-

बौद्ध संघ में महिलाओं के प्रवे ा ने उन्हें आध्यात्मिक साधना का स्वतंत्र मंच प्रदान किया, किंतु यह भी स्पश्ट है कि उनके अधिकार पुरूश भिक्षुओं के अधिकारों के समकक्ष होते हुए भी कुछ वि ाि श्ट सीमाओं से नियंत्रित थे। यह द्वंद्व उस युग की सामाजिक और सांस्कृतिक वास्तविकताओं को ध्यान में रखते हुए समझा जा सकता है।

महिलाओं को संघ में दीक्षा का अधिकार प्राप्त हुआ। वे ध्यान साधना, धर्मोपदे ा, भाास्त्राध्ययन, तपस्या तथा निर्वाण की प्राप्ति हेतु पुरूशों के समान अवसर प्राप्त करने लगीं। थेरी गाथा और विनय पिटक जैसे स्रोतों में उल्लेख मिलता है कि कई भिक्षुणियां गहन साधना कर अर्हत्त्व (निर्वाण) को प्राप्त कर सकीं, जो पूर्ण आध्यात्मिक

उपलब्धि मानी जाती थी।

हालाँकि, भिक्षुणी संघ की स्थापना के समय बुद्ध द्वारा निर्धारित 'अट्ठगुरूधम्मा' भिक्षुणियों पर वि ोश अनु ाासन अरोपित करते थे। उदाहरण के लिए, एक वरिश्ठ भिखुणी को कनिश्ठ भिक्षु के प्रति सम्मान प्रकट करना अनविार्य था। भिक्षुणियों को दीक्षा, प्रवज्या और संघ की अनुमोदन हेतु भिक्षु संघ की स्वीकृति आव यक थी। उन्हें अपने संघीय निर्णयों में पुरूश संघ के मार्गद ान का अनुसरण करना पड़ता था।

विनय साहित्य के अनुसार, भिक्षुणियों के लिए अतिरिक्त नियम बनाए गए थे, जैसे आवास व्यवस्था, यात्रा में सुरक्षा प्रावधान और धर्मोपदे ा के समय भिक्षुओं की अनुमति आव यक होना। इन सीमाओं का उद्दे य भिक्षुणी समुदाय को सामाजिक असुरक्षा और संभावित विघ्नों से संरक्षित करना था, क्योंकि तत्कालीन समाज स्त्रियों की स्वतंत्र गति ीलता को सहज नहीं स्वीकार करता था।

इन सीमाओं के बावजूद, बौद्ध संघ ने महिलाओं को जो बौद्धिक, आध्यात्मिक और नैतिक स्वतंत्रता प्रदान की, वह उस समय के किसी अन्य धार्मिक परंपरा में दुर्लभ थी। बौद्ध संघ ने नारी साध्वियों को विदुशिता, नैतिक नेतृत्व और धार्मिक साधना के उच्च स्तर पर प्रतिश्ठित होने का अवसर प्रदान किया। थेरीगाथा की पद्यात्मक आत्मकथाएं इस बात की साक्षी हैं कि स्त्रियों ने न केवल संघ का हिस्सा बनकर ज्ञान साधना की, बल्कि समाज में अपनी स्वतंत्र आध्यात्मिक पहचान भी स्थापित की।

इस प्रकार, प्रारंभिक सीमाओं के बावजूद, बौद्ध संघ ने महिलाओं के आध्यात्मिक अधिकारों को वैधानिक और नैतिक रूप से मान्यता प्रदान कर एक दीर्घकालीन सामाजिक परिवर्तन की दि ाा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बौद्धधर्म और लिंग समानता का दार्शनिक विश्लेषण :-

बौद्ध चिंतन का मूल स्वरूप करूणा, अहिंसा, समता और अनात्म सिद्धांत पर आधारित है। इन सिद्धांतों ने लिंग आधारित भेदभाव को नकारते हुए मानव मात्र की आध्यात्मिक समानता को स्वीकार किया। बुद्ध ने स्पश्ट रूप से प्रतिपादित किया कि निर्वाण प्राप्ति में जन्म, जाति या लिंग कोई अवरोध नहीं है। 'समणसुत्त' और 'चूलवेदल्लसुत्त' जैसे ग्रंथों में यह सिद्धांत प्रत्यक्ष रूप प्रतिपादित हुआ है कि ज्ञान और साधना की उपलब्धि में पुरूश और महिलाओं में कोई भेद नहीं है।

बौद्ध धर्म का 'अनात्म' (स्वत्व ून्यता) का सिद्धांत वि ोश रूप से लिंग विम र्ा में महत्वपूर्ण है। यदि आत्मा, भारीर या लिंग को अंतिम सत्य नहीं माना जाता, तो किसी व्यक्ति का मूल्यांकन उसके लिंग के आधार पर नहीं, बल्कि उसके कर्म और साधना पर किया जाना चाहिए। यह चिंतन तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में एक मौलिक क्रांति का सूत्रपात था।

थेरीगाथा के पद्य साक्ष्य बताते हैं कि भिक्षुणियों ने अपनी साधना ओर बौद्ध ज्ञान के माध्यम से न केवल आत्ममुक्ति प्राप्त की, बल्कि उन्होनें बौद्ध संघ में सक्रिय दा ार्निक संवादो में भी भाग लिया। उदाहरण के लिए, धम्मदिन्ना भिक्षुणी के बुद्ध के प्रिय ि ाश्य वि ाख के साथ गहन धर्म संवादों का उल्लेख 'चूलवेदल्लसुत्त' में मिलता है, जहां धम्मदिन्ना की गहन बौद्धिकता को स्वयं बुद्ध ने प्रमाणित किया है।

इसके अतिरिक्त, बौद्ध संघ में दीक्षा के समान अवसर, भिक्षुणियों को उपदे ाक, आचार्य और साधना गुरू के रूप में मान्यता प्रदान करना भी लिंग समता की दि ाा में बौद्ध धर्म की व्यावहारिक पहल को द ार्ाता है। यद्यपि

गुरूधर्मों ने कुछ संरचनात्मक सीमाएं लगाई थीं, फिर भी द ान के स्तर पर बौद्ध धर्म ने महिला और पुरूश दोनों के आध्यात्मिक मूल्य को समान आधार पर प्रतिश्ठित किया है।

बुद्ध के इस दृश्टिकोण ने न केवल तत्कालीन समाज में स्त्रियों को धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार दिया, बल्कि आगे चलकर वै वक स्त्री विम र्ा को भी गहरा प्रेरणा स्रोत प्रदान किया। आधुनिक लिंग विम र्ा में जब आत्मसम्मान, स्वतंत्रता और समानता की बात की जाती है, तो बौद्ध धर्म का यह गहन दा र्ानिक आधार अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है।

इस प्रकार, बौद्ध चिंतन लिंग समानता के संदर्भ में केवल व्यावहारिक सुधार का नहीं, बल्कि मूल दा र्ानिक स्तर पर गहन पुनर्रचना का कार्य करता है, जो आज भी अपनी सार्वकालिकता में प्रेरणा स्रोत बना हुआ है।

समकालीन संदर्भ में बौद्ध महिला आंदोलन :-

समकालीन समय में बौद्ध महिला आंदोलन ने बौद्ध संघ में लिंग समानता को पुनः जीवंत करने की दि ाा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रारंभिक बौद्ध संघ में महिलाओं के लिए जो अधिकार और अवसर सुनि चत किए गए थे, वे समय के साथ विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक कारणों से सीमित होते चले गए। वि ोशतः थेरवाद परंपरा में भिक्षुणी संघ का पूर्ण रूप से लोप हो जाना इस दि ाा में एक महत्वपूर्ण चुनौती बन गया था। किंतु आज वि व भर में बौद्ध महिलाएं भिक्षुणी परंपरा के पुनरूद्धार और लिंग समानता के लिए संगठित रूप से प्रयासरत हैं।

20वीं और 21वीं सदी में भिक्षुणी पुनः संस्था (रिवाइवल ऑफ भिक्षुणी संघ) का आंदोलन थाईलैंड, श्रीलंका, कोरिया और प चमी दे ाों में गति पकड़ने लगा। 1998 में श्रीलंका में भिक्षुणी संघ की औपचारिक पुनर्स्थापना हुई, जिसमें भारतीय और कोरियाई बौद्ध भिक्षुणियों का भी योगदान रहा। यह पुनर्स्थापना ऐतिहासिक दृश्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण थी, क्योंकि इसने महिलाओं को पुनः बौद्ध संघ में पूर्ण अधिकारों के साथ स्थान दिलाया।

थाईलैंड और म्यांमार में भिक्षुणी संघ की मान्यता के लिए आज भी संघर्श जारी है। कई महिला साध्वियाँ अनौपचारिक रूप से ि ाक्षा, ध्यान, साधना और सामाजिक सेवा कार्यों में सक्रिय हैं, किंतु उन्हें पूर्ण संघीय मान्यता नहीं मिल पाई है। इसके बावजदू महिलाएं ि ाक्षा, ध्यान, दा र्ानिक विम र्ा और पर्यावरण संरक्षण जैसे क्षेत्रो में बौद्ध मूल्यों को आगे बढ़ा रही हैं।

प चमी दे ाो में, वि ोशतः अमेरिका और यूरोप में, बौद्ध महिला भिक्षुणियाँ न केवल सक्रिय हैं, बल्कि बौद्धिक नेतृत्व में भी आगे बढ़ रही हैं। थिचन्हातहान्ह द्वारा स्थापित प्लमविलेज परंपरा और तिब्बती बौद्ध परंपरा में कई महिला ि ाक्षक और ध्यान आचार्य आज वै वक स्तर पर बौद्ध ि ाक्षाओं का प्रसार कर रही हैं। आज का बौद्ध महिला आंदोलन केवल दीक्षा और संघीय अधिकारों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह ि ाक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक न्याय और पर्यावरण चेतना जैसे व्यापक क्षेत्रो में भी सक्रिय है। बौद्ध महिलाएं करूणा, समता और भाांति के सिद्धांतों के आधार पर वै वक मानवता की सेवा में अपने योगदान को निरंतर बढ़ा रही हैं।

इस प्रकार, समकालीन बौद्ध महिला आंदोलन ने बुद्ध के उस मूल आद र्ा को पुनः जीवित किया है, जिसमें स्त्रियों को भी पुरूशों के समान आध्यात्मिक स्वतंत्रता और गरिमा प्रदान करने की वकालत की गई थी। आज यह आंदोलन वै वक स्तर पर लिंग न्याय के विम र्ा में बौद्ध धर्म के योगदान को एक नई पहचान दे रहा

है।

निश्कर्श :-

बौद्ध धर्म का चिंतन लिंग समानता के इतिहास में एक अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करता है। छठी भाताब्दी ईसा पूर्व के सामाजिक परिवे ा में, जहां स्त्रियों की धार्मिक और सामाजिक भूमिका सीमित थी, वहां बुद्ध द्वारा भिक्षुणी संघ की स्थापना करना नारी साध्वी समुदाय को स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान करना एक क्रांतिकारी घटना थी। महाप्रजापति गौतमी और अन्य साध्वियों के संघ में प्रवे ा ने यह सिद्ध कर दिया कि आध्यात्मिक मुक्ति का अधिकार जन्म या लिंग से नहीं, साधना और करूणा से प्राप्त होता है।

यद्यपि अट्ठगुरू धम्मा के माध्यम से भिक्षुणियों पर कुछ वि ोश अनु ाासन लगाए गए, फिर भी बौद्ध संघ ने महिलाओं को धार्मिक ि ाक्षा, ध्यान, उपदे ा और निर्वाण प्राप्ति के समान अवसर प्रदान किए। थेरीगाथा जैसे ग्रंथों से यह प्रमाणित होता है कि महिलाओं ने न केवल साधना में श्रेश्ठता प्राप्त की, बल्कि बौद्ध धर्म के प्रसार और बौद्धिक विकास में भी सक्रिय योगदान दिया। दा ार्निक स्तर पर बौद्ध चिंतन अनात्म और प्रतीत्यसमुत्पाद जैसे सिद्धांतों के माध्यम से लिंग भेद को अस्वीकार करता है। यह विचार कि कोई भी प्राणी स्थायी, स्वतंत्र अस्तित्व का धारक नहीं है, समाज में गहरी समानता और करूणा की नींव रखता है।

समकालीन समय में, बौद्ध महिला आंदोलन भिक्षुणी संघ के पुनरूद्धार, ि ाक्षा, पर्यावरणीय जागरूकता और सामाजिक सेवा के माध्यम से बुद्ध के मूल आद ार्ों को पुनर्जीवित कर रहा है। आज भी, जब वैि वक स्तर पर लिंग समानता और स्त्री अधिकारों की चर्चा हो रही है, बौद्ध धर्म का यह ऐतिहासिक और दा ार्निक योगदान अत्यंत प्रासंगिक बनकर उभरता है। इस प्रकार, बौद्ध चिंतन में नारी का स्थान केवल ऐतिहासिक घटनाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि वह आज के मानवतावादी और समतावादी विम र्ा के लिए भी एक स्थायी प्रेरणा स्रोत बना हुआ है। बुद्ध का संदे ा आज भी हमें यह सिखाता है कि करूणा, समता और आत्ममुक्ति का अधिकार प्रत्येक प्राणी का है– चाहे वह पुरूश हो या स्त्री।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कोसंबी, भिक्षु धर्मानंद, ''महावग्ग पालि (देवनागरी)'', भारती विद्यापीठ, पुणे, पृश्ठ सं. 17
2. भार्मा, क्षितिज मोहन, ''थेरीगाथा'', भारतीय बौद्ध महासभा, लखनऊ, भारत, पृश्ठ सं. 34
3. अंबेडकर, भीमराव, ''बौद्ध धर्म और समाज सुधार'', समता प्रका ान, नागपुर, पृश्ठ सं. 50
4. सिंह, धर्मवीर, ''बौद्ध धर्म और आधुनिक समाज'' प्रभात प्रका ान, नई दिल्ली, पृश्ठ सं. 53
5. भाि ाबाला, ''भिक्षुणी संघ : उद्भव और विकास'', प्रभात प्रका ान, नई दिल्ली, पृश्ठ सं. 85
6. त्रिपाठी, किरण, ''बौद्ध भिक्षुणी साहित्य : इतिहास और विकास'', विद्या प्रका ान मंडल, वाराणसी, पृश्ठ सं. 70
7. चौबे, रमा, ''बुद्धकालीन महिलाएँ'', प्रभात प्रका ान, नई दिल्ली, पृश्ठ संख्या 47
8. श्रीवास्तव, सु ाीला, ''बुद्ध और स्त्री विम र्ा'', राजकमल प्रका ान, नई दिल्ली, पृश्ठ संख्या 68
9. श्रीवास्तव, मंजुला, ''बौद्ध धर्म में लैंगिक समानता'', प्रभात प्रका ान, नई दिल्ली, पृश्ठ संख्या 43
10. सिंह, किरण, ''बौद्ध द ार्न और लैंगिकता'', भारतीय विद्या संस्थान, नई दिल्ली, पृश्ठ संख्या 51

Mobile 8375927246, Email id : pritibharti231991@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 65-69

'आवाजें' कहानी में चित्रित दलित प्रतिरोध

अमृता सी. एस.
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय– 682022

सारांश :-

मोहनदास नैमिशराय की 'आवाजें' कहानी दलित समाज की उस छटपटाहट, पीड़ा और आंतरिक आक्रोश को स्वर देती है, जो वर्षों से जातिगत शोषण, सामाजिक अपमान को सहता आया है। यह कहानी एक प्रतीकात्मक और यथार्थपूर्ण घटना से शुरू होती है जब दलित समुदाय गंदगी साफ करने से मना कर देता है। यह मना करना कोई साधारण बात नहीं है, बल्कि सदियों से थोपे गए अपमानजनक कार्यों और जातिगत व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह की शुरुआत है। इस छोटे से इनकार में एक बड़ी सामाजिक चेतना छुपी है। कहानी में यह दिखाया गया है कि कैसे दलित समाज अब चुप नहीं रहना चाहता। वह अपने ऊपर थोपे गए सामाजिक दायित्वों और भेदभावपूर्ण व्यवहार को अस्वीकार कर रहा है। गंदगी साफ करने से इनकार करना दरअसल उस अन्यायपूर्ण व्यवस्था को नकारना है, जो दलितों को हमेशा नीचा दिखाकर उनके आत्मसम्मान को कुचलती आई है। इस इनकार के बाद समाज में तनाव और हलचल मचती है। उच्च जातियाँ असहज हो जाती हैं, क्योंकि वे मानती हैं कि सफाई जैसे काम तो दलितों के ही हैं। कहानी में स्त्रियों की आवाज भी महत्वपूर्ण है। दलित स्त्री, जो जाति और लिंग दोनों आधारों पर शोषित रही है, अब वह भी चुप नहीं है। वह अपने आत्मसम्मान और अधिकारों के लिए आवाज उठाती है। यह आवाज अब पीड़ा की नहीं, प्रतिरोध की आवाज है।

मुख्य शब्द :- दलित समाज, जाति–व्यवस्था, जातीगत–भेदभाव, शोषण, प्रतिरोध, चुप्पी का टूटना।

'आवाजें' कहानी के जरिए मोहनदास नैमिशराय सामंती और अमानवीय परंपराओं के विरुद्ध उपजे दलित आक्रोश और प्रतिरोध को सामने लाते हैं। "'दलित' शब्द का अर्थ जाति–बोधक नहीं, बल्कि समूह की अभिव्यंजना देता है। सामान्य अर्थों में देखा जाए तो दलित वह है जो भारतीय समाज व्यवस्था में अस्पृश्य माना गया, दुर्गम पहाड़ियों, जंगलों में जीवन–यापन करने को बाध्य जनजातियों, बेगार करते, कम मूल्य पर श्रम करते श्रमिक, जरायम पोशा कही जाने वाली जातियाँ, बंधुआ" उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से ग्रामीण अंचलों में जातिगत और ऊंची जाति के लोगों के सामंती दबदबे को उघाड़ने का काम करते है। इसी का फलस्वरूप 'आवाजें' कहानी की गूँज अभी तक दलित साहित्य में हैं और यह कहानी दलित समाज को भी हिलाया था। आवाजें कहानी के बारे में मोहनदास नैमिशराय कहते है कि "गाँव में दलित जीवन की त्रासदी के साथ संघर्ष भी इस कहानी में है। सामन्तवाद की जकड़न सम्भवतः नई शताब्दी में कम हुई होगी, लेकिन पिछली शताब्दी में अस्सी के दशक में जब यह कहानी लिखी गई थी तब विशेषकर उत्तर प्रदेश के गाँवों में सामन्तवाद अपने चरम पर था। उनके

लिए दलितों का खून सस्ता था। हालाँकि उत्तर प्रदेश की उसी जमीन पर दलित आन्दोलन के अंकुर भी फिर से फूटने लगे थे।"[1] भारतीय समाज में व्याप्त वर्ण–व्यवस्था, जाति, अस्पृश्यता, शोषण, दमन और उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष काफी अरर्से से चलते आ रही है। ईसा के समय से लेकर गोतम बुद्ध के समय से लेकर आज तक जो अन्याय दलित समाज के साथ हो रहे है उसके विरुद्ध सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आंदोलन चलते रहे हैं। इन संघर्ष और प्रतिरोध समाज में दलितों के जिदगी में थोड़ा बहुत परिवर्तन तो किया है लेकिन पूर्ण रूप से दलित आजाद हुआ है यह कहना मुश्किल है। जयप्रकाश कर्दम लिखते हैं कि जब तक सभी मनुष्यों में समानता की भावना नहीं आ जाती है तब तक हम सामाजिक ही नहीं हैं...''बिना समता के कोई भी समाज नहीं हो सकता है। मुझे यह स्वीकार करने में संकोच होता है कि हम एक भारतीय समाज हैं, क्योंकि हम विभिन्न वर्णों एवं जातियों में विभक्त हैं। हम अलग–अलग मानव–समूह हो सकते हैं, समाज नहीं।''[2]

दलित शब्द सामाजिक श्रेणी के सबसे नीचे के तबके के लोगों के लिए प्रयुक्त है। जिसका दलन हुआ है, जिसे दबाया गया है, जिसे मनुष्य के दर्जे से नीचे धकेला है वही दलित है। चौतरफा समस्याओं से घिरा दलित समाज अन्य समाजों के साथ अपने सह–अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है। "भारतीय समाज–व्यवस्था का सबसे घृणित रूप है एक जाति दूसरी जाति को अपने से निम्नतर मानती है। इसके कारण समाज में लगातार घृणा और द्वेष का वातावराण बना रहा।"[3] स्वातन्त्रोत्तर परिस्थितियों में भी दलित जीवन में कोई आधारभूत अंतर नहीं आया है। स्वातन्त्रोत्तर भारत में मनुष्य को मौलिक अधिकार प्राप्त हुआ है लेकिन दलित समाज को नहीं। अशिक्षा के कारण इन्हें अपने अधिकारों और कर्तव्यों की जानकारी नहीं है, यदि जानकारी भी है तो साधनहीनता के कारण लोग इनका भरपूर शोषण करते है। जो जागरूक हो रहे हैं उन्हें दूसरे तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। भारत में भारतीय संविधान में दलित को अनुसूचित जाति कहा गया है। उनकी जनसंख्या पूरे भारत की जनसंख्या का 20 प्रतिशत है। यानी 20 करोड़ आबादी जिन्हें जन्म के आधार पर आज भी प्रताड़ित किया जा रहा है। दलितों की यह प्रताड़ना अमानवीय है जो उन्हें मानवीय अधिकारों से वंचित करती है। समाज में दलितों का निम्न स्थिति होने का कारण है आर्थिक विपन्नता। वर्ण–व्यवस्था के नियमों के अनुसार दलितों को धन–संपत्ति रखने का कोई अधिकार नहीं था, उन्हें केवल उच्च वर्णों की सेवाओं के फलस्वरूप जो तुच्छ–सा पारिश्रमिक मिलता उसी से गुजारा करना होता। कालांतर में दलितों की आर्थिक स्थिति में कोई खास फर्क नहीं पड़ा। दलितों की सामाजिक समस्याओं का अंत करने के लिए उन्हें आर्थिक रूप से सुदृढ़ करना होगा।

रोजी–रोटी के लिए पराश्रित व्यक्ति जिसकी खाता है उसका गाता भी है। सामाजिक लोकतंत्र का स्वप्न पूरा करने की दृष्टी से दलितों को अपनी दीनता–हीनता वाली भावना को बाहर कर आत्मसम्मानित नागरिक बनने हेतु पहले खुद समानता को आत्मसात करना होगा। यह तब होगा जब उनके रोजगार की कंडीशन सकारात्मक दिशा में बदले, शिक्षा और संस्कार बदले, सोच और सरोकार युगीन होंगे। ऐसी परिस्थितियां पैदा करनी पड़ेंगी जिनके दबाव में द्विज को भी अपनी मानसिकता बदलनी पड़े। पूर्वाग्रह छोड़ उन्हें यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि दलित भी शारीरिक और मानसिक रूप से पूर्ण सक्षम हैं। दलितों को भी अपनी हीन भावना को दूर कर प्रगती के मार्ग पर चलना चाहिए। और उस प्रगती का झलक आवाजें कहानी में देख सकते हैं।

भारतीय समाज में दमन की परंपरा जितनी पुरानी है उतनी पुरानी परंपरा प्रतिरोध की भी है। प्रतिरोध की इस परंपरा में एक निर्णायक मोड़ तब आया जब डॉ भीमराव अंबेडकर की आवाज बुलंद हुई। उन्होंने सवर्ण

समाज से दया या रियायत की माँग नहीं की। बल्कि उन्होंने भेदभाव या गैर बराबरी पर टिकी सामाजिक व्यवस्था के आमूल परिवर्तन का मुद्दा उठाया। डॉ. अंबेडकर का कहना था कि परिवर्तन की प्रक्रिया तब तक मुक्कम्मल नहीं होगी जब तक दलित समाज जागरूक नहीं हो जाता और वह स्वयं अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ आवाज नहीं बुलंद करता। उनका सूत्र था कि गुलाम को उसकी गुलामी का एहसास करा दो, वह विद्रोह कर देगा। समाज में तथाकथित सवर्ण वर्चस्व तब तक कायम है जब तक दलित समुदाय में असंतोष का जन्म नहीं होता। जिस दिन स्थितियों पर दलित समुदाय विचार करेंगा, अपनी दुर्दशा के कारण खोजेगा उसी दिन दमनकारी समाजतंत्र संकटग्रस्त हो जाएगा। दलित कहानीकारों ने भी अपनी कहानियों के माध्यम से दलित समाज की पूर्ण मुक्ति के लिए आवाज उठाया। मुक्ति से तात्पर्य है वर्णवादी व्यवस्था से मुक्ति अर्थात् जिस व्यवस्था ने उन्हें मनुष्य नहीं बल्कि पशु से भी बदत्तर समझा है। वह इस अमानवीय व्यवस्था से मुक्ति चाहते हैं। उनका सारा आक्रोश,आग,लावा इस मनुवादी व्यवस्था के प्रति है। बाबा साहब अम्बेडकर से प्रभावित हो वह ज्ञान की दुनिया की ओर बढ़ते हैं। सदियों से चली आ रही गुलामी की व्यवस्था को नेस्तनाबद्ध करने के लिए शिक्षा को आधार बनाते है। उनका संघर्ष मात्र व्यक्तिगत न होकर सामूहिक होता है। इसलिए वह वैचारिक न होकर सामूहिक होता है। इसलिए वह वैचारिक क्रांति के बीज शहरी शिक्षितों के साथ–साथ ग्रामीणों में डालते है, क्योंकि गुलामी की जंजीरें भूमि संबंधों की जटिलताओं के कारण गाँव में अधिक मजबूत है। ग्रामीण समाज में दलित समुदाय को मुख्य गाँव से अलग बसाकर उन्हें मानसिक और शारीरिक रूप से आश्रित वर्ग बनाया हुआ है। इस गुलामी की जंजीरों को तोड़ पाना कठिन है, लेकिन असंभव नहीं।

मोहनदास नैमिशराय की कहानी इसी वैचारिकता से प्रेरित है। और अपनी जंजीरों से पूर्ण रूप से मुक्ति पाने की पुरजोर कोशिश मोहनदास नैमिशराय की कहानी का पात्र द्वारा देख सकते हैं। आवाजें कहानी एक पारंपरिक गाँव पर आधारित है। इस गाँव में मेहतरों का एक टोला है। गाँव के वर्ण व्यवस्था के मुताबिक मरे जानवरों की खाल उतरना और मैला उठाने का काम दलितों के हिस्से में जाता था। टोले के बड़े–बुजुर्ग लोग आपस में सलाह–मशविरा करके तय करते हैं कि अब वे गंदगी की सफाई का काम नहीं करेंगे और न गाँव के ठाकूरों के जूठन पर अपना गुजारा करेंगे। मेहतर टोले के इस निर्णय से ठाकूरों के मुहल्ले में हलचल मच जाती है। लेकिन ठाकूरों को यकीन था कि मेहतरों की भूख जोर पकड़ते समय वह खुद काम पर आ जाएगी। लेकिन हफ्ते बीत जाने के बाद भी मेहतरों के फैसला नहीं बदला। क्योंकि उनका फैसला आधारहीन और हल्का नहीं था। और इस प्रकार ठाकूर मुहल्ले की हालत ससुरों की मुहल्ले की तरह गंदा बन जाता है। जगह–जगह कूड़े के ढेर लगे हुए हैं। गंदगी सर्वत्र पसारी है। नालियाँ बदबू भरी पड़ी हैं और आवारा कुत्तों के झुंड घूम रहे हैं। इस गंदगी से ऊबकर ठाकूर औतार सिंह पूछताछ के लिए कारिन्दे को मेहतारों के पास भेजता है। कारिन्दे जब इतवारी को ठाकूर से मिलने के लिए बोलता है तो वह जवाब देता है "अब कोई किसी की ठकुराहट नइ चलती है, सब अपने–अपने घर में आजाद हैं।"[4] दलित नेताओं ने बहुत अर्से से दलितों को यह समझाने का प्रयास करता था कि समाज में कोई सवर्ण और अवर्ण नहीं है, सब बराबर के हैं। इतवारी के इस कथन से वह कोशिश सफल नजर आती है। दलित समाज की प्रगति के लिए सरकार ने बहुत सारी योजनाओं और आरक्षण को बनाकर रखा है। इससे दलित जिदगी में थोड़ा–बहुत परिवर्तन तो आए हैं लेकिन समाज में बराबरी का हक पूर्ण रूप से उन्हें अभी तक हासिल नहीं हुआ है।

कहानी में दलितों की वर्तमान स्थिति पर ठाकूर ने इस प्रकार बताया है कि "बड़े ठाकूर सुना है, सहरों में तो होटलों में लोग एक ही कप में चाय–दूध पीवै हैं। सुना है वहाँ के मन्दिर में भी घुस जाते हैं ससुरे.... ।"[5] ठाकूर का कथन है– "ससुरों ने देखो कितना सर उठा रखा है...? दस–बीस साल पहले तो मूँह में जबान ही जैसा न थी और अब कहते हैं गाँव में कोई ठाकूर–वाकूर नहीं....." ।[6] "अब तो इनका ही राज है। सरकार ने भी तो सर चढ़ा रखा है ससुरों को, शहर की बात दूसरी है पर हमारे गाँव में यह सब ना चलेगा।"[7] ससुरों को वापस काम में लाने के लिए पुलिस को रिश्वत देकर मेहतरों की बस्ती से बीस–तीस लोगों को डकैती के केस में जैल डालती है। और बस्ती में जाकर ठाकूर लोग मेहतारिनियाँ को डराती हैं और काम पर आने की धमकी देती है। पर यहाँ भी ससुरों ने अपने गंदगी साफ न करने के निर्णय से पीछे नहीं हटता है। बस्ती के औरतों ने मिल कर झाड़ू से सब ठाकूरों को मार–मार कर भगाता है। और अगले दिन शहर के किसी बड़े वकील ने गिरफ्तार हुए मेहतारों की जमानत करती है। इस घटना की खबर अखबारों में इस प्रकार छपती है कि "ग्राम मकदूमपुर के दलितों पर अत्याचार। ठाकूरों ने पुलिस से मिली–भगत करके डकैती के केस में फँसवाया।"[8]

इस प्रकार दलित एक साथ मिलकर अपने हक के लिए लड़ते है। और शहर से दलित नेता, एस.एच. ओ आदि सबका साथ ससुरों को अपनी लडाई में और ताकत देती है। यह प्रतिरोध सफल हो जाने की खुशी वे शराब पीकर और गालियाँ बक कर, ढोलक बचाकर ,उछल–कूद कर के प्रकट करते है। लेकिन ठाकूरों को अपना पतन मंजूर नहीं था, इसलिए वह रातों रात मेहतरों की बस्ती को आग लगाती है। और इस प्रकार ठाकूर अपने अंदर के जाति रूपी विष का प्रयोग आग के जरिए कर देता है।

दलित चेतना की कहानी आवाजें भारतीय समाज में दलितों की स्थिति का चित्रण और उनकी दुर्दशा के कारणों को रेखांकित करती है। यह कहानी आधुनिक बोध के शुभ प्रभावों को अपने ढंग से उल्लेख करती है और साथ ही भारतीय समाज में लोकतंत्र के बुनियादी मूल्यों के अभाव को महसूस कराती है। जातीय दंभ में डूबे मकदूमपुर गाँव के ठाकूर पुरजोर कोशिश करते हैं कि गाँव के मेहतर अपने पुश्तैनी पेशे से विलग न हों। उन्हें यह असह्य लगता है कि दलित स्वाभिमान से, अपनी इच्छानुसार जीने की बात करने लगे हैं। उसकी सामंती मानसिकता को यह स्वीकार ही नहीं है कि भंगी समाज के लोग जूठन और गंदगी के पेशे को त्याग कर कोई सम्मानजनक पेशा चुन लें। कहानी में दलित अपनी आत्म–सम्मान और अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं। आवाजें कहानी के माध्यम से मोहनदास नैमिशराय ने सामंती और अमानवीय परंपराओं के खिलाफ दलितों के गुस्से और प्रतिरोध को सामने लाया है। कहानी में इतवारी और सफाइकर्मीयों ने गंदगी और कूड़ा उठाने से इनकार करते है तो उनके इस फैसले को सामंत औतार सिंह अपने गौरव पर आघात के रूप में देखते हैं। अपने अधिकारों की माँग करना और अपने ऊपर हो रहे हर नाइनसाफी पर सवाल करना आज दलित जानता है और यहाँ एक आशा की झलक दिखाई पड़ती है कि धीरे–धीरे दलित समाज अपना हक पा कर ही रहेगा। इसी आशा से मोहनदास नैमिशराय अपनी कहानी समाप्त करती है। इसलिए कहानी की अंतिम पंक्ति इस प्रकार है "कल तक जो बच्चे जूठन पर लड़ते–झगड़ते थे उनके मन में कुछ कर गुजरने की चेतना जन्म ले चुकी थी।"[9]

दलित वर्ग एक ऐसी समाज में जी रहे थे जहाँ उन्हें रोटी,कपटा और मकान जैसी जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के लिए संघर्ष करना पड़ता है। भूमिहीन कृषि मजदूर के रूप में वह मेहनत करके दूसरों के लिए अन्न पैदा करता है लेकिन स्वयं भूखा रहता है। दिन–रात मजदूरी कर दूसरों के लिए भव्य भवन बनाता है, बदले

में स्वयं मलिन बस्तियों में रहता है। ग्रामीण समाज में दलितों को गाँव का दक्षिण भाग रहने के लिए दे दिया जाता है, लेकिन अब शहरों में वह सड़क के किनारे स्लम्स में रहने के लिए मजबूर हैं या फिर तमाम सुविधाओं से रहित बस्तियों में रहते हैं। मोहनदास नैमिशराय दलितों की अवासीय समस्याओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए यह कहना चाहते है कि दलित और सवर्ण की आवासीय परिस्थितियों में कितना अंतर है और यह समस्या दलितों के विकास के मार्ग में व्यावहारिक रुकावट है। "जाति एक ऐसी राक्षस है, जो आप कहीं भी और किसी भी दिशा में जाएं वह आपका रास्ता जरूर काटेगा। अतः जब तक इस राक्षस को नहीं मार दिया जाता है, तब तक न तो कोई राजनैतिक सुधार किया जा सकता है और न ही आर्थिक सुधार किया जा सकता है।"[10] जाति रूपी राक्षस की मृत्यू के बिना दलितों की जिदगी में रोशनी नहीं आएगा और सवर्ण समाज हिन्दु संस्कृति के नाम पर दलितों के साथ यह अत्याचार बरकरार रखेंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. मोहनदास नैमिशराय, मोहनदास नैमिशराय चुनी हुई कहानियाँ, अनन्य प्रकाशन, 2017, पृ–3
2. डॉ. एन. सिंह, अरूण कुमार (सं.), मानवीय समाज का आकांक्षी है दलित साहित्य, जयप्रकाश कर्दम से वीरेन्द्र 'आजम' की बातचीत, गाँव के लोग,(दलित विशेषांक), जनवरी–फरवरी, 2021, पृ– 49
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, राधाकृष्ण प्रकाशन, 2020, पृ–94
4. मोहनदास नैमिशराय, मोहनदास नैमिशराय चुनी हुई कहानियाँ, अनन्य प्रकाशन, 2017, पृ–10
5. मोहनदास नैमिशराय, मोहनदास नैमिशराय चुनी हुई कहानियाँ, अनन्य प्रकाशन, 2017, पृ–11
6. मोहनदास नैमिशराय, मोहनदास नैमिशराय चुनी हुई कहानियाँ, अनन्य प्रकाशन, 2017, पृ–11
7. मोहनदास नैमिशराय, मोहनदास नैमिशराय चुनी हुई कहानियाँ, अनन्य प्रकाशन, 2017, पृ–11
8. मोहनदास नैमिशराय, मोहनदास नैमिशराय चुनी हुई कहानियाँ, अनन्य प्रकाशन, 2017, पृ– 12
9. मोहनदास नैमिशराय, मोहनदास नैमिशराय चुनी हुई कहानियाँ, अनन्य प्रकाशन, 2017, पृ–14
10. कँवल भारती, दलित विमर्श की भूमिका, साहित्य उपक्रम, 2002, पृ– 24

Amrutha C S
Research Scholar
E-mail id : amrutha.c.s1999@gmail.com
amruthalaja@gmail.com
Mobile 8157041954

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 70–75

पंचपरगनिया भाषा शिक्षण में भाषा विज्ञान की भूमिका

अरूण कुमार प्रमाणिक
शोधार्थी, पंचपरगनिया भाषा विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

सारांश :–

पंचपरगनिया भाषा शिक्षण में भाषा विज्ञान की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। भाषा विज्ञान एक व्यापक अध्ययन है जो भाषा के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करता है, जैसे कि – ध्वनि, संरचना, अर्थ और उपयोग। यह पंचपरगनिया भाषा के शिक्षण को अधिक प्रभावी और वैज्ञानिक बनाने में सहायता करता है। भाषा विज्ञान को भाषा शिक्षण में एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में वर्णित किया गया है जो कि मुख्यतः शिक्षण के रूप में। जहाँ यह बच्चों की भाषिक विकास को समझने और उनके भाषा के प्रयोग को बेहतर बनाने में सहायता करता है।

प्रमुख शब्द :– शिक्षण, संविधान, वैज्ञानिक, साहित्यिक, भाषा विज्ञान, संरक्षण।

प्रस्तावना :–

इस संसार में लगभग 7000 भाषाएँ बोली जाती है। ऐसे तो भारत में अनेकों भाषाएँ बोली जाती है, परन्तु हमारे संविधान में 22 भाषाओं को ही मान्यता प्राप्त है। इस प्रकार से हम देख सकते हैं कि झारखण्ड भारत का एक अभिन्न राज्य है जो कि खनिज–सम्पदा के लिए प्रसिद्ध है। साथ ही साथ आदिवासी बहुल राज्य होने के नाते यहाँ विभिन्न प्रकार की भाषाएँ बोली जाती है। प्रत्येक समुदाय के अलग–अलग भाषा है, जैसे कि – मुण्डाओं का मुण्डारी, उराँवों का कुँड़ुख, हो का हो भा आदि। इनमें से कुल पांच (5) जनजातीय भाषाएँ और चार (4) क्षेत्रीय भाषाओं को ही झारखण्ड में मान्यता प्राप्त है। इन्हीं में से एक पंचपरगनिया भाषा है, जो राँची जिला के पूर्वी भागों में बहुतायत लोगों द्वारा बोली जाती है। साथ ही साथ खूँटी, सरायकेला– खरसांवा एवं पड़ोसी राज्यों में भी इस भाषा को बोलने वालों की संख्या अत्यधिक है।

पंचपरगनिया भाषा के बारे में हमारे पंचपरगनिया भाषा के भाषा विद्वानों का कहना है कि मध्य प्रदेश में एक अहीरबाड़ा गांव है और उसी गांव में अहीर जाति के लोग निवास करते थे। कहा जाता है कि वहाँ के राजा के साथ अहीर जाति के लोगों का लड़ाई हुई और हार जाने के पश्चात् वहाँ से पलायन कर विभिन्न क्षेत्रों में अपना आशियाना बनाया।

विभिन्न क्षेत्रों में से झारखण्ड के राँची जिला के बुण्डू क्षेत्र में सबसे पहले रहने लगे। इस प्रकार से अहीर जाति के लोगों द्वारा ही इसे पहले बोली गई है। इस प्रकार से पंचपरगनिया भाषा धीरे–धीरे प्रचलित होता गया और कालान्तर में यह एक विस्तृत क्षेत्रों में बोली जाने लगी। चाहे वह जनजाति अथवा सदान लोगों के द्वारा बोली

जाती हो।

भाषा शिक्षण का संबंध एक ओर भाषा से रहता है तो दूसरी ओर मानवीय व्यवहार और मानव मन से। मानव भाषा की अपनी प्रकृति, अपनी विशिष्टताएँ, अपनी संरचना, अपने प्रकार्य, अपने विकल्पन, अपनी शैलियाँ और अपने रूप होते हैं जो भाषा शिक्षण की प्रक्रिया तथा कार्यान्वयन में अपनी भूमिका निभाते हैं। इसके साथ ही साथ मानव के भाषा प्रयोक्ता होने के कारण उसके सामाजिक–सांस्कृतिक संदर्भ और जगत के प्रति उसकी दृष्टि भी भाषा शिक्षण में अपना प्रभाव डालते हैं। अतः भाषा शिक्षण में इस बात पर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है कि भाषा को सामाजिक वस्तु के रूप में माना जाए ताकि भाषा संप्रेषण व्यवस्था का सशक्त माध्यम बनने के साथ–साथ मानसिक जीवन की संकल्पनात्मक शक्ति भी बन जाए।

इस प्रकार यदि शिक्षक विषय–वस्तु को उचित भाषा प्रयोग में संयोजित कर शिक्षार्थी तक पहुँचा नहीं पाता तो यह माना जाएगा कि वह अपने लक्ष्य में खरा नहीं उतरा और यदि शिक्षार्थी संप्रेष्य कथ्य को भाषा के सहारे अपनी संकल्पनात्मक भूमि में उतार कर उसे आत्मसात नहीं कर लेता, तो उसे भाषा का योग्य प्रयोक्ता नहीं माना जा सकता।

पंचपरगनिया भाषा शिक्षण में भाषा विज्ञान का महत्व :–

भाषा विज्ञान वस्तुतः भाषा का विज्ञान है। इसमें भी भाषा का सर्वांगीण अध्ययन होता है, इसलिए भाषा विज्ञान का महत्व तथा उसकी उपयोगिता सर्वविदित है।

भाषा विज्ञान के महत्व के कुछ तत्व इस प्रकार हैं –

- भाषा विज्ञान में भाषा सर्वांगीण और सम्यक् अध्ययन तथा विवेचन होता है। यह भाषा चाहे विशिष्ट हो या सामान्य साहित्यिक हो या असाहित्यिक लिखित हो या अलिखित सभी का अध्ययन भाषा विज्ञान के अंतर्गत होता है। पंचपरगनिया भाषा शिक्षण में भाषा की उत्पत्ति ध्वनि, शब्द, अर्थ जैसे प्रमुख अंगों का विवेचन, भाषा का विकास आदि का अध्ययन भाषा–विज्ञान के अध्ययन के विषय है। इस प्रकार भाषा से संबंधित प्रत्येक समस्या और जिज्ञासा का उत्तर भाषा विज्ञान ही देता है। भाषा का इतना व्यापक और वैज्ञानिक अध्ययन होने के कारण भाषा विज्ञान का विशिष्ट महत्व है।
- पंचपरगनिया भाषा शिक्षण में भाषा विज्ञान मानव की प्राचीन और प्रागैतिहासिक संस्कृति व सभ्यता का अध्ययन करता है। जिस प्रकार मानव की सभ्यता और संस्कृति का इतिहास है, 'भाषा विज्ञान' इन दोनों का खोज करता है। जहाँ एक भाषा विद्वान भाषा की उत्पत्ति की खोज करता हुआ, उसके प्रारंभिक रूप का पता लगाता है, वहीं उस भाषा के प्रयोगकर्ताओं के सांस्कृतिक इतिहास पर ही प्रकाश नहीं डालता है कि अपितु उस संस्कृति के विकास आदि की भी खोज करता है।
- इस बात का भी पता लगाता है कि उस प्राचीन संस्कृति के अंतर्गत मानवीय समाज के रीति–रिवाज, रहन–सहन आदि का क्या रूप था। पंचपरगनिया भाषा आर्य भाषा परिवार के अंतर्गत है और यही कारण है कि आर्य भाषा की खोज करते–करते भाषा वैज्ञानिकों ने आर्यों के मूल स्थान, उनकी सभ्यता और संस्कृति आदि के स्वरुप का भी पता लगाता है। इस प्रकार भाषा विज्ञान न केवल भाषा के प्राचीनतम रूप की खोज और उसके विकास का अध्ययन करता है। अपितु उस भाषा के प्रयोगकर्ताओं की प्रागैतिहासिक संस्कृति के रूप पर भी प्रकाश डालता है।

• भाषा विज्ञान भाषा के एक महत्वपूर्ण अंग शब्द समूह का सम्राट सम्यक् विवेचन करता है। भाषा में शब्दों का महत्वपूर्ण स्थान है। यही कारण है कि भाषा विज्ञान की प्रमुख शाखाओं में एक शब्द विज्ञान भी है। भाषा विज्ञान के अंतर्गत शब्दों का वैज्ञानिक विवेचन होता है। इसके अंतर्गत ही शब्दों के निर्माण प्रक्रिया, उसके विकास और उसके रूप परिवर्तन आदि का अध्ययन होता है। प्रयोग प्रवाह में आकर शब्दों का रूप किस प्रकार परिवर्तित हो जाता है, यह भाषा विज्ञान ही स्पष्ट करता है।

• शब्द के पश्चात् भाषा का दूसरा महत्वपूर्ण अंग ध्वनि है। भाषा विज्ञान ही इस भाषा ध्वनि का विषद और सम्यक् विवेचन करता है। भाषा विज्ञान भाषा की प्राचीन ध्वनियों का पता लगाता है और स्पष्ट करता है कि उन ध्वनियों का विकास किस प्रकार हुआ और किस प्रकार नयी ध्वनियों का समावेश हो गया। उदाहरण – पंचपरगनिया भाषा में 'ण' के स्थान पर 'न', क्ष के स्थान में 'छ' या 'ख', 'ज्ञ' के स्थान पर 'ग' ही क्यों होता है? आदि प्रश्नों का उत्तर भाषा विज्ञान ही देता है।

• भाषा विज्ञान केवन शब्द ध्वनि शब्दार्थ मात्र का अध्ययन नहीं है, अपितु वह शब्दों के उचित और शुद्ध प्रयोग पर ध्यान रखता है। इस प्रकार भाषा का शुद्ध रूप और समुचित प्रयोग का ज्ञान भाषा विज्ञान ही कराता है।

• स्वर और व्यंजन का समुचित परिचय शब्दों में उसके आगम लोप और विपर्यय का परिचय भाषा विज्ञान के अध्ययन से ही होता है। 'बेफजूल', हिमालय पर्वत, जलमुर्गावी जैसे अशुद्ध प्रयोग जो जन–सामान्य के प्रयोग के आकर बहुप्रचलित हो गये हैं, के कारणों पर भाषा विज्ञान ही प्रकाश डालता है।

• भाषा विज्ञान से सटीक अनुवाद, दूरसंचार की व्यवस्था, टंकण यंत्र (टाईप राईटर) के विकास में भी सहायता मिलती है। सांकेतिक शब्दावली व पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण में भाषा विज्ञान से ही सहायता ली जाती है। भाषा विज्ञान की सहायता से ऐसे ध्वनि संकेतों का भी निर्माण होता है, जिनसे आधुनिक दूरसंचार व्यवस्था में सहायता मिलती है।

• मनुष्य की वाग्यंत्र की चिकित्सा के लिए भी भाषा विज्ञान का प्रयोग होने लगा है। वाग्यंत्र में दोष होने से मनुष्य शब्दों के उच्चारण में अटकने, तुतलाने व हकलाने लगता है। फलस्वरुप शब्दों का उच्चारण दोषपूर्ण हो जाता है। इस देश को भाषा विज्ञान की सहायता लेकर दूर किया जाता है, क्योंकि भाषा विज्ञान के अंतर्गत वाग्यंत्र का सूक्ष्म परिचय कराया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि भाषा विज्ञान का अध्ययन कितना महत्वपूर्ण व मानव जीवन के लिए उपयोगी है, इसकी व्यापकता इस बात की स्वयं साक्षी है।

भाषा विज्ञान की विशेषताएँ :–

• भाषा विज्ञान में भाषा संबंधी अनुभव सिद्ध विवरण एवं सिद्धांत प्रस्तुत किया जाता है, जिनका परीक्षण अन्यत्र भी किया जा सकता है। भाषा विज्ञानी जो 'है' उसी का वर्णन करता है, वह क्या होना 'चाहिए' इसकी बात नहीं करता।

• भाषा विज्ञान में भाषा की संरचना अध्ययन का मुख्य विषय होता है। कुछ भाषा विज्ञानी अर्थ–सम्प्रेषण के संदर्भ में एवं मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्यों में भी भाषा का अध्ययन करते हैं।

• किसी भी भाषा के संरचनात्मक वैशिष्ट्य के पीछे छिपे कारणों को उजागर करना भाषा वैज्ञानिक सिद्धान्त का लक्ष्य होता है। लेकिन इस क्षेत्र में भाषा विज्ञानियों में मतैक्य नहीं है। कुछ सार्वभौम सिद्धांतों की खोज को

अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं और कुछ भाषा विशेष के विवरण को।

- भाषा विज्ञान में भाषा के अध्ययन का लक्ष्य उसके स्वरुप का ज्ञान है, अर्थात् भाषा का अध्ययन भाषा के स्वरुप को समझने के लिए। पर इस अध्ययन का व्यावहारिक उपयोग कई संदर्भों में सफलता से किया जा सकता है। जैसे – भाषा शिक्षण में अथवा सांस्कृतिक अध्ययन के संदर्भ में अथवा आज जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षेत्र हो गया है, मशीन भाषा के विकास में।
- प्रत्येक विज्ञान की भांति भाषा विज्ञान की भी पारिभाषिक शब्दावली है, जो वर्ण्य विषय के यथावत् वर्णन में सहायक होती है। आज के भाषा विज्ञान में प्रयुक्त शब्दावली में कुछ परम्परागत शब्द हैं, पर अध्ययन के विकास के साथ बहुत सारे नये शब्दों की रचना भी हुई है।

उद्देश्य :-

भाषाओं में भाषा विज्ञान की भूमिका –

- **भाषा की संरचना को समझना** – भाषा विज्ञान पंचपरगनिया भाषा की संरचना को समझने में मदद करता है, जैसे कि उसके शब्द, वाक्य और व्याकरण। यह भाषा को बेहतर ढंग से सिखाने और सीखने में मदद करता है।
- **भाषा शिक्षण के तरीकों का विकास** – भाषा विज्ञान के सिद्धांतों का उपयोग करके पंचपरगनिया भाषा शिक्षण के लिए और प्रभावी तरीके विकसित किए जा सकते हैं।
- **भाषा की जटिलताओं को समझना** – भाषा विज्ञान, पंचपरगनिया भाषा की विभिन्न जटिलताओं, जैसे कि मुहावरे, कहावतें और लोक कथाओं का अध्ययन करके, भाषा की सांस्कृतिक और सामाजिक संदर्भ को समझने में मदद करता है।
- **भाषा की ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन** – भाषा विज्ञान, पंचपरगनिया भाषा की ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करके, भाषा की विकास प्रक्रिया को समझने में मदद करता है, जो भाषा के शिक्षण और ज्ञान को समृद्ध करता है।
- **भाषा के संरक्षण और विकास में योगदान** – भाषा विज्ञान पंचपरगनिया भाषा के संरक्षण और विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि यह भाषा के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करके, भाषा के लुप्त होने से बचाव में मदद करता है।
- **साहित्य और भाषा के बीच संबंध** – भाषा विज्ञान भाषा और साहित्य के बीच के संबंध को समझने में मदद करता है, जिससे शिक्षक–छात्रों को पंचपरगनिया साहित्य को बेहतर तरीके से समझ सकते हैं।
- **भाषा के अर्थ को समझना** – भाषा विज्ञान पंचपरगनिया भाषा के अर्थ को समझने में सहायता करता है, जैसे कि शब्दों, वाक्यों और वाक्यांशो का अर्थ। यह भाषा के अर्थ को बेहतर ढंग से समझने और व्याख्या करने में सहायता करता है।
- **भाषा की ध्वनि को समझना** – भाषा विज्ञान पंचपरगनिया भाषा की ध्वनि को समझने में सहायता करता है, जैसे कि उसके व्यंजन, स्वर और ध्वनियों का उपयोग। यह भाषा के उच्चारण और स्पष्टता को बेहतर बनाने में मदद करता है।
- **भाषा के शिक्षण और विकास में मदद करना** – भाषा विज्ञान पंचपरगनिया भाषा के शिक्षण और विकास

में मदद करता है, क्योंकि यह भाषा के विभिन्न पहलुओं को समझने और सुधारने में मदद करता है।

- **भाषा शिक्षण सामग्री का विकास** – भाषा विज्ञान की जानकारी के आधार पर, शिक्षक प्रभावी शिक्षण सामग्री विकसित कर सकते हैं, जैसे कि – पाठ्यपुस्तकें, अभ्यास प्रश्न और वीडियो आदि।
- **व्याकरण का ज्ञान** – भाषा विज्ञान पंचपरगनिया के व्याकरण को समझने में मदद करता है, जिससे शिक्षक छात्रों को सही व्याकरण का उपयोग करने में मदद कर सकते हैं।
- **भाषा के इतिहास का अध्ययन** – भाषा विज्ञान पंचपरगनिया के इतिहास, विकास और अन्य भाषाओं से संबंध का अध्ययन करता है, जिससे शिक्षक भाषा के विकास को बेहतर तरीके से समझ सकते हैं।

उपरोक्त लिखित भाषा विज्ञान की भूमिका के कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण निम्नलिखित है :-

1. भाषा विज्ञान, पंचपरगनिया भाषा की ध्वनि संरचना का अध्ययन करके, छात्रों को सही उच्चारण और ध्वनि पहचान सिखाने में मदद कर सकते हैं।
2. भाषा विज्ञान, पंचपरगनिया भाषा की शब्द संरचना का अध्ययन करके, छात्रों को शब्दार्थ और वाक्य संरचना को समझने में मदद कर सकता है।
3. भाषा विज्ञान, पंचपरगनिया भाषा की व्याकरणिक संरचना का अध्ययन करके, छात्रों को सही वाक्य संरचना और व्याकरणिक नियमों को समझने में मदद कर सकता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भाषा विज्ञान, पंचपरगनिया भाषा के शिक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि यह भाषा की संरचना, अर्थ और उपयोग को समझने में सहायता करता है, जो भाषा सीखने की प्रक्रिया को आसान बनाता है।

भाषा विज्ञान, पंचपरगनिया भाषा के शिक्षण को सहायता किस प्रकार करता है, उसक कुछ प्रमुख बिंदु निम्नलिखित है –

- **भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन को बढ़ावा देता है** – भाषा विज्ञान, पंचपरगनिया भाषा के संरचना, व्याकरण और शब्दार्थ को समझने में सहायता करता है।
- **भाषा की शुद्धता और उपयोगिता को बढ़ाता है** – भाषा विज्ञान पंचपरगनिया भाषा के उचित प्रयोग और शुद्धता को सुनिश्चित करने में सहायता प्रदान करता है।
- **भाषा के विकास को समझने में सहायता करता है** – भाषा विज्ञान पंचपरगनिया भाषा के इतिहास और विकास को समझने में सहायता प्रदान करता है।
- **दूसरी भाषा सीखने वालों को सहायता करता है** – भाषा विज्ञान पंचपरगनिया भाषा के उन पहलुओं को उजागर करता है जो दूसरी भाषा के सीखने वालों के लिए मुश्किल हो सकते हैं।

भाषा विज्ञान के कुछ महत्वपूर्ण पहलू जो पंचपरगनिया भाषा शिक्षण में उपयोगी होती है :-

- **ध्वनि विज्ञान** – पंचपरगनिया भाषा की ध्वनियों और उनके उच्चारण का अध्ययन।
- **संरचना विज्ञान** – पंचपरगनिया भाषा के शब्दों और वाक्यों के अर्थ का अध्ययन।
- **अर्थ विज्ञान** – पंचपरगनिया भाषा के अर्थ का अध्ययन।
- **सामाजिक भाषा विज्ञान** – पंचपरगनिया भाषा के सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में उपयोग का अध्ययन।

- **भाषा अधिग्रहण** – दूसरी भाषा सीखने के लिए पंचपरगनिया भाषा का कैसे अधिग्रहण किया जाता है, इसका अध्ययन।

भाषा विज्ञान के अध्ययन से पंचपरगनिया भाषा शिक्षण में निम्नलिखित लाभ होते हैं :–

- शिक्षक और छात्र दोनों को भाषा के बारे में बेहतर समझ होती है।
- शिक्षक अधिक प्रभावी ढंग से भाषा सिखा सकते हैं।
- छात्रों को भाषा को अधिक आसानी से और प्रभावी ढंग से सीखने में मदद मिलती है।
- शिक्षण सामग्री को बेहतर ढंग से डिजाईन और विकसित किया जा सकता है।
- भाषा के मूल्यांकन में अधिक सटीकता और निष्पक्षता होती है।
- भाषा के अर्थ को बेहतर ढंग से समझने और व्याख्या करने में मदद करता है।

निष्कर्ष :–

भाषा विज्ञान पंचपरगनिया भाषा शिक्षण को अधिक प्रभावी और वैज्ञानिक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह भाषा के विभिन्न पहलुओं को समझने में सहायता करता है, जिससे शिक्षक अधिक प्रभावी शिक्षण सामग्री विकसित कर सकते हैं और छात्रों को भाषा सीखने में सहायता मिल सकती है। साथ ही साथ भाषा विज्ञान के माध्यम से, पंचपरगनिया भाषा की संरचना, व्याकरण और शब्दावली को बेहतर तरीके से समझा जा सकता है। इससे भाषा को अधिक व्यवस्थित और प्रभावी ढंग से सिखाने में मदद मिलती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. भाषा विज्ञान – डॉ० भोलानाथ तिवारी।
2. भाषा विज्ञान की भूमिका – आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा, दीप्ति शर्मा।
3. पंचपरगनिया भाषा – श्री परमानन्द महतो।
4. आदर्श पंचपरगनिया व्याकरण – डॉ० करमचन्द्र अहीर।
5. पंचपरगनिया लोक साहित्य – डॉ० दिनेश प्रसाद सिंह।
6. भाषा विज्ञान एवं भाषा शास्त्र – डॉ० कपिलदेव द्विवेदी।
7. पंचपरगनिया भाषा का व्याकरणिक अध्ययन – डॉ० करचमन्द्र अहीर।
8. भाषा विज्ञान तथा हिन्दी भाषा का विकास – डॉ० लक्ष्मीकान्त पाण्डेय।
9. भाषा विज्ञान तथा हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक विष्लेषण – डॉ० सीताराम झा 'श्याम'।

प्रिंट कॉपी भेजने का पता

ARUN KUMAR PRAMANIK, VILLAGE+POST & URMAL

PS.- CHOWKA, DISTRICT - SERAIKELA KHARSWAN, STATE JHARKHAND, PIN CODE-832404

मो०नं०–8084196495

EMail ID : arunkumardec90@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 76-82

लोकसाहित्य में लोकगाथा का वैशिष्ट्य

डॉ. डूरी शांति
प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, डी.एन.जी.सी, ईटानगर।

प्रस्तावना :-

लोकसाहित्य एक व्यापक एवं समष्टि–भाव की व्यंजना करता है, भले ही यह रचा किसी खास समय में किसी खास व्यक्ति के द्वारा किया गया हो। यह जनता के स्वाभाविक, स्वच्छन्द तथा सरल एवं विस्तृत भावों की अभिव्यंजना करता है। इसलिए एक बार जनता में उतर जाने के बाद रचनाकार पीछे छूट जाता है और रह जाती है उसकी जन–मन में उतर गयी रचना, जो सार्वजनिक संपत्ति हो जाती है। लोकसाहित्य उन साधारण लोगों की सामूहिक मौखिक अभिव्यक्ति है जो आधुनिक परिवेश में पले होने पर भी पुरातन परिवेश में लिप्त रहते हैं। यह ऐसी मौखिक अभिव्यक्ति है, जो व्यक्तित्व से रहित होते हुए भी समान रूप से समाज की आत्मा को व्यक्त करने वाली है।

लोकसाहित्य का विषय मनुष्य स्वयं है। मानव–मन से स्वतः उसका जन्म हुआ है और मानव–मन को प्रभावित करने वाली अनुभूतियाँ उसमें प्रतिबिम्बित होती हैं। मानव–मात्र ही नहीं, समूचे जीव–जगत के प्रति सहानुभूति, सृष्टि के प्रति जिज्ञासा और मानव के कल्याण की भावना ही लोकसाहित्य का आधार विषय हैं।

लोक साहित्य में लोकगाथाओं की भी महत्वपूर्ण अवस्थिति है। इनकी परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। प्रधानतः प्रेम, वीर, शांत एवं करुण भावों पर अवलंबित लोकप्रचलित कोई लंबी कथा ही गेयरूप में ढलकर प्रस्तुत होती है,तो वह लोकगाथा कहलाती है। कथात्मकता और गेयता– ये दो लोकगाथा की स्वरूपगत बड़ी विशेषताएँ हैं। देश के लगभग प्रत्येक क्षेत्र की भाषा–बोली में लोकगाथाएं उपलब्ध हैं, जो न केवल उस भाषा–भाषी समाज को रससिंचित करती हैं, अपितु उसे शिक्षित और संस्कारित करने में भी अपनी भूमिका का निर्वाह करती हैं। इनमें न तो किसी प्रकार की दार्शनिकता का भारी–भरकम आग्रह रहता हैं और न ये किसी प्रकार की विचारधारा से आक्रांत करती हैं। सामान्य मानव के लिए सामान्य भाषा में और मनोरम शैली में यह ऐसी कहानी प्रस्तुत करती हैं जो उसे गंभीर भावों से ओत–प्रोत कर जाती है। मानवीय जीवन के उल्लास–विषाद, सुख–दुख, प्रेम, करुणा, संयोग–वियोग, विरह–वेदना तथा जीवन की अन्य यथार्थमय घटनाएँ–अनुभव आदि की ही अभिव्यक्ति लोकगाथाओं में सहज प्रतीकों के माध्यम से हुआ करती है।

लोकगाथा की परम्परा वैदिक युग चली आ रही हैं। "ऋग्वेद में 'गाने वाले' के अर्थ में गाथिन शब्द का प्रयोग किया गया हैं। वैदिक साहित्य में 'गाथिन' का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए किया गया हैं, जो किसी प्राचीन आख्यान या कथा को कहने वाला हो।"[1] अतः 'लोक' के साथ 'गाथा' शब्द एक विशेष अभिप्राय को लेकर प्रयुक्त

होता है।

लोक–साहित्य की अन्य विधाओं की ही भांति 'लोकगाथा' में भी दो शब्दों का मेल है– 'लोक' और 'गाथा'। इसका अर्थ हुआ लोक की गाथा या लोक में प्रचलित गाथा। गाथा उस कथा को कहते हैं जिसकी प्रस्तुति गेय रूप में की गयी हो। इसमें लोकगीत और लोककथा दोनों के तत्त्व मिले रहते हैं, परंतु यह दोनों से अलग होती है। कथा में गीतों के संयोग से प्रचलित लंबी लोककथाओं को कहीं–कहीं 'गीतकथा' भी कहा जाता है। दोनों में प्रमुख अंतर यह है कि गीतकथा में जो गीत कथा के साथ प्रस्तुत किए जाते हैं, वे एक तो प्रायः संगीतरहित होते हैं और दूसरे यह कि गीतकथा में गद्य और पद्य दोनों की समान भूमिका रहती है। अर्थात, गद्य–शैली में कथा सुनाने के क्रम में ही कथाकार बीच–बीच में गीतों का प्रयोग भाव–प्रवण अंशों को प्रस्तुत करने, कथा को रोचक बनाने तथा उसे लंबा खींचने के लिए करता है। जब कि लोकगाथा पूरी–की–पूरी पद्यबद्ध और संगीतमयी होती है, साथ ही इसमें कभी–कभी नृत्य का समावेश भी रहता है।

डॉ. श्यामचरण दुबे ने दोनों के बीच में अंतर करते हुए लिखा है कि "गीतकथा और लोकगाथा, दोनों में लोकगीत और लोककथा के तत्त्व सम्मिलित रूप से मिलते हैं। गीतकथा मुख्यतः एक लोककथा ही रहती है, किन्तु रूप में वह गद्यात्मक न होकर पद्यबद्ध होती है। उसे हम लोकसाहित्य के अंतर्गत खंडकाव्य मान सकते हैं। इसके विपरीत लोकगाथा आकार–प्रकार में गीतकथा से बड़ी रहती है और यद्यपि मुख्य कथासूत्र उसमें एक ही रहता है, कथा विकास–क्रम में स्थल–स्थल पर अनेक पात्र और घटनाएँ उससे सम्बद्ध हो जाती हैं। इस कारण अनेक गाथाएँ एक स्वतंत्र 'कथा' की अपेक्षा 'कथा–समूह' प्रतीत होती हैं। गीतकथा और लोकगाथा का क्षेत्र विशाल होता है। एक ही लोकगाथा भिन्न–भिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों में थोड़े–बहुत परिवर्तनों के साथ पायी जाती है"।[२]

अँग्रेजी में लोकगाथा के लिए 'बैलेड' शब्द का प्रयोग होता है। इस तरह से देखें तो लोकगाथा लैटिन के 'बैलारे' (Ballare) शब्द से व्युत्पन्न् अंग्रेजी के 'बैलेड' (Ballad) का समानार्थी है। बैलारे का अर्थ 'नाचना' और बैलेड का 'नृत्ययुक्त गीत' होता है, जिसमें कोई दीर्घाकार कथा कही जाती हैं। श्री विलियम गेड्डी के अनुसार – "बैलेड नृत्य युक्त गीत होता है। वह एक साधारण, सीधी, संक्षिप्त पदों की वर्णनात्मक कविता होती है।" यही विशेषताएँ लोकगाथा को लोकगीतों से अलग करती हैं। कथानक का अभाव, आकार में लघुता तथा गेयता लोकगीतों की पहचान है जबकि आकार में दीर्घता, कथानक की प्रधानता के साथ नृत्य मिश्रित गेयता लोकगाथाओं की पहचान है। रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय द्वारा संपादित 'लोकगीत संकलन' में लिखा गया है– "लोकगीत और लोकगाथा में प्रायः दो प्रकार का भेद होता है– (1) स्वरूपगत, (2) विषयगत। स्वरूप की दृष्टि से लोकगीत आकार में छोटा होता है, किन्तु लोकगाथा विस्तृत होती है। विषय की दृष्टि से लोकगीतों में संस्कारों, ऋतुओं आदि की प्रधानता होती है, जब कि गाथाओं में साहस, शौर्य, रोमांच आदि का प्राधान्य रहता है"।[३]

इनसाइकलोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार, "बैलेड, वह कथा है जो गीतों में कहीं गयी हो।"[४] (A ballad is story told in songs)

हैजलिट इसे गीतात्मक आख्यान (Lyrical Narratire) कहते हैं।

फादर कामिल बुल्के ने 'बैलेड' को गाथा या गाथागीत कहा है।[५]

भोलानाथ तिवारी के व्यवहारिक हिन्दी शब्दकोश के अनुसार "बैलेड शब्द गेयात्मक गेय काव्य है जो या तो लोककंण्ठ में विकसित होता है या लोकगाथा के सामान्य रूप–विधान को लेकर किसी विशेष कवि द्वारा रचा जाता है, जिसमें गीतात्मकता और कथात्मकता दोनों होती हैं, जिनका प्रचार जनसाधारण में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में मौखिक रूप से होता रहता है।"[६]

डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार "संस्कृत साहित्य में 'गाथा' शब्द का प्रयोग गेय पद (लिरिक) के अर्थ में प्राचीन काल से होता चला आया है। गाथा का अर्थ है पद्य या गति और इस अर्थ में इसका व्यवहार ऋग्वेद के अनेक मंत्रों में पाया जाता है। गाथा शब्द में गेयता और कथात्मकता इन दोनों के तत्व विद्यमान हैं। इसलिए ऐसे प्रबंधात्मक गीतों के लिए, जिनमें कथानक की प्रधानता के साथ ही गेयता भी उपलब्ध हो, लोकगाथा शब्द का ही प्रयोग नितांत समीचीन है।"[७]

ऐसा प्रबन्धात्मक लोकगीत जिसमें कथा की प्रधानता हो, लोकगाथा कही जाती है। लोकगाथाओं में लोककथाओं का पद्यात्मक रूप रहता है। जब कोई कथा पद्य रूप में लिख दी जाती है तो वह गाथा बन जाती है। ये लोकगाथाएँ किसी एक व्यक्ति की रचना न होकर कई व्यक्तियों की अथवा समूह की कृतियाँ हैं इसलिए इनमें गायक के व्यक्तित्व का अभाव होता है। यही कारण है कि गाथाओं के रचनाकाल और रचनाकार दोनों को पता लगाना अत्यन्त कठिन है। लोकगाथा का गायक अपनी सुविधानुसार समय–समय पर इसमें परिवर्तन, परिवर्द्धन एवं संशोधन करता रहता है। फलतः गवैये और भाषा–क्षेत्र के आधार पर लोकगाथा के मूल पाठ से अनेक पाठ तैयार हो जाते हैं। इस तरह इनका कोई प्रमाणिक मूल पाठ नहीं होता, गायक की कुशलता और क्षमता पर ही इनकी प्रस्तुति प्रधानतः अवलम्बित रहती है।

कुछ विद्वानों ने लोकगाथाओं को अपौरुषेय वाङ्मय कहा है, क्योंकि ये गाथाएँ चिरकाल से वेदों की भाँति मौखिक परम्परा में जीवित हैं। जी.एच.जीरोल्ड के अनुसार– "The ballad is folk song that tells a story and always learned by lips" इस तरह किसी भी लोकगाथा की प्रधान उपलब्ध कसौटी उसकी मौखिक परम्परा है। कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार "लोक साहित्य के अन्तर्गत ऐसे भी गीत पाए जाते हैं जो बहुत लम्बे होते हैं तथा जिनमें कथावस्तु की प्रधानता होती है। इन गीतों को लोकगाथा के नाम से अभिहित किया गया है।"[८] ये गीत लोकगीतों से कई दृष्टियों से अलग होते हैं। लोकगीतों में कथानक प्रायः छोटे होते हैं। लोकगाथा में प्रबंध–काव्य की भाँति चरित्र–चित्रण की प्रधानता भी होती है। इसमें किसी भी लोक–प्रसिद्ध व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन की कथा का वर्णन रहता है तथा कथावस्तु इन्हीं के द्वारा आगे बढ़ती है।

हरिराम जस्टा के शब्दों में "लोकगाथा लोक–साहित्य की वह विधा है जिसमें लोक–मानसीय प्रवृत्तियाँ हों और जनरुचि का विशेष ध्यान रखा गया हो और साथ ही उसमें गेयता हो।"[९]

श्रीराम शर्मा के अनुसार "लोकगाथा वस्तु–व्यंजक होती है, आत्मव्यंजक नहीं। यह लोक–कंठ पर अवस्थित और उत्पन्न होती है। इसमें यथार्थ–चित्रण का प्राधान्य, नैसर्गिकता, भावात्मकता और गेयता होती है।"[30]

बैरिस्टर यादव ने लोकगाथा को परिभाषित करते हुए कहा है कि "लम्बे कथानक वाली पद्यबद्ध रचना लोकगाथा कहलाती है। प्रत्येक लोकगाथा अपने में एक इतिहास समेटे रहती है। लोकगाथा के पात्र प्रायः जनसामान्य के ही बीच के वीर पुरुष, सती–नारी व आदर्श प्रेमी–युगल आदि हुआ करते हैं। अपने सद्गुणों के

उत्कर्ष से आदर्श स्थिति तक पहुँच जाने से इन पात्रों की स्मृति लोक–मस्तिष्क पर सदा–सदा के लिए अंकित हो जाती है।"[31]

डॉ. सत्या गुप्त के अनुसार– "लोकगाथा लम्बा कथात्मक गीत होता है। यह अंग्रेजी के बैलेड शब्द का समानार्थी है। इसमें किसी एक व्यक्ति के जीवन का सांगोपांग चित्रण होता है तथा कथानक प्रधान होता है। यह आकार में साधारण मुक्तक गीतों से बड़ा होता है। कथात्मक होने के कारण यह अधिक रोचक और सजीव होता है। इसको गाने की विशेष परम्परा होती है तथा इसका गायन सावन, होली, विवाह तथा अन्य उत्सवों के अवसरों पर ही होता है। इसके कथा–तत्वों में साधारण कृत्यों तथा व्यक्तियों का वर्णन होता है। ये लोकगाथाएँ इतनी विशुद्ध तथा विविधता लिए हुए हैं कि इनमें लोकज्ञान का अनन्त कोश भर गया है। इनमें प्राचीन रीतियों के अनुष्ठानों का भी वर्णन मिलता है।"[१०]

विद्वानों ने लोकगाथा की परिभाषा अपने–अपने ढंग से करने का प्रयास किया है। इन परिभाषाओं के विवेचन और विश्लेषण के पश्चात् हम कह सकते हैं कि 'लोकगाथा' लोक साहित्य की वह विधा है जो कथात्मक तथा गेयात्मक रचना होने के कारण मौखिक परम्परा से जनमानस में मुख्य रूप से एक विशेष अवसर पर भी गायी तथा सुनाई जाती है। जन–जीवन की घटनाओं का यथार्थ चित्रण तथा किसी महापुरुष या नायक के जीवन–आदर्शों की व्याख्या पाढ़ी–दर–पीढ़ी लोकगाथाओं के रूप में एक परम्परा बन कर समाज में हमेशा के लिए जीवित रहती है। लोकगाथा के कथानक में जिन–जिन विषयों की अभिव्यक्ति होती है, उनमें समाज, इतिहास और पौराणिक घटनाओं का उल्लेख प्रमुख रूप से रहता है तथा इनमें जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति देखने को मिलती है।

लोकगाथाओं का उद्‌भव कैसे और कब हुआ यह बहुत ही कठिन विषय हैं, क्योंकि लोकसाहित्य की परम्परा बहुत प्राचीन होने के कारण तथा उस समय लेखन का अभाव होने के कारण इसके इतिहास को जानना सरल नहीं है। मौखिक परम्परा द्वारा ही इसके अतीत को जाना जा सकता है। यह अनुमान लगाया जा सकता हैं कि मानव सभ्यता के विकास के साथ ही नृत्यों, गीतों एवं गाथाओं का विकास हुआ होगा। लोकगाथाएँ प्रारम्भ से ही समूचे समाज की सम्पति रही हैं, इस कारण इन्हें गाते हुए गायक अपनी ओर से इनमें कुछ–न–कुछ जोड़ते–घटाते गए। इस तरह एक स्थान से दूसरे स्थान तथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी और कण्ठानुकण्ठ यात्रा करते रहने के कारण उनका रूप नित्य परिवर्तनशील रहा है। लिखने–पढ़ने की प्रथा न होने से लोकगाथाएँ अलिखित रूप में ही बनी रहीं। इस कारण इनकी प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ नहीं मिलती हैं। लोकगाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विशेषज्ञों ने कहा है कि लोकगाथाएँ मौखिक परम्परा हैं। उसमें सम्पूर्ण समाज की अमूल्य निधि होती है और लोकगाथाओं में व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व का अभाव रहता है।

भारतीय विद्वानों इस संदर्भ में अपने कुछ विचार इस प्रकार से व्यक्त किये हैं, जैसे भारतीय विद्वान कृष्णदेव उपाध्याय के मतानुसार – "लोकगाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में इन विविध सिद्धांतो में कुछ–न–कुछ सत्य का अंश विद्यमान है। सभी कारण भूत हैं। इन सभी का सहयोग गाथाओं के निर्माण में रहा है। कुछ गीत या कथाएँ ऐसी हैं जो व्यक्ति विशेष की रचनाएँ हैं। इनमें लेखक का नाम कई प्रसंगों में बार–बार आता हैं।"[१२] सत्या गुप्त लिखती हैं– "लोकगाथा लोक का काव्य है और लोक के द्वारा ही उसका निर्माण और विकास होता रहा है। इसका प्रचार व प्रसार एक कंठ के द्वारा दूसरे कंठ तक होता गया। लिखित पाठ कम उपलब्ध होने

के कारण यह परिवर्तनशील भी रहा। जैसे–जैसे इसमें लोक तत्वों का समय–समय पर समावेश होता गया उसी प्रकार लोकरुचि और अवसरों के अनुसार रचनाएँ भी होती गईं। लेकिन उनमें आज भी सहजता तथा स्वाभाविकता उसी प्रकार से वर्तमान है..."।[१३]

लोकगाथाओं का वर्गीकरण :–

मनोरंजक, प्रेरक, उपदेशपरक लोकविधा 'लोकगाथा' का वर्गीकरण विद्वानों ने अलग–अलग दृष्टियों से किया हैं। डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय जी आकार तथा विषय की दृष्टि से इसे वर्गीकृत करते हैं। वे आकार की दृष्टि से लोकगाथाओं को लघु और वृहत तथा विषय की दृष्टि से प्रेम–कथात्मक, वीर–कथात्मक और रोमांच–कथात्मक प्रभेदों में बाँटते हैं।[१४] लघुगाथाएँ अपने नामानुसार आकार में छोटी होती हैं और वृहत गाथाएँ प्रबन्धात्मक काव्य के समान आकार में दीर्घ होती हैं। प्रेम मानव जीवन का आधार हैं। विषयानुसार वर्गीकृत प्रेम–कथात्मक गाथाओं का वर्ण्यदृविषय पति–पत्नी एवं प्रेमी–प्रेमिका विषयक प्रणय–आख्यान हैं। ढोला–मारू, हीर–राँझा जैसी गाथाएँ प्रणयात्मक गाथाओं के अंतर्गत आती हैं। डॉ. सत्या गुप्त[१५] ने भी लोकगाथाओं को मात्र तीन वर्गों में ही समाहित कर दिया है। उनके अनुसार ये तीन भेद निम्नलिखित हैं :–

1. पौराणिक गाथाएँ
2. वीरगाथाएं
3. प्रेमगाथाएं

डॉ. पाण्डेय के अनुसार पौराणिक गाथाओं की कथाएँ रामायण, महाभारत, पुराणों आदि प्राचीन ग्रंथों में निहित हैं। 'रोमांच गाथाओं' के अन्तर्गत जादू–टोना, मन्त्र–तंत्र तथा परियों से सम्बन्धित गाथाएँ आती हैं। इन गाथाओं की सम्पूर्ण कथा यद्यपि लौकिक होती है तथापि उनमें घटित समस्त घटनाएँ अलौकिक जान पड़ती हैं, जैसे– 'सोरठी' की गाथा। 'प्रेम–प्रधान गाथाओं' में अधिकांशतः प्रेम की महत्ता है तथा प्रेम के सात्विक रूप का प्रस्तुतिकरण है। जैसे– राजा भरथरी की गाथा, पंजाब के हीर–राँझा की गाथा।[२५] डॉ. जगदम्बा प्रसाद पाण्डेय ने डॉ. श्याममनोहर पाण्डेय के 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान' के आधार पर प्रेम–गाथाओं को निम्न चार कोटियों में बाँटा है– 1. दाम्पत्यपरक 2. कामपरक, 3. सत्यपरक, 4. अध्यात्मकपरक।

लोकगाथा की विशेषताएँ :–

लोकगाथाएँ लोकचेतना का गेय शैली में सजीव प्रतिबिम्बित करती हैं। किसी भी देश की सांस्कृतिक अस्मिता को बनाए रखने तथा सामाजिक आदर्शों–परम्पराओं को बहाये रखने के लिए लोकगाथाएँ अमूल्य धरोहर हैं। इनमें मानवीय मूल्यों को उत्तरोत्तर परिष्कृत करने वाली अनेक सरल सारगर्भित कथाएँ समायी हैं। ये गाथाएँ जीवनादर्शों एवं मूल्यों को परिष्कृत करती हैं, ईश्वर के प्रति आस्था और विश्वास उत्पन्न करती हैं तथा पुरातन परम्पराओं से हमारा परिचय करती हैं। ये गाथाएँ वीरता, उदारता जैसे गुणों तथा जीवन के प्रति आस्था जगाकर हमारे संस्कार को प्रबल करती हैं, सत्–असत् को जानने–समझने तथा तदनुकूल विवेक निर्मित करने की दृष्टि देती हैं। भारतीय संस्कृति का निर्माण करने वाले वेद, पुराण जैसे ग्रन्थों से सन्दर्भित हमारी लोकगाथाएँ मात्र कथात्मक गीत नहीं हैं जो सिर्फ मनोरंजन करने या मन बहलाने का साधन भर हों, ये हमारे जीवन को छूती हैं, मर्म–भेद करती हैं, हमारे जीवन को प्रभावित करती हैं, हमें जीवन–दर्शन का ज्ञान कराती हैं और हमारे भीतर मानवीय मूल्यों और श्रेष्ठ संस्कारों को उत्पन्न करती हैं। ये कोरी सीख या नीरस उपदेश भर नहीं देतीं, अपितु

हमारे मस्तिष्क में सुविचार उत्पन्न कर हमें सत्कार्य करने तथा सुमार्ग पर चलने को प्रेरित करती हैं। इनकी रचना ही बहुजन हिताय तथा सर्वजन सुखाय के उद्देश्य को लेकर हुई है। लोकगाथाओं की मूलभूत विशेषताओं के सम्बंध में प्रायः भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों का एक मत है। कृष्णदेव उपाध्याय ने लिखा हैं, "लोकगाथाओं की अनेक विशेषताएँ हैं जो उन्हें अलंकृत कविता से स्पष्ट पृथक करती हैं। इन विशेषताओं पर ध्यान देने से यह स्पष्ट ही पता चल जायेगा कि अमुक कविता गाथा है अथवा अलंकृत–काव्य"। उन्होंने गाथाओं की विशेषताओं को प्रधानतः दस भागों में विभक्त किया हैं, जो निम्नांकित हैं–

1. रचयिता का अज्ञात होना।
2. प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव।
3. संगीत और नृत्य का अभिन्न साहचर्य।
4. स्थानीयता का प्रचुर पुट।
5. मौखिक हैं, लिपिबद्ध नहीं।
6. उपदेशात्मक प्रवृति का अभाव।
7. अलंकृत शैली का अभाव, अतः स्वाभाविक प्रवाह।
8. रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव।
9. टेक पदों की पुनरावृत्ति।
10. लम्बा कथानक।"[38]

इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार 'बैलेड' की मुख्य विशेषताएँ हैं– उसका संक्षिप्त होना, कथानक का गेयात्मक होना, व्यक्तित्वहीन और उसको गेयात्मक बनाना।''[१६]

यद्यपि लोकगाथाओं की अनेक विशेषताएँ हैं, परन्तु मैन एडवर्ड ने लोकगाथा की विशेषताओं को तीन शीर्षकों में विभक्त करके विषय को संक्षिप्त करने का प्रयास किया हैं :–

1. लोकगाथा एक कथा होती है।
2. यह कथा गीत के रूप में सामान्य संगीत से युक्त होती है।
3. इसकी कथावस्तु लोक–संस्कृति से संबंधित होती है।[१७]

निष्कर्ष के तौर पर यह समझ सकते हैं कि लोकगाथाओं में अनेक विशेषताएँ मिलती हैं। इसमें प्रमुख हैं रचनाकार का अज्ञात होना, प्रमाणित मूल पाठ का अभाव, लंबा कथानक, नृत्य–संगीत सम्मिश्रित मौखिक प्रस्तुति, लोकभाषा का प्रयोग, अनलंकृत शैली तथा संस्कृति–सापेक्षता। लोकगाथाओं में स्थानीयता का रंग अत्यन्त गहरा होता है, अतः इनमें स्थानीय प्रथाओं एवं रीति–रिवाजों की झाँकी सहज ही प्राप्त की जा सकती है। इन लोकगाथाओं की कथावस्तु दीर्घ होती है। कई लोकगाथाओं का आख्यान तो इतना लम्बा होता है कि वे इस दृष्टि से वे महाकाव्य से स्पर्धा करती हैं, जैसे आल्हा, ढोला–मारू आदि की गाथाएँ। साथ ही लोकगाथाओं का कथानक लोकप्रिय होता है और लोकगाथाओं के चरितनायक लोकादर्श का प्रतिबिम्बन करते हैं।

सन्दर्भ :–

१. ऋग्वेद, 832 : 1 (गोरखपुर : गीता प्रेस).

२. खड़ी बोली का लोकसाहित्य, डॉ. सत्या गुप्त, पृ.–238 हिन्दुस्तानी अकादमी।
३. लोक गीत संकलन, भोमिका, पृ.–7.
४. इनसाइकलोपीडिया ब्रिटानिका (लन्दन : विलियन बेटन पब्लिशर, 1965) पृ.
६. कादर कामिल बल्के, अंग्रेजी–हिन्दी कोश (दिल्ली : एस. चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड, 2004) पृ. 241.
७. भोलानाथ तिवारी, व्यवहारिक हिन्दी शब्दकोश, नैशनल पब्लिकेशन हाउस, दिल्ली, पृ. 2661.
८. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास, षोडश भाग (काशी : नागरी प्रचारणी सभा सं. 2026), पृ. 76.
९. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास– षोडश भाग, काशी : नागरी प्रचारणी सभा सं. 2057, पृ. 5.
१०. लोकजीवन और गीत, मौलूराम, सम्पादक– सोमसी, पृ.–571.
११. लोक साहित्य सिद्धान्त और प्रयोग, पृ. 144.
१२. हिन्दी लोक साहित्य में हास्य–व्यंग्य, पृ. 92.
१३. खड़ी बोली का लोक–साहित्य, डॉ. सत्या गुप्त, पृ.–238 हिन्दुस्तानी अकादमी। पृ. 237.
१४. लोकसाहित्य की भूमिका, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय.. लोक भारती प्रकाशन, साहित्या भवन
१६ खड़ी बोली का लोकसाहित्य, पृ. 241.
१७. लोकसाहित्य की भूमिका, डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय।
१८. भोजपुरी लोकसाहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सन् 2003, पृ. 366.
१९. Encyclo Pedia Britanica (London : Welliam Benton Publishen 1965) P. 993
२०. मैक एडवर्ड लोच, द बैलेड बुक (न्यूयार्क : ए. एस. वर्न्स एण्ड कम्पनी 1955) पृ.– 2.

Dr. Nguri Shanti,
Assistant Professor Department of Hindi, Dera Natung Government College, Itanagar Arunachal Pradesh India.
District Papum Pare P/O P/S Itanagar. Pin code 791113
Phone number 9774549899

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 83–89

भाषा में व्याकरणिक शिक्षण का महत्व

सुरेखा लकड़ा
शोधार्थी, कुँड़ख भाषा विभाग, रांची विश्वविद्यालय, रांची।

सारांश :

व्याकरण पढ़ाना किसी लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन नहीं है, बल्कि यह पढ़ने और लिखने से गहराई से जुड़ा हुआ है। व्याकरण, लेखन निर्देश और छात्र उपलब्धि के बीच एक मजबूत संबंध है। व्याकरण को स्पष्ट रूप से पढ़ने तथा लिखने के साथ एकीकृत करके पढ़ाने से छात्रों को लेखन रणनीतियों के अपने भंडार का विस्तार करने, लिखित और बोली जाने वाली भाषा पर नियंत्रण पाने, अपनी लेखन शैली विकसित करने, रचनात्मक रूप से सोचने, समझ में सुधार करने और अंततः स्कूल और मूल्यांकन में सफल होने में मदद मिलेगी। व्याकरण में भाषा की रचना, शब्दों की व्युत्पत्ति और स्पष्टतापूर्वक विचार प्रकट करने के लिए, उनका शुद्ध प्रयोग बताया जाता है, जिनको जानकर हम भाषा के नियम जान सकते हैं और उन भूलों का कारण समझ सकते हैं, जो कभी-कभी नियमों का ज्ञान न होने के कारण अथवा असावधानी से, बोलने या लिखने में हो जाती है। किसी भाषा का पूर्ण ज्ञान होने के लिए उनका व्याकरण जानना भी आवश्यक है।

प्रमुख शब्द :- शिक्षण, शिक्षार्थियों, व्याकरण, सहयोग, आगमन, निगमन।

प्रस्तावना :-

भाषा शिक्षण एक ऐसी विशाल क्षेत्र है, जो किसी भाषा को प्रभावी ढंग से सीखने एवं सिखाने से संबंधित है, जिसमें व्याकरण भी एक महत्वपूर्ण घटक है। व्याकरण के बिना, भाषा शिक्षण अधूरा रहता है। व्याकरण भाषा के शुद्ध रूप, अर्थ और प्रयोग के लिए आवश्यक है। इस संसार में कोई भी व्यक्ति चाहे वह शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, भाषा के नियमों और संरचनाओं को समझने में मदद करता है, जिससे वे शुद्ध-शुद्ध भाषा बोल और लिख सकते हैं, अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकते हैं और भाषा के विभिन्न पहलुओं को समझ सकते हैं।

व्याकरण : शिक्षण के संदर्भ में व्याकरण के व्यावहारिक पक्ष पर बल देना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि व्याकरण के व्यावहारिक पक्ष का ज्ञान होना अति आवश्यक है। जैसे -

- भाषा के शुद्ध बोलने या लिखने को संभव बनाता है।
- भाषा की समरूपता तथा शुद्धता से परिचित करवाता है।
- भाषा के विभिन्न स्वरुपों को शुद्ध और स्पष्ट रूप देने का कार्य करता है।
- भाषा में वर्ण, शब्द तथा वाक्य विन्यास के सिद्धांतों का ज्ञान प्रदान करता है।
- पाठ में निहित व्याकरणिक नियमों का उल्लेख कर व्याकरण सीखने पर बल देता है।

इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि व्याकरण भाषिक नियमों की एक व्यवस्थित प्रणाली है, फिर भी व्याकरण शिक्षण में व्यवहारिक पक्ष महत्वपूर्ण है। प्राचीन समय में प्रत्येक शिक्षार्थियों को व्याकरण की शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य था, जो व्यक्ति व्याकरण में बहुत निपुण होता था, उसे पंडित माना जाता था तथा समाज में भी उसका सम्मान बहुत अधिक रहता था। पाणिनी, पतंजलि जैसे महान व्याकरण के पंडित हुए हैं, संस्कृत साहित्य में व्याकरण के कई ग्रंथ मिलते हैं। वास्तव में भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के लिए व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करना अत्यंत आवश्यक है।

बहुत सारे वैयाकरणिक है जो व्याकरण की परिभाषा अपने-अपने ढंग से परिभाषित किए हैं जो निम्न प्रकार से है -

महर्षि पाणिनी के मतानुसार - व्याकरण शब्दानुशासन है, इससे भाषा का रूप व्यवस्थित होता है।

महर्षि पतंजलि ने भी अपने महाभाष्य में इसे 'शब्दानुशासन' कहा है।

जैगर का मत है कि - प्रचलित भाषा संबंधी नियमों की व्याख्या ही व्याकरण है। मत जैगर ने विद्यालयों में व्याकरण की शिक्षा को ध्यान में रखते हुए व्यक्त किया था।

भावों की स्पष्टता पर निर्भर है तथा भाषा की शुद्धता व्याकरण पर। व्याकरण भाषा को संगठित करता है। व्याकरण की जानकारी के बिना भाषा शुद्ध नहीं हो सकती। इसी कारण व्याकरण का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है।

डॉ० स्वीट के अनुसार - व्याकरण भाषा का व्यावहारिक विश्लेषण या उसका शरीर विज्ञान है।

व्याकरण शब्द; वि+आ+कृ धातु+ल्युट् प्रत्यय के योग का योगफल है। जिसका अभिप्राय है, व्याक्रियन्ते अर्थात् जिसके द्वारा अर्थस्वरुप के माध्यम से शब्दों की व्याख्या होती है।

<u>शिक्षण का तात्पर्य</u> :-

सामान्य रूप से शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बालक को विभिन्न

विषयों का ज्ञान दिया जाता है, लेकिन शिक्षण की यह धारणा एकदम सत्य नहीं है।

सामान्य रूप से शिक्षण के अर्थ को दो (2) शीर्षकों में रखकर विभाजित किया जा सकता है -

क. संकुचित अर्थ में - इस संदर्भ में शिक्षण के लिए औपचारिक साधनों का प्रयोग होता है। इस प्रकार का शिक्षण पूर्व नियोजित होता है और एक निश्चित समय में निश्चित विधियों के द्वारा दिया जाता है। जैसे - विद्यालय में विभिन्न घंटों में विभिन्न विषयों का शिक्षण होता है।

ख. विस्तृत अर्थ में - इस संदर्भ में शिक्षण मनुष्य के जीवन में लगातार चलने वाली एक प्रक्रिया है। मनुष्य को अपने परिवार, विद्यालय, कार्यालय, समाज, वातावरण आदि से किसी न किसी रूप में शिक्षण प्राप्त होता रहता है। जैसे - माता बच्चे को चलने का शिक्षण देती है और शिक्षक छात्र को इतिहास का शिक्षण देता है, पर शिक्षण यहीं तक सीमित नहीं है।

<u>भाषा में व्याकरणिक शिक्षण को महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, जो कुछ प्रमुख बिंदु इस प्रकार से है</u> :-

- **शुद्ध भाषा का ज्ञान -** व्याकरण सभी व्यक्तियों के लिए भाषा के नियमों और संरचनाओं को समझने में सहायता करता है, जिससे वे शुद्ध-शुद्ध भाषा बोल और लिख सके।
- **भाषा की समझ -** व्याकरण सभी व्यक्तियों के लिए भाषा के विभिन्न पहलुओं को समझने में सहायता करता है, जैसे कि - शब्दार्थ, वाक्य रचना और व्याकरणिक नियम।
- **लिखने और बोलने के कौशल का विकास -** व्याकरण कोई भी भाषा के लिखने और बोलने के कौशल को बेहतर बनाने में सहायता करता है।
- **साहित्यिक रचनाओं की समझ -** व्याकरण साहित्य की रचनाओं को बेहतर ढंग से समझने में सहायता करता है।

इस प्रकार से यह भी कहा जा सकता है कि व्याकरण कोई तयशुदा डिब्बा नहीं है, जिनमें कुछ उदाहरणों को हम अंटाने की कोशिश करे। दरअसल कोई भी भाषा कुछ नियमों के आधार पर चलती है। उन नियमों के आधार को स्पष्ट कर देना ही व्याकरण समझना या जानना है। आमतौर पर विद्यालयों में व्याकरण की परिभाषा तथा भेदों व उपभेदों को याद कराया जाता है। इसमें तो परीक्षाओं में अंक प्राप्ति तो हो जाती है, लेकिन वे इसका बोलने, पढ़ने और लिखने में उपयोग नहीं कर पाते।

इस संसार की कोई भी भाषा अंततः कुछ खास नियमों के अनुसार बनी व्यवस्था है। इस व्यवस्था को ही समेकित रूप में व्याकरण कहा जाता है। व्याकरण अव्यक्त या अमूर्त होता है। यह भाषा बरतने वाले की सामूहिक चेतना को हिस्सा होता है। इस अमूर्त रूप को

भाषा वैज्ञानिक या वैयाकरणशास्त्र के रूप में मूर्त करते हैं। इस विश्लेषित रूप को ही हम व्याकरण कहते हैं।

<u>उद्देश्य</u> :-

शिक्षा जो कि मानव जीवन का आधार स्तम्भ है। शिक्षा के बिना मानव जीवन के विकास की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। यह मानव जीवन की उत्कृष्टता एवं उच्चता का प्रतीक है। प्राचीनकाल से ही शिक्षा को आत्मज्ञान एवं आत्म प्रकाश का साधन माना गया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि शिक्षा मनुष्य के जीवन को सार्थक बनाती है। वर्तमान में शिक्षा जहाँ एक ओर बालकों के सर्वांगीण विकास कर उन्हें विद्वान, चरित्रवान और बुद्धिमान बनाती है, वहीं दूसरी ओर यह समाज के विकास के लिए भी एक आवश्यक एवं शक्तिशाली साधन है। यह आगे आने वाली पीढ़ी को उच्च आदर्शों, आकांक्षाओं, विश्वासों जैसे सांस्कृतिक सम्पत्ति को हस्तान्तरित करता है।

<u>व्याकरण शिक्षण के कुछ प्रमुख उद्देश्य</u> :-

1. व्याकरण के द्वारा शिक्षार्थियों में रचना एवं सृजनात्मक प्रवृत्ति का विकास करना।
2. शिक्षार्थियों में ऐसी क्षमता पैदा करना, जिससे कि वे कम से कम शब्दों में शुद्धतापूर्वक अपने भावों को व्यक्त कर सके। साथ ही साथ उनमें ऐसी योग्यता पैदा करना, जिससे वे भाषा की अशुद्धता को भी समझ सके एवं उनमें भाषा को परखने की शक्ति का विकास हो सके।
3. शिक्षार्थियों को शुद्ध बोलने, लिखने एवं पढ़ने की प्रेरणा देना।
4. शिक्षार्थियों को शुद्ध भाषा का प्रयोग सिखाना।
5. व्याकरण के द्वारा विद्यार्थियों में रचना एवं सृजनात्मक प्रवृत्ति का विकास करना।
6. व्याकरण की शिक्षा का उद्देश्य बालक को भाषा को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने में प्रवीण बनाना होना चाहिए।
7. शिक्षार्थियों को भाषा से संबंधित नियमों का ज्ञान प्रदान करना।
8. व्याकरण के नियमों का ज्ञान, छात्रों में मौलिक वाक्य बनाने की योग्यता पैदा करता है। मितव्ययिता के आधार के लिए व्याकरण का ज्ञान जरूरी है। यह छात्रों में शुद्ध रूप से बोलने तथा लिखने की क्षमता पैदा करता है।
9. भाषा का शुद्ध रूप पहुँचाने में छात्रों को सक्षम तथा समर्थ बनाना ही व्याकरण का उद्देश्य है। इस तरह व्याकरण से शुद्ध बोलना और लिखना आ जाता है।
10. व्याकरण की शिक्षा, भाषा की शिक्षा का आवश्यक अंग है। यह भाषा रूपी रथ का सारथी है। यह भाषा का स्वरुप बनाता है एवं उस पर नियंत्रण रखता है। यह भाषा का मित्र भी है। यह उसे सच्चे रास्ते पर चलने की प्रेरणा प्रदान करता है।

<u>व्याकरण शिक्षण का महत्व</u> :-

व्याकरण शिक्षा के महत्व तथा उपयोगिता के विषय में विद्वानों में परस्पर मतभेद है। परन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार भाषा शिक्षण में व्याकरण का बहुत महत्व है। बिना व्याकरण के जाने भाषा पर कोई व्यक्ति पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता। कोई भाषा के छोटी से छोटी रहस्य को समझने हेतु यह अति आवश्यक है कि व्याकरण के नियमों को भी समझा जाय। भाषा में बोलने तथा लिखने की शुद्धता बगैर व्याकरण ज्ञान के नहीं आ सकती।

करूणापति त्रिपाठी के मतानुसार - "भाषा शिक्षण का कार्य व्याकरण की शिक्षा के बगैर नहीं हो सकता। व्याकरण के माध्यम से ही भाषा रूपी माध्यमिक नौका का संचालन हो सकता है। व्याकरण ज्ञान की अवहेलना से भाषा में उच्छृंखलता आ जाती है तथा वह संस्कृति का विनाश कर देती है। भाषा प्रयोग का उचित रहस्य समझने हेतु व्याकरण का ज्ञान अत्यंत जरूरी है।"

एन० पोकॉक के मतानुसार - "व्याकरण की शिक्षा का उद्देश्य बालक की भाषा को वैज्ञानिक रूप से देखने में प्रवीण बनना होना चाहिए।"

<u>व्याकरण शिक्षण की उपयोगिता</u> :-

- व्याकरण का अनुशासन जीवन को प्रभावित करता है।
- व्याकरण के द्वारा विद्यार्थियों में आलोचना प्रवृत्ति विकसित होती है।
- व्याकरण के द्वारा भाषा में शुद्धता आती है।
- व्याकरण द्वारा शब्द संरचना एवं वाक्य विन्यास की जानकारी प्राप्त होती है।
- व्याकरण भाषा के स्वरूप की रक्षा करके उचित प्रयोग की प्रक्रिया की जानकारी देने में समर्थ है।

<u>व्याकरण शिक्षण को रोचक एवं सरल बनाने के उपाय</u> :-

- व्याकरण शिक्षण का प्रारंभ व्यावहारिक व्याकरण से किया जाना चाहिए तथा व्यावहारिक व्याकरण की शिक्षा भाषा-संसर्ग विधि द्वारा ही प्रदान किया जाना चाहिए।
- व्याकरण का शिक्षण यथासम्भव आगमन विधि से आरंभ करके निगमन विधि से समाप्त किया जाना चाहिए।
- विद्यार्थियों को व्याकरण के नियम रटाना नहीं चाहिए, बल्कि समझाना चाहिए।
- व्याकरण का पाठ्यक्रम बहुत ज्यादा जटिल तथा विस्तृत नहीं होना चाहिए। पाठ्यक्रम छात्रों के मानसिक स्तर के अनुकूल बनाया जाना चाहिए।
- व्याकरण शिक्षण क्रमबद्ध रूप में किया जाना चाहिए।
- सुविधानुसार श्रवण तथा दृष्य सामग्री का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- व्याकरण का आरंभ तब तक नहीं किया जाना चाहिए, जब तक कि छात्र भाषा का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त न कर लें। व्याकरण का आरंभ निम्न स्तर कक्षा से किया जाना चाहिए।

<u>व्याकरण शिक्षण विधियाँ अथवा प्रणालियाँ</u> :-

व्याकरण शिक्षण के लिए निम्न विधियों या प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है -

1. **निगमन विधि** - निगमन विधि को नियम उदाहरण विधि भी कहते हैं। इसमें छात्रों को पहले नियम समझा दिए जाते हैं। इसके बाद उदाहरण से उस विषय का प्रयोग करके दिखाया जाता है। इसमें नियम को पूर्ण रूप से प्रस्तुत करके उदाहरण को अपूर्ण रूप में रखकर छात्रों से पूर्ति कराते हैं या फिर उदाहरण से स्पष्ट करते हैं, क्योंकि नियम और सिद्धांत अमूर्त होते हैं। छात्र स्थूल को अधिक समझते हैं एवं रूचि लेते हैं। इसलिए प्राथमिक कक्षाओं में इसका प्रयोग व्यवहारिक नहीं है।
2. **आगमन विधि** - आगमन एवं निगमन शिक्षा की विधियाँ अधिक प्राचीन है। आज भी इनका प्रयोग शिक्षा में किया जाता है। आगमन विधि मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित है। यह एक मनोवैज्ञानिक एवं शिक्षा की स्वाभाविक विधि है, क्योंकि छात्रों का ज्ञान वस्तुओं के निरीक्षण पर निर्भर होता है। जिन वस्तुओं को वह देखता है, उनके संबंध में वह प्रश्न करता है। अतः मातृभाषा के शिक्षण में इसका विशेष महत्व है और इस विधि में सीखने की विशेष महत्व दिया जाता है। इस विधि से छात्रों की सृजनात्मक की योग्यता का विकास होता है।
3. **भाषा-संसर्ग विधि** - भाषा संसर्ग विधि के समर्थकों के अनुसार व्याकरण की शिक्षा अलग से देने का कोई औचित्य नहीं है। छात्रों को विभिन्न लेखकों की रचनाएँ पढ़ने को दी जानी चाहिए। जिससे उनका भाषा पर अधिकार हो जाए। व्याकरण शिक्षण का भी यही उद्देश्य होता है कि छात्र भाषा पर अधिकार प्राप्त कर ले। इसलिए अलग से व्याकरण शिक्षण की कोई आवश्यकता नहीं होती है। इस प्रकार मातृभाषा शिक्षण के लिए यह विधि सबसे अधिक है।
4. **पाठ्य पुस्तक विधि** - इस प्रणाली का अर्थ है कि व्याकरण की पुस्तकों के द्वारा ही छात्रों को व्याकरण का ज्ञान दिया जाए। इन पुस्तकों के प्रारंभ में किसी नियम की परिभाषा दी हुई होती है। उसके बाद उस नियम को दो उदाहरण के द्वारा समझाया जाता है तथा अंत में पुनरावृत्ति के लिए या घर से हल करके लाने के लिए कुछ प्रश्न दिए होते हैं।

   पाठ्यपुस्तक प्रणाली प्राथमिक या माध्यमिक कक्षाओं के लिए प्रायः उचित नहीं है, क्योंकि यदि छात्रों को पहले से ही नियम ज्ञात हो जाता है तो वे फिर उदाहरण पढ़ने एवं व्याकरण सीखने में अधिक रूचि नहीं लेते हैं। परन्तु उच्च कक्षाओं में व्याकरण सीखने के लिए व्याकरण की पाठ्य पुस्तकों का होना अत्यंत जरूरी है, क्योंकि व्याकरण के बहुत से नियम केवल प्रयोगों या सहयोग विधि से नहीं सिखाई जा सकती है। इसलिए उच्च कक्षाओं में पाठ्य पुस्तकों का प्रयोग बहुत आवश्यक है।

5. **सहयोग विधि -** यह विधि भाषा-संसर्ग विधि से मिलती-जुलती है। इस प्रणाली के मानने वाले भी व्याकरण को स्वतंत्र रूप से पढ़ने के पक्ष में नहीं है, क्योंकि उनके अनुसार छात्रों की रचना की शिक्षा प्रदान करते समय ही व्याकरण के नियम बता देना चाहिए। जिससे कि वे केवल व्यवहारिक व्याकरण की शिक्षा प्रदान कर सकते हैं, परन्तु नियमित व्याकरण की शिक्षा प्रदान नहीं कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त सहयोग विधि से पढ़ने में कोई तार्किक क्रम भी नहीं रहेगा। इसके साथ ही यदि हम रचना या गद्य के पाठों से व्याकरण को समन्वित करके पढ़ाये तो मूल पाठ की उपेक्षा हो सकती है।

6. **सूत्र विधि -** सूत्र विधि का प्रचलन विशेष रूप से संस्कृत भाषा में होता था। इस प्रणाली में व्याकरण के विभिन्न नियम सूत्रों में परिवर्तित कर लिये जाते हैं। छात्रों को फिर से नियम रटा दिये जाते हैं। यह प्रणाली बहुत दोषपूर्ण है, क्योंकि बालक बिना सोचे-समझे सूत्रों को रट लेते हैं। आजकल इस प्रणाली की उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है।

निष्कर्ष :-

भाषा शिक्षण क्षेत्र में व्याकरण शिक्षण का महत्व महत्वपूर्ण है। व्याकरण कोई भी भाषा का आधार होता है। इसे स्वाभाविक रूप से नहीं सीखा जा सकता है। इसके सीखने के लिए निर्देश की आवश्यकता होती है। व्याकरण सीखने के कुछ शिक्षार्थियों के पास दूसरों की तुलना में अधिक विश्लेषणात्मक सीखने की शैली हो सकती है, लेकिन अगर कोई भी भाषा का सही और धाराप्रवाह उपयोग करना चाहता है तो उसके लिए व्याकरण के नियमों का निर्देश प्राप्त करना आवश्यक है। व्याकरण किसी भी भाषा से अलग नहीं किया जा सकता है, व्याकरण ही कोई भी भाषा का नींव है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. हिन्दी व्याकरण - कामता प्रसाद गुरू।
2. हिन्दी शिक्षण - लक्ष्मी भार्गव।
3. कुँडु ख व्याकरण एवं निबंध - चौठी उराँव और महाबीर उराँव।
4. आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना - डॉ० वासुदेवनन्दन प्रसाद।
5. भाषा और समाज - रामविलास शर्मा।
6. वृहत् व्याकरण भास्कर - डॉ० वचनदेव कुमार।
7. भाषा विज्ञान - डॉ० भोलानाथ तिवारी।
8. भाषा विज्ञान तथा हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन - डॉ० सीताराम झा 'श्याम'।

मो०नं० : 8521427069

e-Mail ID : surekhalakra12345@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 90-97

शूद्रों की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धांत और डॉ. अंबेडकर के विचार

सुंदर लाल
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान।

प्रस्तावना- भारतीय इतिहास में जिन जातियों को वर्तमान में अनुसूचित जातियों के नाम से जाना जाता है, उन्हें ऐतिहासिककाल से वर्तमान तक विभिन्न नामों से जाना जाता रहा है, जैसे– दास, दस्यु, अनार्य, शूद्र, अछूत, अस्पृश्य एवं तिरस्कृत वर्ग, अन्त्यज, पंचम वर्ग, हरिजन, अनुसूचित जातियॉ (शिडयुल्ड कास्ट) और दलित। इतिहास में शायद ही किसी एक वर्ग, जाति ओर समुदाय के नाम में इतने परिवर्तन हुए हो, जितने भारत में दलितों के नाम के हुए है। इसी लिए इस अध्याय में यह जानने की कोशिश की गई है कि क्या भारत में दास से दलितों तक एक ही वर्ग के अलग–अलग नाम रहे है? दूसरा, क्या इन जातियों को वैदिक काल से ही वर्ग या जाति के आधार पर सबसे निम्न स्तर पर रखकर इनका शोषण किया गया है? और वे क्या कारण थे और कौनसा काल था जब इन्हें अछूत घोषित किया गया? यहाँ इन दलित जातियों के बारे में जानने का प्रयास किया गया है जो हिन्दू समाज में अपहनी परम्परागत स्थिति के कारण वेद–अध्ययन और मंदिर प्रवेश से वंचित रखी गयी तथा राजस्थान सरकार के द्वारा घोषित अनूसूचित जाति की सूची में आती है। इसलिए दलित शब्द की परिभाषा एवं उत्पत्तित सौ पूर्व शब्द के प्राचीन रूप को जानना आवश्यक है।

मुख्य शब्द-भारतीय सामाजिक व्यवस्था,दासवर्ग,आर्य-अनार्य,शूद्रवर्ग की उत्पत्ति।

दासों की उत्पत्ति-

इतिहास की भिन्न अवस्थाओं में आर्यो का अपना एक सामाजिक संगठन था।भारत आने पर वैदिक आर्यो और उनके पड़ौसी अनार्यो में परस्पर संघर्ष होते रहते थे। इन संघर्षो में विजेता आर्य हारे हुए अनार्यो को दास बना लिया करते थे। आर्य जातियाँ

अपनी सभ्यता और संस्कृति पर भी गर्व करती थी आर्यो और उनके विजित शत्रुओं का रंग–रूप एवं संस्कृतियों में स्वीकृत अन्तर के कारण आर्यो ने इस सम्पूर्ण जाति को अपने से निम्नतर मानते हुए दासों के रूप में स्वीकार कर लिया। तब से दास शब्द गुलाम के अर्थ का पर्याय बन गया, जो समय के साथ–साथ इसी अर्थ को आज तक व्यक्त करता रहा है।इसी प्रकार ऋग्वेदिक काल के आरम्भ में दासियों का भी एक छोटा–सा समुदाय विद्यमान था। इस संबध में यह माना जाता है कि युद्ध में अनार्य पुरूषों के मारे जाने पर उनकी विधवा पत्नियॉ दासता की स्थिति में पहुॅच जाती थी। आर्य उनसे घर का काम–काज करवाते थे।

अतः मरने वाले दासों की स्त्रियों को 'दासी' बना दिया जाता था। गुलाम के अर्थ में दास शब्द का प्रयोग अधिकांशतः ऋग्वेद के परवर्ती भाग के प्रथम मण्डल में दो जगह, दशम मंडल में एक जगह और अष्टम मंडल के अतिरिक्त सूत्र बालखिल्य में भी एक स्थान पर आया है। इससे यह प्रतीत होता है कि प्रारम्भिक ऋग्वैदिक काल में शायद ही पुरूष दास रहे हैं। क्योंकि सबसे पहले युद्ध में मृत आर्यों के शत्रु पुरूषों की विधवा पत्नियों को दास बनाया गया और उसके बाद में पुरूष दास बनें।

महाकाव्यों में भी कई ऐसी घटनाएँ है जहाँ दास और दासी शब्दों का उल्लेख मिलता है। शांतिपर्व के एक श्लोक में वर्णित है कि मनुष्य को अपना दास बना लेते है और बेड़ियों से बंधवानें तथा जान से मारने की धमकियाँ देकर उनसे कार्य करवाते है। इससे यह स्पष्ट होता है कि दास शब्द एवं दासों की उत्पत्ति आर्यों के आने पर ऋग्वेद के आरम्भ से ही हो चुकी थी। इसका सबसे महत्वपूर्ण स्रोत युद्ध था। यह भी स्पष्ट है कि ऋग्वेद का दास आर्यों के शत्रुओं के लिए प्रयुक्त हुआ है। परन्तु यह दास विदेशी था या भारतीय, यह ठीक से नहीं कहा जा सकता है, लेकिन यह कहा जा सकता है कि आर्यों के कबीलाई समाज में दास वर्ग की उत्पत्ति हो चुकी थी। आर्यों को अपनी भूमि के विस्तार के लिए अनार्यों से संघर्ष करना पड़ा। संघर्ष

में आर्यों की विजय हुई और उन्होंने अनार्यों को दास अथवा दस्यु की संज्ञा दी।[1] इस प्रकार साधारणतः दास और दस्युओं को एक ही माना जाता है, किन्तु दास और दस्यु दोनों पर्यायवाची शब्द नहीं है, क्योंकि जब आर्यों का आगमन भारत की तहफ हुआ तो उनका प्रमुख संघर्ष अनार्यों (दस्युओं) के साथ युद्ध के रूप में होता था। इस संघर्ष में आर्य, दस्युओं का

विनाश क्रूरता से करते थे, जबकि दासों के प्रति उनकी नीति नरम थी। वेदों में दासों की अपेक्षा दस्यु के विनाश और उन्हें गुलाम बनाने की चर्चा अधिक है। यद्यपि प्रारम्भ में आर्यों के शत्रुओं को दास अथवा दस्यु कहा जाता था।परन्तु दस्युओं की हत्या का उल्लेख कम से कम बारह जगहों पर हुआ है, जिनका वध इन्द्र द्वारा किया बताया जाता है। इसके विपरीत दास–हत्या के उदाहरण तो हैं परन्तु 'दास हत्या' शब्द का कहीं उल्लेख तक नहीं है।

इस तरह दस्युओं का सबसे अधिक रक्तपात एवं विनाश हुआ, परन्तु दासों के साथ ऐसा नहीं हुआ। इसलिए रिजले ने यह माना है कि द्रविड़ दस्यु भारत के मूल निवासी थे।दास और दस्यु शब्द की उत्पत्ति से भी स्पष्ट होता है कि दास सम्भवतः उन मिश्रित भारतीय आर्यों के अग्रिम दस्ते थे जो उसी समय भारत पहुँचे जब केसाइट 1750 ई.पू. बेबीलोनिया पहुंचे थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि आर्यों से पहले कछ दास भारत में आ गये थे और आर्यों के भारत पहुँचने का काल भी लगभग 1500 ई.पू. माना जाता है। परन्तु दस्युओं के बारे में ऐसा उल्लेख कहीं नहीं मिलता है। आर्य और दास दोनों विदेशी जाति के होने कारण आर्यों ने दासों के प्रति मेल–मिलाप की नीति अपनाई और दिवोदास, बलबुध जैसे दासों के सरदासों को अपने संगठन में आत्मसात् किया। ऋग्वेद में प्रयुक्त दास शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए सायण ने कहा है कि 'दास का अर्थ कर्म करने वाला अथवा स्वामी की सेवा करने वाला होता है। इससे यह लगता है कि दास आर्यों के विरोधी नहीं बल्कि सेवक थे। लेकिन दस्युओ का उल्लेख शत्रुओं के रूप में होता है। यह भी माना गया है कि दास आर्यों के तौर–तरीके भी पसंद करते थे। जबकि दस्युओं के तौर–तरीके और संस्कृति आर्यों से अलग थी। ऐसा भी उल्लेख आया है कि आर्यों। के बीच अन्तर्जातीय युद्ध होते थे, जिनमें दासों को सहायक सेना के रूप में दर्शाया गया है। आर्यों क अपने शत्रुओं (दस्युओं) के साथ सम्बन्धों के बारे में कहा गया है कि उनका दस्युओं के साथ एक स्थान पर जबकि दासों के साथ पांच स्थानों पर चर्चा का उल्लेख मिलता है।[2] आर्यों के दस्युओं की अपेक्षा दासों से मधुर संबंध थे। ऋग्वैदिक काल में दस्युओं का एक खास रंग कृष्ण (काला) आर्यों से उन्हें अलग करता था।[3] आर्य काले रंग वाले मनुष्यों की बस्तियों को जला देते थे और दस्यु बिना संघर्ष किए अपना सभी कुछ छोड़कर भाग जाते थे और जो पकड़े जाते उनकी हत्या कर दी जाती थी। एक जगह पर इन्द्र को 50 हजार काले वर्ण वालों की हत्या का श्रेय दिया गया है।

दास और दस्युओं में भिन्नताओं के बाद भी ऋग्वेद का सातवां मंडल दोनों में एक प्रकार की समानता की भी पुष्टि करता है। ऋग्वैदिक आर्यों के जीवन में यज्ञ एवं हवन को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता था। जबकि दास और दस्युओं को यज्ञ से भगाने का उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद में दास और दस्यु शब्द, संख्या के आधार पर भी प्रयुक्त हुआ है। ''दस्युओं की चर्चा चौरासी बार और दासों का उल्लेख इकसठ बार हुआ है।'' दय तरह यह प्रतीत होता है कि ऋग्वेद के आदिकाल हमें दासों से दस्युओं की संख्या अधिक थी। परन्तु जैसे–जैसे युद्ध में दस्युओं की हत्याएँ हुई और कुछ दस्युओं ने हारकर आर्यों की दासता स्वीकार की वैसे–वैसे दासों संख्या में वृद्धि होने लगी। जब बहुतायत में दास उपलब्ध हुए तभी '' लोहे से अधिक अन्न उपजने लगा।''इस प्रकार जहाँ ऋग्वेद के प्रारम्भिक काल में दस्युओं की संख्य अधिक थी, वहीं उतर वैदिक काल में दासों की संख्या में बढ़ोतरी हुई। इन दासों से जहाँ ऋग्वैदिक काल में घरेलु कार्य लिया जाता था वहीं उत्तर वैदिक युग के अन्तिम समय में दासों से कृषि कार्य भी लिया जाने लगा। दास और दस्यु के बारे में सबसे बड़ा अंतर यह माना जाता है कि, ''अंग्रेजी का स्लेव और हिन्दी का गुलाम के अर्थ में दास शब्द का प्रयोग भारत के आर्येतर जातियों में कभी भी नहीं हुआ, बल्कि यह शब्द (दास) आर्यों से संबंधित लोगों के मध्य प्रचलित था।''अर्थात् यह शब्द विदेशी है, स्वदेशी नहीं। इसलिए आर्य और दास बाहर से आई हुई जातियाँ है जबकि दस्यु भारत के मूलनिवासी थे। दास और दस्युओं की चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि दास आर्यों से पूर्व या उनके साथ आई हुई विदेशी जाति थी, जबकि दस्यु भारत के मूलनिवासी थे। जब आर्य भारत में आये तो उन्होंने दस्युओं की बस्तियों पर हमले करके उनकी हत्या की, मृत दस्यु पुरूषों की पत्नियों को दासी बनाया तथा जिन दस्युओं ने युद्ध में पराजित होकर दासता स्वीकार की उनको दास बनाकर उनसे घरेल और श्रमिकों का काम लिया गया। परन्तु संघर्ष जैसी यह स्थिति हमेशा नहीं रही। उत्तर वैदिक काल में दासों की संख्या में वृद्धि हुई और जिन दस्युओं ने आर्यों की गुलामी स्वीकार नहीं की वह जाति शायद जंगलों में रहकर जनजाती बनजी रही। इस आधार पर दास और दस्यु ऋग्वैदिक युग में दो वर्ग थे। परन्तु जब संघर्ष में शिथिलता आई तब समाज में मुख्यतः दो वर्ग आर्य और दास ही रह गये।

सामाजिक सम्बन्ध

ऋग्वेद के अनुसार ''दासों के साथ दाम्पत्य संबंध स्थापित करने तथा खान–पान पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। केवल दासी को विवाहिता पत्नी नहीं माना जाता था।'' सामाजिक दृष्टिकोण से ''दास अछूत नहीं थे, पर उन्हें तिरस्कृत भाव से देखा जाता था।'' परन्तु

रामायणकाल में दासों की स्थिति में सुधार आ गया था। जब ''दास उस व्यक्ति को कहते थे जो अपने भरण–पोषण के लिए दूसरों पर निर्भर रहता था।''जैन और बौद्धकालीन भारत में दासों को मानवीय दृष्टिकोण से देखा जाने लगा था। अब कोई भी सम्पूर्ण समुदाय दास नहीं माना जाता था। दासता रंग–भेद से नहीं बल्कि आर्थिक कारणों से ज्यादा प्रभावित थी। कौटिल्य के समय के भारत में ''दास मुक्ति के नियम तथा दासों को कानूनी रूप से स्वीकार करने की प्रथा का जन्म हो चुका था।'' अतः ''1000 से 600 ई.पू. तक दास प्रथा में स्थाई–अस्थाई दासों का प्रचलन था। अब दास शब्द ऐसे व्यक्ति का वाचक नहीं रहा जिस पर मालिक की पूर्ण सत्ता हो।''दास एसं दस्यु शब्दों का प्रयोग तब तक होता रहा जब तक वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति नहीं हुई थी। जब वर्ण व्यवस्था की उत्पत्ति हुई तो आर्यों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के काम का विभाजन किया और अंतिम वर्ण को शूद्र घोषित किया। यहाँ से चतुर्थ वर्ण की चर्चा अधिक रही। यद्यपि दास–दस्यु शब्द वर्तमान में भी प्रचलित है परन्तु उन्हें सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं है। लेकिन शूद्र का प्रचलन वर्तमान में अनुसूचित जातियों तथा दलितों के नाम से प्रचलित है। आर्यों ने दास और दस्युओं में से शूद्र किसको घोषित किया गया, इस संबंध में कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। यह ठीक है कि जो सबसे निम्न कार्य करता था, उस कार्य से घृणा करके उसे शूद्र कहा जाने लगा। परन्तु इस समय तक अस्पृश्य जैसा कोई वर्ग उत्पन्न नहीं हुआ था।

शूद्रों की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धांत-

भारत में शूद्रों की उत्पत्ति किस वर्ग और किस काल में हुई विषय में पाश्चात्य और भारतीय मनवैज्ञानिकों, पुरात्ववेत्ताओं, इतिहासकारों और समाजवैज्ञानिकों में मतान्तर पाया जाता है। वैदिक ग्रंथों, स्मृतियों और पुराणों की उत्पत्ति की विभिन्न व्याख्याएँ की गई है।

लेकिन पाश्चात्य और भारतीय विद्वान इस विषय पर एकमत अवश्य है कि वैदिक युग से भी पहले इस व्यवस्था का कोई न कोई रूप विद्यमान अवश्य था।शूद्र वर्ण की उत्पत्ति के कुछ निम्न सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं।

शूद्रों की उत्पत्ति का आंगिक सिद्धान्त– दलित वर्ग की उत्पत्ति हिन्दू वर्ण व्यवस्था का दूषित परिणाम है। वैदिक समाज में जातियों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। उस काल में वर्ण व्यवस्था थी। चार वर्ण–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे। अंगों के आधार पर शूद्र वर्ण की उत्पत्ति का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में आया है। इसमें ऋग्वैदिक ऋषि ने सम्पूर्ण समाज को एक विराट पुरूष के रूप में परिकल्पित किया है। इस विराट पुरूष से समस्त सृष्टि की रचना हुई है। इस रचना में विराट पुरूष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से

वैश्य और पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई है। अंगों से संबंधित यह विभाजन उस समय के सामाजिक स्तर को दर्शाता है। पुरूष सूक्त में समाज सोष्ठव के लिए चारों वर्णों को अपने–अपने कर्तव्य का पालन करना आवश्यक बताया गया है। समाज का यही आदर्श भारत के परवर्ती विचारकों के समक्ष भी रहा। परन्तु इस सम्बन्ध में अम्बेडकर की मान्यता यह रही कि ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के पारम्परिक संघर्ष में जो वर्ग आशक्त हो गया, वह शूद्रों में परिगणित होता चला गया। वे ऋग्वेद के पुरूष सूक्त को प्रमाणिक नहीं मानते वरन् उसे बाद में जोड़ा गया मानते है।

गुण, स्वभाव का सिद्धांत– गुणों के आधार पर शूद्रों की उत्पत्ति के बारे में कहा गया है कि समाज के अस्तित्व के लिए कुछ गुण होने अनिवार्य है और इन्हीं गुणों के आधार पर समाज के सदस्यों में काम का वितरण होना चाहिए। समाज में ये गुण–बृद्धि–ब्रह्मा में, रक्षा–शक्ति राजा में, भरण–पोषण की सामर्थ्य वैश्य में और श्रम–शक्ति शूद्र में होती हैं। इस प्रकार चारों वर्णों में अलग–अलग गुण प्रतिपादित किए गए, जिनमें शूद्र में श्रम–शक्ति वाला गुण माना गया।

रंग का सिद्धांत– महाभारत में भृगु ऋषि ने भारद्वाज को मनुष्यों के त्वचा के अलग–अलग रंग बताये है। भृगु ऋषि के अनुसार ब्रह्मा ने त्वचा के आधार पर ब्राह्मण की सबसे पहले रचना की। इसके बाद क्षत्रिय, वैश्य और अंत में शूद्र वर्ण की रचना की। ब्राह्मणों का रंग सफेद, क्षत्रियों का लाल, वैश्यों का पीला और शूद्रों का काला कहा गया।

व्यवसाय का सिद्धांत– व्यवसाय के आधार पर पहले तीन वर्णों की सेवा करने के लिए शूद्र वर्ण की उत्पत्ति मानी गई है। यजुर्वेद में भी कठोर काम करने वाले को शूद्र कहा गया है। इस प्रकार गुण, स्वभाव, अंग, रूप और समाज की आवश्यकता के आधार पर शूद्र वर्ण की उत्पत्ति का उल्लेख महाभारत के शांतिपर्व, मनुस्मृति, विष्णुपुराण में ऋग्वैदिक ऋषि की परिकल्पना के विराट पुरूष के चार अंगों में सबसे निम्न अंग, पैरों से शूद्र की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है।

परन्तु व्यवसाय के परिवर्तन पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं था। ऋग्वेद के एक मंत्र में उल्लेख आया है कि है सोम मैं मंत्रकर्ता ऋषि हूँ, मेरे पिता चिकित्सक है मेरी माता अनाज पीसती है।वैदिक साहित्य में भी ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि निम्न कार्य करने वालों का काई अलग वर्ग था।

परन्तु अम्बेडकर शूद्र को पृथक वर्ण नहीं मानकर उन्हें क्षत्रिय मानते है। अम्बेडकर इस सिद्धान्त से सहमत नहीं है कि वैदिक काल में आर्यों में जातिगत एकता थी। वे आर्यों के गौर वर्ण और आर्येंतर लोगों के कृष्ण वर्ण होने के सिद्धान्त से भी सहमत थे।

अम्बेडकर वैदिक आधार पर ही इस सिद्धान्त से असहमति प्रकट करते है कि आर्यों ने भारत पर आक्रमण किया और दास, दस्यु जो यहाँ के मूल निवासी थे, से उनका संघर्ष हुआ। अम्बेडकर की मान्यता यह रही है कि आर्यों में दो जातियाँ थी। अम्बेडकर शूद्रों को आर्यों की ही एक उपजाति मानते है जो ब्राह्मण, क्षत्रिय संघर्ष के परिणामस्वरूप कालान्तर में निम्न वर्गीय करार दे दी गई। वे वे ऋग्वेद के पुरूष सूक्त को प्रामाणिक नहीं मानते वरन् उसे बाद में जोड़ा गया मानते है।

अम्बेडकर के अनुसार आरम्भ में मूलतः तीन ही वर्ण थे और शूद्र वर्ण क्षत्रिय वर्ण का ही एक भाग था। पुरूष सूक्त, यजर्वेद की तेतेरय संहिता, कथक संहिता एवं मैत्रायणी संहिता के बाद, ऋग्वेद में जोड़ा गया जिसमें शूद्रों का चौथा वर्ण माना गया। शूद्रों की सामाजिक व्यवस्था में निम्न स्थिति के कारण ब्राह्मणों एवं शूद्रों में हिंसात्मक संघर्ष हुआ।वे इस सम्बन्ध में शूद्र राजा सुदास व ब्राह्मण ऋषि वशिष्ठ का उदाहरण देते है। इस संघर्ष में जिस मारक अस्त्र का प्रयोग किया, वह था शूद्रों को उपनयन के संस्कार से वंचित करना। इस संघर्ष से पूर्व स्त्री व शूद्रों को उपनयन संस्कार का अधिकार प्राप्त था।

अम्बेडकर की मान्यता इस तथ्य पर आधारित है कि ब्राह्मण वर्ण अपनी सर्वोच्च सत्ता बनाये रखने, भेंट, पूजा, दान, पोरोहित्य के एकाधिकार की सुरक्षा हेतु सदैव ऊँच–नीच का विधान करते रहे है। ऊँच–नीच और छूआछूत का विषफल इसी बीज की देन है।

जबकि एक ओर ब्राह्मण को विधि निर्माताओं ने विशेषाधिकार प्रदान किये वहीं दूसरी ओर शूद्रों पवर अनेकों निर्योग्यताएँ लाद दी गयीं। जो इस प्रकार थी–

शूद्रों का सामाजिक क्रम में अंतरिम स्थान शूद्रों अपवित्र थे तथा उन्हें अन्य वर्णों की तरह सम्मान नहीं था शूद्रों को ज्ञानार्जन एवं सम्पति का अधिकार नहीं था राज्य के अधीन कोई राज पद नहीं था। इस तरह धीरे–धीरे शूद्र वर्ग अछूत वर्ग की श्रेणी में शामिल हो गया।

निष्कर्ष-शूद्र की उत्पत्ति के उक्त विभिन्न सिद्धान्तों से कोई निश्चय तो प्राप्त नहीं होता कि शूद्र की उत्पत्ति कब हुई। परन्तु कुछ अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है, कि प्रारम्भ में मनुष्य समाज अत्यल्प था, उसकी आवश्यकताएँ भी सीमित थीं और उस समय वह कबीलाई अवस्था में था। परन्तु जैसे–जैसे मानवीय बुद्धि का विकास हुआ और जनसंख्या वृद्धि से कार्य बढ़े, उन कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए व्यवस्था का प्रश्न खड़ा हुआ। तब

वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति हुई होगी। अर्थात् सृष्टि के बनने के बाद सामाजिक व्यवस्था के उचित प्रबंधन के लिए सृजित चार वर्णों में शूद्र की भी उत्पत्ति की गई। अतः चौथे की व्यवस्था में कर्तव्यों के पालन हेतु सेवा का प्रतिनिधत्व करते थे।

संदर्भ ग्रंथ

[1] शर्मा, रामशरण – शूद्रों का प्राचीन इतिहास
[2] गोयल, प्रीतिप्रभा – भारतीय संस्कृति
[3] शर्मा, रामशरण– शूद्रों का प्राचीन इतिहास
[4] अम्बेडकर – हू वर द शूद्राज
5 दत्त, महेश्वर– गाँधी, अम्बेडकर और दलित
6 गोयल, प्रीतिप्रभा – भारतीय संस्कृति
7 शर्मा, रामशरण – शूद्रों का प्राचीन इतिहास
8 दत्त, महेश्वर – गाँधी, अम्बेडकर और दलित
9 मेघवाल, कुसुम – हिन्दी उपन्यासों में दलित वर्ग
10 चानना, देवराज– प्राचीन भारत में दास प्रथा
11 शर्मा, रामशरण– शूद्रों का प्राचीन इतिहास
12 पांडेय, विमलचन्द्र – प्राचीन भारत का राजनीति तथा सांस्कृतिक इतिहास
13 कोसांबी, डी.डी. – प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 98–105

The Varieties of Religious Experience : Phenomenological Approaches to Spirituality

Dr. Gauranga Das
Assistant Professor, Department of Philosophy, Kalimpong College,
Kalimpong, West Bengal, India, Pin Code: 734301

Abstract :

This work uses a phenomenological technique to explore the diverse landscape of religious experience, building upon but surpassing William James's seminal work. While James meticulously documented the diversity of religious experience, phenomenology offers a systematic framework for investigating the basic structures of religious experience and the how of its givenness to consciousness. The basic components of encounters with the sacred, such as the numinous, hierophanies, mystical states, and transformational conversions, are explained in this work through the use of phenomenological bracketing and eidetic reduction. It mostly borrows from the theories of Mircea Eliade, Rudolf Otto, and Edmund Husserl. Beyond merely describing these experiences, it reveals their existential significance and intersubjective dimensions, acknowledging their many manifestations across cultures and countries. The essay addresses objections and limitations of the phenomenological method, particularly with regard to objectivity and the search for universal essences, while simultaneously reaffirming the technique's enduring importance in understanding the profound human relationship with spirituality.

Keywords :

Edmund Husserl, William James, Rudolf Otto, Mircea Eliade, religious experience, phenomenology, spirituality, mysticism, conversion, numinous, and hierophany.

1. Introduction : The Enduring Puzzle of Religious Experience :

The phenomena of religious experience has long captured the attention of philosophers, psychologists, and theologians. From sudden, startling revelations to subtle, introspective insights, human experiences with what is regarded as holy, sublime, or sacred constitute an important and enduring aspect of human history and culture. An essential resource for the study of this topic is still

William James's seminal work, The Varieties of Religious Experience (1902). James was a keen observer and psychologist who meticulously documented numerous first-hand reports, categorizing incidents and analyzing their effects on the mind and society. His articles highlighted how deeply impactful, intimate, and often indescribable these exchanges are. James was a master at describing the different manifestations and empirical effects of religious experience, but his approach was less concerned with the how or the inherent meaning of these experiences in consciousness and more pragmatic and psychological in nature. In this context, phenomenology offers a crucial supplemental methodology. As a branch of philosophy, phenomenology seeks to explain things "as they appear" to consciousness while putting aside opinions regarding their psychological causes or objective existence. It seeks to uncover the essential structures, meanings, and forms of givenness that characterize human experience (Husserl, 1913/1982).

This essay looks at the variety of religious experience from a phenomenological perspective. By employing phenomenological methods such as the epoche (bracketing) and eidetic reduction, we can move beyond anecdotal description and investigate the underlying patterns and similarities that underlie diverse spiritual experiences. Before broadening the analysis to encompass more forms of religious experience, such as mystical states, ritual involvement, and conversion, we shall examine the contributions made to this understanding by significant phenomenologists like Rudolf Otto and Mircea Eliade. Lastly, we will weigh the benefits and drawbacks of this approach to comprehending the nuanced aspects of human spirituality.

2. The Phenomenological Method : Bracketing and Eidetic Reduction in the Study of Religion :

Edmund Husserl, the founder of phenomenology, developed a methodical philosophical framework for examining the structure of consciousness. His methodology is based on two interconnected processes: eidetic reduction and the epoche (also called phenomenological reduction/ bracketing).

The epoche entails "bracketing" or suspending our innate attitude, which is our presumption that the universe exists objectively. This entails temporarily putting aside concerns about the existence of God, the divine inspiration of revelations, and the scientific explanation of spiritual events when researching religious experience. Instead, the focus shifts entirely to the experience itself – how it presents itself to the experiencing subject, its subjective qualities, its intentional objects, and its internal coherence (Husserl, 1913/1982). A clear, objective description of the phenomenon as it manifests itself is made possible by this suspension of judgment.

Once the epoche is finished, the phenomenologist proceeds to eidetic reduction. This is a

creative variation process whereby aspects of the experience are systematically altered to determine what is essential to it, i.e., what cannot be removed without the experience being less unique. The objective is to comprehend the eidos, or basic structure, of the phenomenon. Speaking to a higher power is essentially intentional, even if one alters the words, the setting, or the posture when learning prayer, for instance. This method seeks to identify the recurring components that characterize a religious experience as religious rather than concentrating just on psychological or aesthetic factors. Phenomenology, in contrast to psychology, describes what is provided in experience rather than looking for causal explanations. In contrast to theology, it investigates the structure and meaning of faith as experienced rather than attempting to prove truth claims. This distinctive approach provides a powerful tool for understanding the subjective, lived reality of religious phenomena, moving beyond reductionist explanations to appreciate their inherent complexity and significance (Smart, 1973).

3. Rudolf Otto and the Numinous : The "Wholly Other" Encounter :

One of the most influential phenomenological accounts of religious experience comes from Rudolf Otto in his seminal work, The Idea of the Holy (1923). Otto sought to articulate the unique, non-rational core of religious experience, which he termed the "numinous." He argued that this experience is irreducible to moral, aesthetic, or rational categories.

The numinous, for Otto, is characterized by a dual nature : the mysteriumtremendum et fascinans.

MysteriumTremendum : Awe, creature-feeling, dread, and overwhelmingness are all evoked by this feature. It alludes to a reality that is completely "other" from the ordinary and incomprehensible. It is perceived as something magnificent, uncontrollable by humans, and possibly terrifying in its utter might.

Mysterium Fascinans : At the same time, the supernatural draws and enthralls. Its overwhelming value, ultimate desirability, and captivating beauty captivate the experiencer. This is the element that evokes admiration, worship, and a want for fellowship.

Otto emphasized the ineffability of the numinous. While it can be evoked through symbols, myths, and rituals, its core nature resists full articulation in conceptual language. It is a pre-rational, felt experience that underpins religious feeling. His phenomenology aimed to point to this fundamental, non-rational stratum of religious consciousness that he believed was universal across diverse religious traditions, distinguishing them from mere ethical systems or philosophical worldviews (Otto, 1923). Otto's focus on awe and dread is frequently cited in criticism of his writing, raising the possibility that other types of religious experience—such as those marked by union, love, or peace—may be overlooked. However, because it accurately articulates a unique, irreducible aspect of religious

perception, his idea of the numinous continues to have a significant impact today.

4. Mircea Eliade and the Sacred/Profane Dialectic: Hierophanies and Sacred Space :

Mircea Eliade, another key figure in the phenomenology of religion, expanded upon Otto's insights by focusing on how the sacred manifests in the world, creating distinct experiences of space, time, and human existence. In The Sacred and the Profane: The Nature of Religion (1959), Eliade argued that humans experience reality as fundamentally divided into two modes of being: the sacred and the profane.

The Profane : This is a relativistic, homogenous way of existence. Space is undifferentiated, time is linear, and objects are only functional. There is no higher purpose and no order to life in the profane world.

The Sacred : This mode reveals true reality, providing meaning, order, and orientation to human existence. The sacred is manifested through hierophanies – eruptions of the sacred into the profane world. A tree might become sacred, not because of its physical properties, but because it is experienced as a manifestation of divine presence or cosmic order (e.ade, 1959).

Sacred space is created by hierophanies, turning profane space into the "center of the world." An axis mundus (world axis) that links the world of humans with the divine can be a temple, a mountain, or a river. Similar to this, sacred time is cyclical, primordial time that is frequently recreated through rituals (such as festivals and initiation rites) that enable people to rejoin the mythological "beginning" and exit linear profane time.

According to Eliade's phenomenology, religious experience has a significant impact on how people view and interact with the outside world and is not just an internal condition. It gives life purpose, validates social systems, and gives meaning. His writings highlight how encounters with the sacred may completely reorient a person's life around a newly discovered center of meaning. Eliade's framework is still crucial for comprehending the existential relevance of religious events, despite occasional criticism for his universalizing inclinations and reduction of religious complexity to a single sacred/profane dichotomy.

5. Phenomenology Beyond Awe : Exploring Diverse Forms of Religious Experience :

Phenomenological methods can be used to examine other types of religious experience, exposing their distinct structures and meanings, whereas Otto concentrated on the supernatural and Eliade on hierophanies.

5.1. Mystical Experience: Unitive States and Ineffability :

One of the deepest types of religious experiences is mysticism, which is frequently defined as a feeling of oneness with the divine, the cosmos, or a non-dual reality. According to phenomenology,

these experiences entail a sense of absorption or merging as well as the breakdown of the typical subject-object dichotomy.

Unitive Consciousness : The "I" often dissolves, leading to a sense of interconnectedness with everything. This can be described as a "loss of self" or a realization of the non-duality of existence (Stace, 1960).

Ineffability and Paradox : Mystic experiences, like the numinous, are frequently characterized as ineffable, defying complete expression in everyday language. To indicate their nature, paradoxical phrases like "darkness visible" and "silence full of sound" are commonly employed.

Noetic Quality : Despite their ineffability, mystical experiences often carry a profound sense of objective truth or insight, a direct knowing that transcends ordinary conceptual understanding (James, 1902).

Regardless of the particular theological framework in which they are interpreted (Sufism, Zen Buddhism, Christian mysticism), phenomenological analysis of mystical accounts aims to find the commonalities in these experiences, such as the initial cognitive disorientation, the feeling of transcendence, the dissolution of ego boundaries, and the subsequent sense of peace, joy, or profound insight.

5.2. Ritual Experience: Embodiment and Communitas :

Religious rituals are frequently intensely felt events that embody and enact religious ideas; they are not only symbolic acts. According to phenomenology, rituals alter participants' consciousness by establishing a special place and time.

Embodiment and Performativity : Rituals involve the body in specific gestures, postures, and movements, engaging senses and emotions. The meaning is not just intellectualized but felt and performed (Bell, 1997).

Liminality and Communitas : In his work on liminality, Victor Turner (1969) emphasizes the "betwixt and between" stage of ritual, in which typical social structures are suspended. This frequently dissolves common distinctions and fosters communitas, a strong sense of anti-structural equality and strong group unity among members.

Transformation: Ritual experiences have the power to reaffirm identity, signal rites of passage, or give one a fresh sense of direction and community. Over time, rituals' repetition can imprint religious meaning on people's minds.

In order to develop a specific type of religious presence, a phenomenological approach to ritual looks at how these components come together to provide a unique mode of experience that is sensed both personally and communally.

5.3. Conversion Experiences: Existential Reorientation :

Whether it happens quickly or gradually, religious conversion is a significant shift in a person's whole perspective. According to phenomenology, conversion entails a profound change in one's identity, values, and worldview.

Crisis and Resolution : Often, conversion is preceded by a period of spiritual or existential crisis, a feeling of inadequacy, guilt, or meaninglessness. The conversion experience provides a resolution, a new center of meaning, and a sense of purpose (James, 1902).

New Perspective : All of a sudden, the world is viewed from fresh perspectives, with new priorities and meanings. Previous issues may become insignificant, and a fresh sense of clarity and hope arises.

Affective and Cognitive Dimensions : In addition to being highly emotional, conversions often entail substantial cognitive changes in moral frameworks, values, and beliefs. Will, emotion, and intelligence are all impacted by this comprehensive change.

Studying conversion from a phenomenological perspective entail characterizing the subjective feelings of emancipation, direction, or deep serenity that accompany embracing a new religious framework.

6. Critiques and Limitations of Phenomenological Approaches :

Although phenomenological approaches to religious experience provide significant insights, they are not without limitations and detractors:

Subjectivity and Objectivity : Finding intersubjective agreement while working with subjective, fundamentally private experiences is a major difficulty. Critics wonder whether it is possible to fully "bracket" one's own preconceptions and biases while interpreting the experiences of others, even though phenomenology strives for a rigorous account of what appears.

The "Essence" Problem : The pursuit of eidetic reduction aims to uncover universal essences of religious experience. However, post-structuralist and cultural relativist critiques argue that experience is always historically, culturally, and linguistically mediated. Is there a universal "numinous" or "mystical state" truly independent of its cultural articulation, or are such categories themselves products of specific historical consciousnesses? (McCutcheon, 1999).

Neglect of Context : The social, political, economic, and psychological factors that mold and impact religious experiences are occasionally overlooked by phenomenology, which focuses on the how of experience. For a complete understanding, it can be essential to comprehend the power relationships, societal influences, or psychological tendencies that influence an experience.

Truth Claims vs. Meaning : Phenomenology purposefully refrains from evaluating the

veracity of religious experiences. Some contend that this sidesteps the crucial question of whether these experiences truly relate to an objective reality outside of the mind, even while it permits open description.

Notwithstanding these criticisms, phenomenology's strength is its dedication to properly considering religious experience on its own terms, without reducing it to anything "other" (such as merely psychology, sociology, or illusion). It offers an essential framework for comprehending human spirituality's subjective meaning and lived reality.

7. Conclusion: Re-enchanting the Human Encounter with the Transcendent :

The subject of studying religious experience is very vibrant and demanding. Phenomenological approaches, mainly through Otto and Eliade's work and extending to other forms of spirituality, provide a rigorous method for understanding the essential structures and how these experiences are given to consciousness, even though William James laid the foundation by painstakingly documenting its varieties. While avoiding judgment on their ultimate ontological status, phenomenology uses the epoche and eidetic reduction to describe the profound reorientation of conversion, the embodied intensity of ritual, the unitive bliss of mysticism, the transformative power of hierophanies, and the numinous awe.

Phenomenology aims to elucidate the distinctive nature of religious experience as a basic manner of human connection with the transcendent, however conceived, rather than to rationalize it. It draws attention to the events' deep existential significance by demonstrating how they influence our perception of reality, identity, and worldview. Its strength derives in its careful attention to subjective lived experience, which offers a rich vocabulary and conceptual framework for explaining the ineffable and frequently transformational qualities of spirituality, despite fair criticisms regarding objectivity and universal essences.

Phenomenological understanding is still essential as multidisciplinary disciplines like neurotheology and the cognitive science of religion investigate the psychological and biological underpinnings of religious experience. They give us the subjective information we need to quantify and evaluate scientific explanations, firsthand reports of what it feels like to have these experiences. In the end, phenomenology re-enchants our understanding of the human potential for the sacred by offering a way to rigorously define the what and how of religious experience, confirming its ongoing relevance in the fabric of human existence.

References :

1. Bell, C. (1997). Ritual: Perspectives and Dimensions. Oxford University Press.

2. Eliade, M. (1959). The Sacred and the Profane: The Nature of Religion. Harcourt Brace Jovanovich.
3. Husserl, E. (1982). Ideas Pertaining to a Pure Phenomenology and to a Phenomenological Philosophy, First Book: General Introduction to a Pure Phenomenology (F. Kersten, Trans.). Martinus Nijhoff. (Original work published 1913)
4. James, W. (1902). The Varieties of Religious Experience: A Study in Human Nature. Longmans, Green, and Co.
5. McCutcheon, R. T. (1999). Manufacturing Religion: The Discourse on Suffering and the Kitsch of Scholarly Practice. Oxford University Press.
6. Otto, R. (1958). The Idea of the Holy (J. W. Harvey, Trans.). Oxford University Press. (Original work published 1923)
7. Smart, N. (1973). The Phenomenon of Religion. Macmillan.
8. Stace, W. T. (1960). Mysticism and Philosophy. Lippincott.
9. Turner, V. (1969). The Ritual Process: Structure and Anti-Structure. Aldine Publishing Company.

Email: gdasindianphilosophy@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 106-109

श्रीग्वल्लदेवचरितमहाकाव्ये ग्वल्लदेवस्य चरित्र-चित्रण

सोनिया सैनी, शोधच्छात्रा,
शोधनर्देशिका **डॉ० प्रतिभा शुक्ला** सहाचार्या,
साहित्यविभागः, उत्तराखण्डसंस्कृतविश्वविद्यालयः हरिद्वारम्।

प्रो हरिनारायणदीक्षितप्रणीतं श्रीग्वल्लदेवचरितम् नैनीतालजनपदस्य भवालीक्षेत्रस्य समीपे घोड़ाखालस्थाने निर्मितस्य मन्दिरस्थलस्प श्रीग्वल्लदेवस्य जीवनचरिताधारितं महाकाव्यमस्ति। श्रीग्वल्लदेवचरितमहाकाव्ये 27 सर्गाः 2302 श्लोकाश्च विद्यन्ते। अस्य महाकाव्यस्स विभिन्नसर्गेषु देवभूमि– उत्तराखण्डस्य महिमागानम् उत्तराखण्डस्य तीर्थस्थलानां माहात्मयं उत्तराखण्डस्य सिद्धमहर्षिणां तपस्चर्यायाः काव्यगङ्गा हिमालयस्य प्रतिकणमाप्लावितं करोति।

श्रीग्वल्लदेवचरितमहाकाव्ये अन्यायस्यापराधस्य विरुद्धे संघर्षकर्ता पराक्रमस्य न्यायप्रियस्य राज्ञः श्रीग्वल्लदेवस्यो दात्तचरितं न्यायसिद्धान्तानां प्रतिपादनं च निबद्धं वर्तते। श्रीग्वल्लदेवस्य न्यायगतसिद्धान्ताः वर्तमानसन्दर्भे प्रासंगिकाः सन्ति।

वस्तुतः यदा न्यायालयपरिसरे न्यायः अप्राप्तो भवति तदा भद्रजनाः श्रीग्वल्लदेवस्य शरणं प्रति यान्ति। यदा भद्रजनाः न्यायप्रियस्य श्रीग्वल्लदेव शरणं यान्ति तदा ते न्मायं प्राप्नुवन्तीति। श्रीग्खल्लदेवः भद्रजनं न्यायं प्रदाय तं भद्रजनं तोषयति, अपराधिनं च दण्ड्यति।

प्रो हरिनारायणदीक्षितानुसारेण कूर्मांचलक्षेत्रे श्रीग्वल्लदेवः न्या यनृपरूपेण प्रतिष्ठितो वर्तते।

श्रीग्वल्लदेवमर्चयन्ति। श्रीग्वल्लदेवचरितमहाकाव्यस्य नायकः श्रीग्वल्लदेवो वर्तते। इदं महाकाव्यं श्रीग्वल्लदेवचरिताधारितं वर्तते।

श्रीग्वल्लदेवचरितमहाकाव्यस्स नायकस्य चरित्रचित्रणात् पूर्व नायकस्य स्वरूपभेदनिर्णयः आवश्यको वर्तते। नायकस्य स्वरूपं वर्णयन् दशरूपककारो वदति यत् नायकः विनीतः मधुरः त्या गी दक्षः प्रियवदः लोकप्रियः पवित्रः वाग्मिः ख्यातवंशोत्पन्नः स्थिरः युवा बुद्धि–स्मृति–उत्साह–प्रज्ञा–कला–मानसमन्वितः शूरः दृढः तेजस्वी शास्त्रनेत्रकः धार्मिकश्च भवति।

साहित्यदर्पणकारः कविराजविश्वनाथोऽपि नायकस्य उपरोक्तसमं लक्षणं लक्षयति। साहित्यदर्पणस्यानुसारेण नायकः दाता, कृतज्ञः, पण्डितः, कुलीनः जनानुरागः, लक्ष्मीवान्, रूपयौवनसम्पन्नः, उत्साहसम्पन्नः, चतुरश्च भवति।

महाकाव्यनायकः मुख्यरूपेण चतुर्विधः भवति– धीरोदात्तः, धीरोद्धतः, धीरललितः धीरप्रशान्तश्च। चतुर्षु नायकेषु धीरललितनायकः कलासम्पन्नः सुकोमलश्च भवति। साहित्यदर्पणकारः एवं प्रकारेण धीरललितनायकं लक्षयति। द्विजादिनायकस्य सामान्यगुणैः सम्पन्नः धीरप्रशान्तो नायको भवति। धीरोदात्तनायकः महासत्त्वः अतिगम्भीरः क्षमावान् अविकत्थनः स्थिरः निगूढहंकारश्च भवति। धीरोद्धतः नायकः गर्वः असहिष्णु मायापरःप्रचण्डः चलः विकत्थनश्च

भवति।

श्रीग्वल्लदेवचरितमहाकाव्यस्य नायकः श्रीग्वल्लदेवः महासत्त्वसम्पन्नः अतिगम्भीरः क्षमाशीलः अविकत्थनः निगूढहंकारसम्पन्नः स्थिरश्च वर्तते।

श्रीग्वल्लदेवस्य चरितम् –

श्रीग्वल्लदेवः सत्कुलोत्पन्नः लक्ष्मीवान् मनोहरः प्रियवदः प्रजारंजकश्चास्ति। अयं श्रीग्वल्लदेवः उदारहृदयी क्षमावान् तेजसम्पन्न पराक्रमसम्पन्न सत्य–महासत्वसम्पन्नः विनीतः शोभनगुणैश्च सुसम्पन्नो वर्तते। श्रीग्वल्लदेवे शीलसम्पन्नतां समाहिता वर्तते।

श्रीग्वल्ल्देवचरितमहाकाव्ये कविना यच्छविः श्रीग्वल्लदेवस्मांकिता कृता वर्तते सा छविः लोकाभिरामस्य लोकनायकस्य पदे विभूषितं करोति। श्रीग्वल्लदेवस्य हृदये विनम्रभावः कठोरत्वभावोऽपि विद्यते। श्रीग्वल्लदेवस्य चारित्रिकवैशिष्टं निम्मरूपेण वर्तते–

शारीरिकसौन्दर्यम् –

श्रीग्वल्लदेवस्य शारीरिकसौन्दर्यसम्पन्नों वर्तते। कवि प्रो. हरिनारायणदीक्षितः श्रीग्वल्लदेवस्य शारीरिकसौन्दर्यं वर्णयन् कथयति यत् अस्य श्रीग्वल्लदेवस्य सुन्दरं गौरमयम् नवनीतसमं सुकोमलम् मन्द मन्दस्मितैः चन्द्रमयूखविजितं शरीरमस्ति। श्रीग्वल्लदेवस्य सुमनोहरं विग्रह विलोक्य कवि कथयति–

तस्यां तदा वीक्ष्य मनोज्ञविग्रहं सुगौरवर्णं नवनीतकोमलम्।
मन्दस्मितैर्निर्जितचन्द्ररोचिषं शयानमेकं बहुसुन्दरं शिशुम्।।

बभूवतुस्तावतिभावविस्मितौ विसस्मरूर्मीलनमेव तद् दृशः।
द्रुतं तदीये मनसी च तं प्रति बभूवतुर्वत्सलभावसम्भृते।।

प्रो हरिनारायणदीक्षितमहोदय श्रीग्वल्लदेवस्य शैशवावस्थायाः चित्रणं कुर्वन् कथयति यदयं श्रीग्वल्लदेव सुन्दरशरीरं धारयन् चालयन् समर्थ अभवत्।

कदापि कुर्वन् मधुरं निजस्मितं ताली कराभ्यां च कदापि वादयन्।
कदापि पादौ गगने च चालयन् प्रसादयत्तौ स मनोज्ञचेष्ट।
कैश्चिद् दिनैरेव स बालको महान् भूमौ समारोप्य करौ च जानुनी।
प्रारब्ध सर्त्तुं चलितुं च तत्परं तमीदृशं वीक्ष्य ननन्दतुस्च तौ।।

शास्त्रज्ञाता समाजसुधारकश्च श्रीग्वल्लदेवः अल्पायुकाले बुद्धिसम्पन्न कर्मणिकुशलश्चासीत्। अयं स्वीयेन संवादेन जनान् विस्मयं करोति स्म।

पित्रा कदाचित् सह वा कदाप्यसौ मात्रा समं ग्राम्यजनालयानगात्।
व्यस्मापयत्तेषु निवासिनो जनान् वाग्भिर्निजाभिः स वाग्मितानिधिः।

अयं श्रीग्वल्लदेव जनान् असत्यमार्गात् निवारयति सन्मार्ग प्रति नयति प्रेरयति च।

यदा कदा धीवरकोटहट्टके गतः पितृभ्यां सह वस्तुनः क्रये।
तौ वंचयन्तं पणिनं न्यवारयत् प्राबोधयत्तं च पणित्वशुद्धये।

प्रो हरिनारायणदीक्षितः श्रीम्वल्लदेवस्य प्रशंसा कुर्वन् कथयति यत् यदा कदा ग्रामे कलहः भवति स्म तदा

श्रीग्वल्लदेवस्य मनः खिन्नो भवति स्म। अयं सदैव जनान् कलहात् वारयति स्म।

ग्रामे च कुत्रापि जनेषु केषुचित् भूतो भवन्वा कलहः परस्परम्।
कदापि नारोचत् तस्य चेतसे शान्तिं समिच्छन्ति सदा सवाशयाः।

कर्तव्यपरायणता –

श्रीग्वल्लदेवस्य कर्तव्यपरायणं महत्वपूर्णं चारित्रिकवैशिष्टमस्ति। यदा श्रीग्वल्लदेव स्वप्ने मातुः दुर्दशां पश्यति स्म तदा स्वकीयं कर्तव्यं स्मरति स्म। मातुः दुर्दशां विलोक्य मातु समीपे गन्तुमिच्छति अयं श्रीग्वल्लदेवः।

स्वप्ने तदीयामवलोक्य दुर्दशां कर्तव्यबोधे मम चेतनागता।
तस्माच्च तद् दुःखदवाग्निशान्तये तस्यास्समीपेऽथ यियासुरस्म्यहम्।

मातृभक्तः–

श्रीग्वल्लदेवस्य जीवनं मातृभक्तिभावनया परिपूर्णं वर्तते। स्वप्नस्थितां मातादुर्दशां विलोक्य चिन्तताः भवन्ति। श्रीग्वल्लदेव जन्मदात्रीं मातरं जन्मस्थानादपि उच्चतरं मन्यते।

सुतस्य धर्मः परमो मतोऽस्ति यद् रक्षेत् ध्रुवं स्वां जननीं स सर्वतः।
एतत्प्रतीपाचरणानुसारिणस् सुतस्य लोकद्वयमेव तुष्यति।।
स्वजन्मभूमिर्गदिता गरीयसी स्वर्गादपीत्यत्र न कोऽपि संशयः।
स्वजन्मभूमेरपि किन्तु मन्मते गरीयसी स्वा जननीह सिद्ध्यति।

न्यायप्रियः–

श्रीग्वल्लदेवः एकः न्यायप्रिय देव जगति प्रसिद्धो वर्तते। श्रीग्वल्लदेवः उत्तराखण्डस्य न्यायप्रदातारूपेण जगति प्रसिद्धो वर्तते। श्रीग्वल्लदेवः अन्यायस्यापराधस्य विपर्यये संर्घषकर्ता पराक्रमयुक्तः न्यायप्रियः राजा आसीत्–

तत्प्रभावो महानस्ति कूर्माचले पूज्यतेऽसाविहाबालवृद्धं जनैः।
न्यायकर्तास्त्यसावत्र दिव्योपमस् तस्य निष्पक्षता चच्यते सर्वतः।।

कवे प्रो हरिनारायणदीक्षितस्य मतमस्ति यत् यदा देशस्य प्रदेशस्य वा न्यायालये जनाः न्यायवंचिता भवन्ति तदा भद्रजनाः श्रीग्वल्लदेवस्य न्यायालये आगत्य न्यायं प्राप्नुवन्ति।

न्यायगेहेऽप्यनेकेऽत्र ये सज्जना न्यायमप्राप्य चामुं व्रजन्त्याशया।
तानसौ तोषयत्याशु सद् भूपवत् दण्डयित्वोचितं भूरि तत्पीडकान्।।

दयालुः –

श्रीग्वल्लदेवः एकः दयालुः प्रकृतियुक्तो वर्तते। श्रीग्वल्लदेव शरणे आगतान् जनान् तेषामीप्सितं द्रव्यं प्रयच्छति। श्रीग्वल्लदेव शरणे आगतस्य जनस्य प्रत्येकमभीष्टं पूरयति। यदि कोऽपि दुर्जनोऽपि श्रीग्वल्लदेवस्य शरणं गृह्णाति तदा तद्दुर्जनः अपि निर्भयतां याति।

सज्जनैरेव तत्राश्रयो लभ्यते पच्यते तत्र सूपा न दुष्टात्मनाम्।
रोचते नैव तस्मै सतां पीडनं साधुचित्ता न पुष्णन्ति दुष्टांजनान्।।

लोकपूज्यः –

कविः प्रो हरिनारायणदीक्षितः श्रीग्वल्लदेवस्य वर्णनं वणयन् कथयति यदय श्रीग्वल्लदेव कूर्मांचलप्रदेशस्य पुरातनः राजा। श्रीग्वल्लदेव स्वीये जीवनकाले स्वप्रजाया सम्यग्रूपेण पालनं संरक्षण करोति स्म। एतस्मात्कारणात्

श्रीग्वल्लदेव समाजे पूजनीयतामाप्त।

लोकपूज्ये प्रजापालके प्राक्तने भूपतौ साम्प्रतं देवकोटिं गते।
ग्वल्लदेवेऽद्य काव्यं चिकीर्षन्नहं नौमि तं श्रद्धया तस्य सम्पूर्तये।।

निर्भीकः –

कविः प्रो हरिनारायणदीक्षित श्रीग्वल्लदेवस्य निर्भयतां वर्णयन् कथयति यदयं श्रीग्वल्लदेव यदा धूमाकोटनगरं गच्छति तदा अयं राजभवने निर्भयेन प्रवेशं विधाय स्वीयं वाचमारभते–

भूपस्य वचनं श्रुत्वा ग्वल्लो गम्भीरतां गतः।
तथा ध्यात्वा शिवं चित्ते स वक्तुमुपचक्रमे।।

करूणार्णव –

अयं श्रीवल्लदेव करुणासमुद्रो वर्तते। यदा श्रीग्वल्लदेवस्य सप्तविमातृणामपराधस्योद्घाटनं भवति तदा ताः सर्वा विमातर श्रीवल्लदेवस्य शरणे आयान्ति। शरणागतानां जनानामपराधं विलोक्यापि श्रीग्वल्लदेव तान् सर्वान् क्षमादानं करोति –

करूणासागरो ग्वल्लो बालको दीनवत्सलः।
अमूषां भावशुद्धिं तां विदित्वातुष्यदात्मनि।।

निष्कर्ष अतः निष्कर्षरूपेण कथयितुं शक्यते प्रो हरिनारायणदीक्षितविरचितस्य श्रीग्वल्लदेवचरितमहाकाव्यस्य नायकः श्रीग्वल्लदेवः महान न्यायप्रियः अन्यायहरश्च वर्तते। वर्तमानकालेऽपि देशे–विदेशे श्रीग्वल्लदेवस्य माहात्म्यं विश्रुतमस्ति। कूर्मांचलप्रदेशे तु न्यायस्य राजा इत्यस्य प्रसिद्धिः वर्तते एव।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1. श्रीग्वल्लदेवचरितम् –डॉ० हरिनारायण दीक्षित – 11/17/18 – पृष्ठ संख्या– 190 ईस्टर्न बुक लिंकर्स ५८२५ न्यू चन्द्रावल जवाहरनगर दिल्ली, 2008
2. श्रीग्वल्लदेवचरितम् –डॉ० हरिनारायण दीक्षित – 11/65/66 – पृष्ठ संख्या– 200
3. श्रीग्वल्लदेवचरितम् –डॉ० हरिनारायण दीक्षित – 11/80 – पृष्ठ संख्या– 203
4. श्रीग्वल्लदेवचरितम् – डॉ० हरिनारायण दीक्षित – 11/81– पृष्ठ संख्या– 203
5. श्रीग्वल्लदेवचरितम् – डॉ० हरिनारायण दीक्षित – 11/84– पृष्ठ संख्या – 204
6. श्रीग्वल्लदेवचरितम्– डॉ० हरिनारायण दीक्षित – 12/18 – पृष्ठ संख्या– 213
7. श्रीग्वल्लदेवचरितम् – डॉ० हरिनारायण दीक्षित – 12/19/21– पृष्ठ संख्या 213214
8. श्रीग्वल्लदेवचरितम् –डॉ० हरिनारायण दीक्षित – 1/28 – पृष्ठ संख्या – 8
9. श्रीग्वल्लदेवचरितम् – डॉ० हरिनारायण दीक्षित – 1/29 – पृष्ठ संख्या – 8
10. श्रीग्वल्लदेवचरितम् –डॉ० हरिनारायण दीक्षित – 1/31 – पृष्ठ संख्या – 9
11. श्रीग्वल्लदेवचरितम् – डॉ० हरिनारायण दीक्षित – 1/32 – पृष्ठ संख्या – 9
12. श्रीग्वल्लदेवचरितम्– डॉ० हरिनारायण दीक्षित – 17/23 – पृष्ठ संख्या – 293
13. श्रीग्वल्लदेवचरितम् –डॉ० हरिनारायण दीक्षित – 17/132 – पृष्ठ संख्या – 316

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 110–113

पर्यावरण संरक्षण के प्रति इतिहास की भावना का प्रत्यक्षिकरण

डॉ. मनीश राठौर
प्राचार्य, मोतीलाल दवे टीचर ट्रेनिंग कॉलेज बाँसवाड़ा, राजस्थान।

"उच्चतम ि ाक्षा वह है जो हमें न केवल जानकारी देती है बल्कि हमारे जीवन का सभी अस्तित्व के साथ सामंजस्य बिठाती है।" – रविंन्द्रनाथ टैगोर

प्रत्यक्षिकरण का अर्थ संवेदनाओं के अर्थ की व्याख्या करना हैं, प्रत्यक्षिकरण परिस्थिति का अपरोक्ष ज्ञान कराने वाली मानसिक प्रक्रिया है, प्रत्यक्षिकरण की प्रक्रिया में केवल किसी वस्तु का परिचय ही नहीं होता बल्कि उसके विशय में ज्ञान भी होता है। किसी वि ोश परिस्थिति में आप चीजों को कैसे देखते हैं, वह प्रत्यक्षिकरण है। मनुष्य द्वारा की जाने वाली समस्त क्रियायें पर्यावरण को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। तत्वदर्शी ऋषियो के निर्देशानुसार जीवन व्यतीत करने पर पर्यावरण की समस्या नहीं उत्पन्न हो सकती है। स्वच्छ पर्यावरण से तात्पर्य आसपास की समस्त जैविक और अजैविक परिस्थितियों के बीच पूर्ण सामंजस्य से है। वेदो में जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, वनस्पति अंतरिक्ष आकाश के महत्व पर प्रकाश डालतें हुए इनकी महता तथा पर्यावरण की स्वच्छता पर अधिक प्रकाश डाला गया है। जल जीवन का प्रमुख तत्व है। वेदो में अनेक संदर्भ में इसकी व्याख्या है। जल में अमृत है, जल में औषधि गुण है। ऋग्वेद (1.23/248) अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में जल तत्व और उसकी शुद्धता को स्वास्थ्य जीवन हेतु आवश्यक माना गया है। "शुद्धा न आपस्तन्वेक्षरन्तु।" (अथर्ववेद 121.30) पर्यावरण पर चर्चा एवं इतिहास विशय के साथ इसका संबंध वर्तमान संगोश्ठी का मुख्य विशय है। पर्यावरण इतिहास ज्ञान की वह धारा है जो मनुष्य के आपसी और सामुदायिक रिश्तों को प्रभावित करने वाली प्रक्रियाओं का विवेचन करती है। मानवीय रिश्तों को प्रभावित करने वाले ऐतिहासिक घटनाक्रमों के प्रकृति एवं पर्यावरण पर दूरगामी असर को जानने–समझने की कोशिश करती है। पर्यावरण इतिहास के इतिहास लेखन का संक्षिप्त अवलोकन जे. आर मैकनील, रिचर्ड व्हाइट, और जे. डोनाल्ड ह्यूजेस द्वारा प्रकाशित किया गया है[1]। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ एनवायर्नमेंटल हिस्ट्री में 25 निबंधों का एक खंड प्रकाशित किया है।

विश्व के सभी देशों में पर्यावरण से संबंधित अनेक अन्तर्विषयक अध्ययन एवं शोधकार्य का संचालन तीव्र गति से हो रहा हैं। इस समय पर्यावरणीय अध्ययन का क्षेत्र केवल वैज्ञानिक स्तर तक ही सिमट कर नहीं रह गया। अपितु व्यवहारिक स्तर पर विभिन्न विषयों में अध्ययन शुरू हो गया है, क्योंकि पर्यावरण का प्रभाव सम्पूर्ण

क्षेत्र पर पड़ता है।

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर प्राचीन भारत में पर्यावरण जिनमें प्रमुख मोहनजोदड़ो, धौलावीरा, शृंगवेरपुर, मथुरा, रोपड़, वैशाली, श्रावस्ती, नागर्जुनकोण्डा, कावेरीपक्कम् तामलुक आदि प्रमुख हैं। उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद के निकट श्रृंगवेरपुर से उत्खनन में प्राप्त विशाल जलाशय की संरचना पुरातन जल अभियान्त्रिकी का अद्‌भुत नमूना है। शृंगवेरपुर, इलाहाबाद में गंगा तट पर निर्मित 220 फीट लम्बे तथा 35 फीट चौड़े एक अत्यन्त सुन्दर जलाशय को बी. बी. लाल द्वारा उत्खनित किया गया है, जो पुरातन जल अभियान्त्रिकी का उत्कृष्ट नमूना है। 'पश्चिमी भारत में सह्यादि शृंखला में अजन्ता, कार्ले, भाजा, कन्हेरी, वेडसा, जुन्नर आदि विविध स्थलों पर पहाड़ियों में शैलोत्खनन करके चैत्यों तथा विहारों का निर्माण किया गया हैं इस स्थान पर रहने वाले भिक्षुओं के लिए पेय और दैनिक उपभोग हेतु शैल सतह उत्खनित करके अनेक जलकुण्ड (पोढ़ि) निर्माण किया गया। इन जलकुण्डों के दीवार पर इसके निर्माताओं के नामोल्लेख युक्त लेख भी प्राप्त होते हैं। उदाहरण कन्हेरी की गुफा का चित्र स्पष्ट रूप में दिखाई देता है।

यूरोप में 'वैज्ञानिक क्रांति' और 'ज्ञानोदय' के विकास के साथ ही इतिहास लेखन में एक बदलाव स्पष्ट हो गया और विकास की कहानी, पर्यावरणीय कारकों को ध्यान में रखते हुए, एक स्पष्ट स्थान खोजने लगी। हालांकि, प्रथम विश्व युद्ध के बाद की अवधि में ही ऐतिहासिक विकास को प्रभावित करने और आकार देने के रूप में भौगोलिक कारकों को शामिल करते हुए ऐतिहासिक लेखन दिखाई दिया। इस दिशा में एक व्यवस्थित खोज फ्रांस में एनालेस स्कूल की स्थापना के साथ शुरू हुई। यहीं पर प्रचलित पर्यावरणीय परिस्थितियों के व्यापक संदर्भ में इतिहास की जांच करने की प्रवृत्ति शुरू हुई थी। इसी तरह, प्रदूषण के खिलाफ आंदोलन ने अमेरिका में इतिहास लेखन में पर्यावरण संबंधी चिंताओं को जगह दी। 'लेकिन इन सबके बावजूद, यह भी मामला है कि केवल पिछले पच्चीस वर्षों में इतिहासकारों ने इस इंटरचेंज (मनुष्यों के अपने प्राकृतिक पर्यावरण के साथ आदान–प्रदान) की एक अलग शाखा स्थापित करने की प्रक्रिया में व्यवस्थित रूप से व्यवस्थित अन्वेषण किया है। इतिहासः पर्यावरण इतिहास 'पर्यावरण' और 'पारिस्थितिकी' शब्द पिछले बीस वर्षों के दौरान परिभाषा में व्यापक प्रयासों के अधीन है। पहले से ही उन्हें सांस लेने के लिए जगह देना जरूरी पाया गया है। तो यह पर्यावरण इतिहास' या पर्यावरण और इतिहास के साथ भी है। अधिकांश प्रतिबद्धताओं के साथ, 'कठिन' और 'नरम पदों का होना संभव है।

पर्यावरण इतिहास ज्ञान की वह धारा है जो मनुष्य के आपसी और सामुदायिक रिश्तों को प्रभावित करने वाली प्रक्रियाओं का विवेचन करती है, मानवीय रिश्तों को प्रभावित करने वाले ऐतिहासिक घटनाक्रमों के प्रकृति एवं पर्यावरण पर दूरगामी असर को जानने–समझने की कोशिश करती है। इस तरह पर्यावरण इतिहासकार मनुष्य और उसकी संस्थाओं, मसलन, राज्य, राजतंत्र, औपनिवेशिक साम्राज्य वगैरह द्वारा किये गये बदलावों के असर का भी मूल्यांकन करते हैं। यानि इतिहास लेखन की हर विधा की तरह पर्यावरण इतिहास समाज एवं अर्थव्यवस्था में हुए बदलावों पर तो गौर करता ही है, इन परिवर्तनों के प्राकृतिक वातावरण पर पड़े प्रभाव का भी अध्ययन करता है और इन बदलावों को ऐतिहासिक क्रम में पिरोता है। डोनाल्ड वर्स्टर अपनी पुस्तक 'द एंड्स ऑफ द अर्थ' में लिखते हैं कि पर्यावरण इतिहास हमें अतीत को देखने की नई दृष्टि प्रदान करता है और उसमें हमारा नजरिया बदल देने की की अद्‌भुत क्षमता है। वे कहते हैं कि पिछले कुछ वर्षों में विकसित सामाजिक इतिहास

की धारा से जैसे इतिहास के अध्ययन में क्रांतिकारी परिवर्तन आ गया है, उसी तरह पर्यावरण इतिहास भी यह उद्घाटित करता है कि विशाल साम्राज्य की महत्वाकांक्षाओं और विस्तार की योजनाओं ने पृथ्वी के वातावरण को कितना नुकसान पहुंचाया है।

यह भी कहा जा सकता है कि पर्यावरण इतिहास किसी परिभाषित सिद्धांत की कसौटी पर ऐतिहासिक घटनाक्रमों को समझने की कोशिश नहीं करता है, बल्कि यह अतीत एवं वर्तमान के बीच एक संवाद की स्थिति बनाता है, ताकि भविष्य के लिए कोई दिशा–निर्देश भी मिल सके। यह विचारधाराओं के परे एक ऐसे भविष्य की परिकल्पना करता है जिसमें पृथ्वी की तेजी से बढ़ रही पारिस्थितिक दुर्दशा पर काबू पाया जा सके। पर्यावरण इतिहास कई बार परिवर्तन की कहानी के साथ–साथ मानव समुदाय की परंपरागत प्रथाओं से मनुष्य के दूर चले जाने के प्रभाव का भी अध्ययन करता है। इतिहास अध्ययन की यह नई विधा अपने इसी स्वरूप के कारण मुख्यधारा के इतिहास विभाजन को भी चुनौती दे रही है। यानी इसमें मानव समाज के इतिहास को कालखंड के आधार पर प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक जैसे खांचों में बांटने के बदले विषय के आधार पर अलग करने पर जोर है। इसमें इतिहासकार की दिलचस्पी समय और स्थान के परिप्रेक्ष्य में बड़े परिवर्तनों को बतलाने में होती है। इस क्रम में उसे कई विषयों का सहारा लेना पड़ता है, मसलन, भूगोल, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र, मानव–विज्ञान, राजनीति शास्त्र इत्यादि।

जॉन मैकनिल कहते हैं कि सदियों से इतिहासकारों का व्यवहार ऐसा रहा है जैसे कोई नशे में धुत आदमी अपनी कार की खोई चाभी सड़क पर बिजली के खंभे की रोशनी में तलाश रहा हो। वह आदमी ऐसा इसलिए नहीं करता है क्योंकि वहीं चाभी खोई है, बल्कि इसलिए करता है क्योंकि वहीं रोशनी है। कहने का मतलब यह कि पर्यावरण इतिहासकार को अधिक आसान और स्पष्ट क्षेत्रों की बजाय नये अंधेरों में जाने का मौका मिलता है जिन पर अभी तक रोशनी नहीं पड़ी है। इसी वजह से वह इतिहास के ऐसे पहलुओं को खोज निकालता है, जिन्हें जानकर हम चौंक उठते हैं। जे. आर. मैकनिल, 'ड्रन्क्स, लैम्पपोस्ट एंड एनवायर्नमेंटल हिस्ट्री', एनवायर्नमेंटल हिस्ट्री, अ. 10, दव. १ (जनवरी २००५), पृ. 64.

हालांकि मुख्यधारा के इतिहासकार पारिभाषित सीमाओं के बाहर इतिहास को समझने की कोशिशों की आलोचना करते हैं। कई बार तो इसे सतही तौर पर लिखा गया इतिहास भी कहा जाता है। इतिहास के तहत दूसरे विषयों के विपरीत, पर्यावरण इतिहास को एक विशेष कठिनाई भी झेलनी पड़ती है। उदाहरण के लिए, लैंगिक इतिहास का कोई लेखक इतिहास के पारंपरिक तरीकों को इस्तेमाल कर पाता है। बेशक, उसका विषय अलग है, लेकिन समाज और समस्याओं को समझने के बुनियादी तरीके मानविकी और समाज विज्ञान के ही होते हैं। इस तरह लैंगिक इतिहास का शोधकर्ता एक परिचित जमीन पर काम कर रहा होता है। लेकिन पर्यावरण इतिहासकार को प्रासंगिक साहित्य एवं अभिलेखीय सामग्री को समझने में सक्षम होने के लिये प्राकृतिक विज्ञान के विषयों से भी परिचित होना पड़ता है। इसके अतिरिक्त उसे वैज्ञानिक मानदंडों और दर्शनों को भी समझना होता है। इस प्रकार पर्यावरण इतिहासकार के लिये स्रोत सामग्री मौखिक इतिहास एवं लिखित दस्तावेजों से लेकर विज्ञान के आंकड़ों मसलन प्रदूषण के स्तर वगैरह तक फैली होती है। मेरा यह मानना है कि पारंपरिक इतिहास के बदले पर्यावरण इतिहास के शोधकर्ताओं को प्राकृतिक विज्ञान एवं समाज विज्ञान के बीच संबंधों को समझने का ज्यादा प्रयास करना पड़ता है और समय लगाना पड़ता है क्योंकि ये दोनों विधाएं मूल रूप से

भिन्न–भिन्न हैं। इसमें कोई दो राय नहीं कि पर्यावरण इतिहास के शोधकर्ताओं को इस प्रयास में इतिहास की मुख्यधारा एवं विज्ञान दोनों की आलोचना और उपेक्षा झेलनी पड़ती है। विज्ञान की हेकड़ी तो समझ में आती है, लेकिन समाज विज्ञान की नाराजगी थोड़ी अजीब लगाती है। संभवतः इसकी बड़ी वजह यह है कि समाज विज्ञान के विद्वानों जैसे, एडम स्मिथ, कार्ल मार्क्स, मैक्स वेबर की उत्कृष्ठ कृतियों में प्रत्यक्ष रूप से पर्यावरण पर कुछ भी नहीं कहा गया है।

मैं ऐसा मानता हूं कि पर्यावरण इतिहास की अपनी अलग पहचान बनाने के लिए यह आवश्यक है कि इस क्षेत्र में शोध कर रहे शोधार्थी अतीत में भूगोल, पारिस्थितिकी की दशा इत्यादि जैसे इतिहास के रूढिवादी मुद्दों से बाहर निकलें। तात्कालिक पर्यावरण की समस्याओं को समझने के लिए ऐतिहासिक तथ्यों को पुनः टटोलने कोई बुराई नहीं है। इसी प्रकार, विज्ञान की आलोचना को नजरअंदाज करके हमें वैज्ञानिक जानकारियों के जरिए समाज पर पड़ रहे प्रभावों का विश्लेषण करना चाहिए। आने वाले दशकों में पर्यावरण इतिहास एक प्रमुख विचारधारा के रूप में उभरने की क्षमता रखता है क्योंकि वह वर्तमान की समस्याओं से जुड़ा है, और इतिहास को पारंपरिक तरीकों के अतिरिक्त नए प्रकार के श्रोतों से लैश करता है।

डोनाल्ड वर्स्टर भी इतिहास के चारों तरफ दीवार खड़ी करने के विरोधी हैं। वे कहते हैं कि ऐसा लगता है मानो प्रकृति ने पत्थर पर लकीर खींच दी है कि जल–चक्र, वनों की कटाई, जानवरों की आबादी, मिट्टी की पोषकता इत्यादि विषय विज्ञान के लिए आरक्षित हैं, जबकि इतिहास को कर, कूटनीति, राजनीति, संघर्षों, समाज एवं संस्कृति तक सीमित रखना होगा। डोनाल्ड वर्स्टर, द टू कल्चर रिविजिटेड : एनवायर्नमेंटल हिस्ट्री एंड एनवायर्नमेंटल साइंसेज, एनवायरनमेंट एंड हिस्ट्री, 2(1886), पृ. 5

यह कहना पूर्णतया गलत होगा कि समाज विज्ञान सामाजिक मुद्दों से जुड़ा है और एक सामाजिक मुद्दे की व्याख्या सिर्फ दूसरे सामाजिक मुद्दे से ही की जा सकती है। इससे एक विधा के रूप में इतिहास का भविष्य खतरे में पड़ सकता है। पर्यावरण इतिहास गैर–सामाजिक मुद्दों जैसे, नदियों, जल–व्यवस्था, भूमि–उपयोग, जंगल, इत्यादि के द्वारा समाज को समझने की कोशिश है। इस पुस्तक में इन्हीं गैर–सामाजिक मुद्दों को विखंडित कर भारत के संदर्भ में समाज पर पड़े प्रभाव को समझने का प्रयास है। यहां केवल बड़े ऐतिहासिक परिवर्तनों का जिक्र किया गया है और कई ऐतिहासिक घटनाक्रम छूट भी गए हैं। इसका यह मतलब कतई नहीं है कि वे पर्यावरण इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं।

ग्रन्थ सूची :-

1. ए बी मैकनील 2003, पीपी। 5:43, व्हाइट देखें 1985
2. ए बी ह्यूजेस 2008, पी. 8
3. क्रेच, मैकनील और मर्चेंट देखें 2003
4. ह्यूजेस २००६, पीपी. ५३–६३

sinha5272@gmail.com

manish11045@gmail.com M. 9111211376

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 114–121

NATIONAL MISSION ON LIBRARIES

ANIL KANT SAHU
(M.Lib.I.Sc- Gold Medalist)
Librarian (Guest), Govt. M.M.R Post Graduate College, Chhattisgarh

Abstract :

The National Mission on Libraries is a government initiative aimed at revitalizing and modernizing libraries across the country to meet contemporary informational and educational needs. Launched with the objective of transforming libraries into dynamic knowledge hubs, the mission emphasizes upgrading infrastructure, enhancing digital resources, promoting inclusive access, and fostering a culture of reading and research. By integrating technology and innovative practices.

Keywords : National Archives of India (NAI), Library Modernization, Digital Resources, National Mission for Manuscripts (NMM).

Introduction :

Since the dawn of civilization, human beings have communicated through gestures, symbols, sounds, words, and written media such as clay tablets, papyrus, parchment, and palm leaves. The beginning of the 15th century heralded the use of printed books and journals, and more recently, communication through electronic media. The National Archives of India (NAI) and the National Mission for Manuscripts (NMM) are the two national agencies entrusted with the responsibility of preserving invaluable archival records. NAI serves as the custodian of these records and is dedicated to the welfare and development of archives and the archival profession. NMM locates and catalogues rare documents available in the remotest parts of the country. The aim of the present study is to investigate and study the role of these agencies in the preservation and conservation of rich national heritage records so that the content enshrined in them continues to inform and educate users forever.

Statement of the Problem :

The problem involves a systematic study of the preservation and conservation of manuscripts and rare documents in the National Archives of India and selective Manuscript Resource Centres

(MRCs) of the National Mission for Manuscripts. The study aims to assess the existing preservation scenario and add new scientific dimensions to the current state of preservation and conservation of manuscripts and rare documents in these institutes. The study also aims to assess the problems faced by these institutes and suggest probable solutions.

Objectives of the Study :

- To ascertain the types of documents available in NAI and MRCs of NMM.
- To investigate the methods employed for storing rare documents and manuscripts.
- To identify the problems faced by NAI and MRCs of NMM in preserving precious records.
- To thoroughly study the techniques and procedures used by these agencies.
- To suggest solutions to the problems faced by NAI and MRCs of NMM.

REVIEW OF LITERATURE :

Basu (1950) conducted a study onMuseum method and the process of cleaning and preservation/library preservation. This perhaps is the oldest doctoral research in the field of Library and Information Science (LIS). The findings of the study do not provide much help in the present scenario.

Shukla (1980) describes the issues which come in the way of preservation of library materials such as dust, insects, termites, dampness, etc. He explains the preventive steps and treatment required for effective preservation of library materials.

Chandel & Kumar (1981) state that there is an alarming increase in deterioration of reading materials in libraries. They observe that library staff and readers are not careful in handling documents. The paper suggests that careful handling and proper shelving can provide longevity to documents and describe some important measures for environmental and insect control.

PRESERVATION OF WRITING MATERIALS IN ANCIENT TIME :

- The preservation of written records has been a concern since the inception of writing itself. The challenge of safeguarding rare documents, manuscripts, and ancient records dates back to early civilizations. For instance, early Mesopotamians faced issues with bookworms that damaged clay tablets
- In ancient Egypt, due to the scarcity of clay in the Nile Valley, papyrus was used to create a paper-like material. Although papyrus was better for writing than clay, it was less durable.
- The library of Rameses II, dating back to 1200 B.C., likely contained a variety of materials used for writing at that time, including clay from other regions, papyrus, palm leaves, wooden pallets, bark, linen.
- By the time of the Alexandrian Library and other Greek and Roman libraries, parchment and

vellummade from lime-treated skinsbecame more common, offering greater durability. However, storing these documents still posed challenges.

- As printing technology advanced and the number of books grew significantly, so did the challenges of preserving them. Librarians and book collectors quickly recognized the dangers of dampness and understood the need for regular cleaning, airing, and careful exposure to sunlight to maintain their collections.

THE NATIONAL ARCHIVES OF INDIA :

The National Archives of India (NAI) is the leading national institution housing valuable archival records. Under the Public Records Act of 1993 and the Public Record Rules of 1997, NAI is designated as the custodian of all historical records from the Government of India, its predecessor bodies, and the former British Residencies in the old Indian princely states. These records are available for study and use by scholars and administrators. NAI has the dual responsibility of storing, disseminating, preserving, and conserving the country's heritage records, which contain rare and invaluable information. This institution is crucial for researchers and administrators looking to explore India's social, cultural, political, economic, and historical past.

NAI originated as the Imperial Records Department, established in March 1891 in Calcutta (now Kolkata). After the capital was moved from Calcutta to New Delhi in 1911, the department relocated to its current site in 1926. It was renamed the National Archives of India on August 30, 1947. Today, NAI is considered one of Delhi's premier intellectual destinations and operates as an attached office of the Ministry of Culture, Government of India.

MISSION :

The archives strive hard to help in spreading a sense of national pride in our documentary cultural heritage and ensuring its preservation for the future generation. The broad objectives of NAI are :

- To encourage scientific management, maintenance and conservation of records.
- To build up closer relations between archivists, archival institutions and archival profession in India and overseas.
- To encourage access to available holdings.
- To develop professionalism and a scientific temperament among curators, custodians and users.

RECORD HOLDINGS :

The National Archives of India (NAI) boasts an extensive collection of around five million records. While the main series of records begins in 1748, there are also some rare documents from earlier periods. These records are not only in English but also in a variety of languages including

Arabic, French, Hindi, Persian, Sanskrit, Urdu, Tamil, and Telugu. The NAI's collection includes documents on various materials such as paper, palm leaves, and birch bark.In 1991, a building was added, providing 40 kilometers of linear shelf space for storage.

The records at NAI can be broadly classified into four categories :

1) Public Records, **2)**Oriental Records, **3)** Manuscripts, **4)** Private Papers.

LIBRARY :

In addition to its extensive collection of public and private documents, The National Archives houses a significant and continually expanding library. This collection includes some of the oldest and most rare publications across various subjects, as well as modern published materials. The library's holdings encompass over 150,000 books, banned publications, local newspapers, journals, periodicals, parliamentary papers, and 7,500 rolls from various countries worldwide.

RECORDS MANAGEMENT :

As the central agency for the Government of India, the National Archives of India (NAI) oversees the enforcement of the Public Records Act of 1993 and the Public Records Rules of 1997. This legislation governs the management, administration, and preservation of all public records from the Central Government of India, including those from Union Territories.

REPAIR :

The Conservation Research Laboratory at the National Archives of India (NAI) is equipped with advanced paper testing machinery, including Tensile Testers, Folding Endurance Testers, and Bursting Endurance Testers, which are used to evaluate various preservation materials. The lab has pioneered the Hand-Lamination process, which employs cellulose acetate foil and tissue paper for repairing records. This technique, developed by NAI, is recognized and utilized globally.

REPROGRAPHY :

The Reprography Division at NAI is equipped with advanced machinery and not only handles preservation but also supports researchers. One of its major tasks is to create security microfilms of invaluable records as a safeguard against threats such as fire, war, and sabotage.

PROFESSIONAL COURSES :

Since 1941, the National Archives of India has been offering comprehensive training and seminars on various aspects of archival work. In 1976, the Institute of Archival Training was established, which was renamed the School of Archival Studies in 1980. The school's purpose is to address the need for skilled professionals to manage and preserve the countries archival and library resources.

PUBLICATIONS :

They publishes wide range of important works based on its extensive collections. These include

notable series such as 21 volumes of Fort William-India House Correspondence, Selections from Elphinstone Correspondence, Selections from Educational Records, Calendar of Persian Correspondence, Index to Foreign and Political Department Records, Bulletin of Research Theses and Dissertations, National Register of Private Records, and Catalogue of Seals.

OUTREACH PROGRAMMES :

To enhance archival awareness, the National Archives of India (NAI) organizes thematic exhibitions and Archives Week annually. During these events, visitors are given guided tours of the Archives and introduced to its various activities. Additionally, an Archival Museum was established in July 1998, which is open to scholars on all working days, providing them with access to valuable archival resources and exhibits.

LECTURE SERIES :

They launched monthly lecture series that covers a range of topics, including archival collections both in India and internationally, archives and records management, conservation, digitization, and outreach programs.

GRANTS-IN-AID :

The National Archives of India offers the following financial assistance schemes :

1) **Financial Assistance Scheme**: Provides support to States/Union Territories, archival repositories, government libraries, and museums.

2) **Preservation Assistance Scheme**: Offers funding for the preservation of manuscripts and rare books at non-governmental institutions

E-GOVERNANCE :

The National Archives of India serves as the principal archival authority for the Government of India under the Public Records Act. It is pivotal in creating guidelines and strategies for the management of electronic records, helping to establish long-term policies for their use across Government Ministries and Departments.

National Mission for Manuscripts (NMM) :

This was established on February 7, 2003, by the esteemed former Prime Minister and renowned writer Atal Bihari Vajapayee, marking a significant initiative under the Tenth Five Year Plan. Administered by the Ministry of Tourism and Culture, Government of India, with the Indira Gandhi National Centre for the Arts (IGNCA) as its nodal agency, NMM represents the first comprehensive national effort to reclaim India's rich manuscript heritage, which contains rare and invaluable content. Its major objectives include locating, documenting, conserving, digitizing, and disseminating the manuscript resources of India, thereby ensuring their accessibility for future generations.

STRUCTURE OF THE MISSION

This Mission is organized into four key committees :-

1) **National Empowered Committee**: Oversees the overall strategic direction and high-level policy decisions of the Mission.
2) **Executive Committee**: Manages the day-to-day operations and implementation of the Mission's activities.
3) **Finance Committee**: Handles financial planning, budgeting, and expenditure oversight to ensure efficient use of resources.
4) **Project Monitoring Committee**: Monitors and evaluates the progress and effectiveness of various projects undertaken by the Mission.

DOCUMENTATION :

They are actively involved in the meticulous documentation of manuscripts across India through its initiative known as Kritisampada, which serves as a National Database of Manuscripts. This electronic repository currently houses information on approximately more than 18lakhs manuscripts and is accessible through the NMM's official website.

Kritisampada serves as a comprehensive resource containing detailed information about manuscripts found in a wide array of institutions, including religious, cultural, and educational organizations, as well as private collections throughout the country.

CONSERVATION AND PRESERVATION :

India's cultural heritage encompasses both tangible and intangible aspects. Among its tangible elements are manuscripts, paintings, and books, which serve as profound reflections of various facets of Indian life, including lifestyles, religions, traditions, cultures, civilizations, technologies, sciences, and historical references.

DIGITISATION :

In 2004, the National Mission for Manuscripts (NMM) launched a Pilot Project for Digitisation with the goal of digitising various repositories of manuscripts across India.By 2006, the Pilot Project had concluded successfully, during which the Mission established standards and guidelines for the digitisation process.

In the second phase of digitisation, the Mission focused on selecting important collections from a diverse array of institutions nationwide. This phase represented a strategic effort to expand the scope of digitisation efforts and encompass a broader range of manuscripts.

PUBLIC OUTREACH :

NMM also conducts outreach events to engage with communities and institutions holding

manuscripts, emphasizing their importance and encouraging their preservation. Training programs are provided to enhance skills in manuscript handling, digitization, and conservation practices.

MANUSCRIPTOLOGY AND PALAEOGRAPHY :

The manuscript tradition of India is exceptionally diverse, encompassing a wide range of languages and scripts. Unfortunately, in contemporary research, there is a noticeable lack of expertise in deciphering and interpreting these ancient scripts, which poses a significant challenge to studying and comprehending this rich textual heritage.

NATIONAL DATABASE OF MANUSCRIPTS-*KRITI SAMPADA :*

NMMhas also established a national electronic database of manuscripts called Kriti Sampada. This database serves as a centralized repository offering detailed information about a wide variety of manuscripts, including their conservation status and more. Users can search the database using criteria such as title, author, script, language, subject, or material.

The primary goal of Kriti Sampada is to provide accurate and exhaustive information about each manuscript, ensuring researchers, scholars, and enthusiasts have access to authentic data for study and preservation purposes.

PUBLICATIONS :

The Mission publishes various books and periodicals. Some of these include Tattvabodha Vol-I, II and III; Samrakshika Vol-I and II; Samikshika Vol-I and II; Kritibodha Vol-I and Kriti Rakshana (a bi-monthly publication) (Annual Report, National Mission for Manuscripts.

FUTURE PLANS :

The various future plans of this mission are as follows :-

a) **Ongoing Training**: Continue providing training programs focused on the preservation and conservation of manuscripts.
b) **Enhancing Resources**: Strengthen the network of resource persons to support the Mission's initiatives.
c) **Digitization Efforts**: Intensify efforts in digitizing manuscripts to improve accessibility.
d) **Publication**: Publish previously unpublished manuscripts to broaden scholarly access.
e) **International Manuscript Location**: Locate Indian manuscripts held in countries such as the UK, France, Germany, USA, Canada, Australia, Thailand, Korea, Malaysia, Japan, China, Bangladesh, and Nepal.

Conclusion :

The National Mission on Libraries has emerged as a pivotal initiative in rejuvenating and expanding the library infrastructure across the country. By focusing on modernizing facilities, enhancing

digital resources, and fostering community engagement, the Mission has significantly contributed to the advancement of knowledge access and literacy.

Furthermore, initiatives aimed at training library professionals have equipped them with the skills necessary to navigate and implement technological advancements effectively.

Despite these successes, challenges remain. Issues such as uneven resource distribution, varying levels of digital infrastructure, and the need for continuous professional development highlight areas that require ongoing attention. Addressing these challenges will be crucial for sustaining the Mission's momentum and ensuring that the benefits of enhanced library services are equitably distributed.

REFERENCES

1. Agrawal, O.P. & Barkeshli, Mandana. (1997). *Conservation of books, manuscripts and paper documents*. Lucknow: Indian Council of Conservation Institute.
2. Satija, M.P. (2004). *A dictionary of knowledge organisation*. Amritsar: Guru Nanak Dev University.
3. William, Edwin E. (1978). Deterioration of library collections today. In Baker, John P. & Soroka, Marguerite C. (Eds.), *Library conservation* (p. 7). Stroudsburg Dowden: Hutchinson & Ross Inc.
4. National Mission for Manuscripts. Retrieved from https://www.namami.org
5. National Archives of India. Retrieved from https://www.nationalarchives.nic.in
6. Agrawal, O.P. & Barkeshli, Mandana (1997): Conservation of Books, Manuscripts, and Paper Documents (Indian Council of Conservation Institute, Lucknow).
7. Agrawal, O.P. (1993): Preservation of Art Objects and Library Materials (National Book Trust, New Delhi).
8. Chakaraborti, M.L. (1975): Bibliography in Theory and Practice (The World Press Private Limited, Calcutta).
9. Diringer, David (1972): Alphabet, in Encyclopedia Americana, Vol. 1, p. 168 (Americana Corporation, New York).
10. Gupta, K.K. (2010): Rare Support Materials for Manuscripts and Their Conservation (National Mission for Manuscripts, New Delhi).
11. Haupt, Mellmut Lehmann (1972): Book, in Encyclopedia Americana, Vol. 4, p. 220 (Americana Corporation, New York).
12. Mukherjee, B.B. (1973): Preservation of Library Materials, Archives, and Documents (The World Press Private Ltd, Calcutta).

aktranjeeta@gmail.com, Email id- anilkantsahu@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 122-123

Reimagining Assessment to Align with 21st-Century Skill Development

Ishika Sen
Department of Education and Humanities, Manav Rachna University.

Abstract :

In the rapid developing era of digitalization and rapid ICT advancements and dynamic demands in workforce, traditional method and model of assessment oftens lacks to capture the spectrum of 21 st century skills necessary for success. This paper gives an transformative approach of assessment in modern context that moves beyond the traditional method of rote learning and memorization and embrace and approach towards the standardized, competency based with real world practical and evolution method.

The 21st century economic advancement demands critical thinking, creative thinking, decision making, collaboration, digital literacy and adaptability. Traditional Assesments often emphasize over content retention and rote learning Inspite of practical skills application. To bridge this gap incorporating formative assessment, project- based learning and technology driven evaluation that often reflect real world challenges.

The approach of AI incorporation in assessment simulates to provide continuous feedback which foster deeper learning and skill mastery.Additionally, the approach of multiple intelligence by(Gardener,1983 in his book frame of minds) and the use in assessment where students skillfully applies knowledge across various domains to solve the complex problems which is an essential requirement in today's interconnected world.

In-service teachers and educators by a vital role in this transformation. By shifting towards a holistic assessment model they can make a significant impact in empowering the learners to empower learns in developing metacognitive skills , resilience and growth mindset. Furthermore, by redefining the strategies of assessment ensures inclusive environment of education, where learning can meet the diverse needs of the learners.

This paper presents case studies which showcase the effectiveness of redefining assessment techniques by aligning with 21 st century skill developmentwe can bridge the gap between education and industry where we can create a future ready workforce equipped which thrive in an ever- evolving global landscape.

Key words - 21st century skills, ICT advancement, Digitalization,Gardener 1983, inclusive environment.

Email id- ishika27.sen@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTILANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 124-130

नागार्जुन साहित्य में आर्थिक चिन्तन

डॉ. रंजीता कटकवार
अतिथि प्राध्यापक (हिंदी विभाग), शा.एम.एम.आर.पी.जी.महाविद्यालय, चांपा (छत्तीसगढ़)

भूमिका :-

नागार्जुन का व्यक्तित्व उस उद्यान् की भांति था। जहाँ विविध प्रकार के पुष्प अपनी मधुर मुस्कान से दर्शक, पाठकवृंद एवं सुधीजनों का मन सहज ही आकर्षित कर लिया करता था अथवा प्रभात के उस बहुवर्णिय मेघों की भांति जो अपनी छटा से लोगों के हृदय में विविध भाव भूमियों का सृजन किया करते हैं अथवा उस अथाह समुद्र की तरह जहां कभी विशाल लहरें नीला आकाश को छुने के लिए उठती एवं गिरती है कभी साहिल को स्पर्श कर लौट जाती है और जो कभी शांत स्निग्ध रूप में दर्शकों को रह–रहकर अपनी ओर बुलाता है। उनकी कविता में एक ओर जहां निम्न मध्यवर्गीय जीवन के चित्र उभरते हैं वहीं दूसरी ओर अभाव भरे जीवन की भूख और पीड़ा अपनी कहानी कहती है। यह कविता कभी राजनीति के ताने–बाने बुनकर रूपाकार ग्रहण करती है और कभी प्रकृति के बीच विचरण करती है। इसमें कहीं व्यंग्य की तीखी धार है और कहीं हास्य विनोद की मधुर छटा है। हॉ! इसमें श्रृंगार की नन्हीं–नन्हीं बुंदे भी यदा–कदा झरती है।

नगार्जुन का व्यक्तित्व अनेक अंतर्विरोध लिये हुए है। कभी वे यथार्थवादी कवि माने गये कभी ग्रामीण कवि और कभी अलंकार प्रिय रसिक कवि। एक ओर उनका कवि व्यक्तित्व संस्कृत और मैथिली परंपरा का अनुसरण करता हुआ जन–भावना के स्तर पर सौन्दर्य को ढुंढता रहा है और उसकी अभिव्यक्ति करता रहा है और कभी उसमें भारी सुनापन भी समाया हुआ है। ग्रामीण जन–जीवन से जुड़कर भी उनका काव्यात्मक सौन्दर्य बोध नई अलंकारिता से मुक्त नहीं हो सका। वह मूल्य बोध की ऐतिहासिक प्रक्रिया का सतत् विकास न कर सका और बीच–बीच में दरक गया। इसकी पृष्ठभूमि में संभवतः वामपंथी आन्दोलनों में विसंगतियों की कोई भूमिका या तद्–युगीन व्यक्तिवाद का कुछ असर था जिनके कारण नागार्जुन जनोन्नमुख होकर भी इधर–उधर यायावरों की तरह भटकते रहे।

जिस रचनाकार में यथार्थ जीवन के सत्य को अभिव्यक्त करने की जितनी क्षमता होती है, वह जनजीवन के उतने ही निकट होता है। सामाजिक जीवन ही, अभिव्यक्ति रचनाकार को जनवादी संस्कृति के व्यापक धरातल से जोड़ती है। वह शोषितों एवं पीड़ितों का पक्षधर होता है। रचनाकार की वैचारिकता संघर्ष क्रांति और नव निर्माण की शक्ति देती है। वहीं कविता जीवंत आस्था और संप्राणता का प्रतीक होती है, जो मुनष्य को केन्द्र में रखकर लिखी जाती है। इसलिए नागार्जुन का काव्य बहुरंगीय जीवन की समाज परक यथार्थता को व्यक्त करता है। आन्दोलनों के सधर्मी रहे है और अभावों में जिए हैं। यहीं कारण है कि हमारे देश के मजदूर किसानों का

सांस्कृतिक प्रतिनिधित्व करते हैं। वे हमारे उत्तने ही निकट है जितने की प्रेमचंद, निराला, रेणु आदि रहे है उनकी रचनाएँ तत्कालीन समाज, लोक जीवन और विविध आन्दोलनों का ऐतिहासिक दस्तावेज बन गई है।'.....[1]

इसी संदर्भ में श्री अरूण कमल जी लिखते है। 'यह शतरंज सा संसार उनकी कविताओं की आधार भूमि है इसी के सुख–दुख का बखान उन्होनें किया है इसी की चालों और दावों को विषय बनाकर उन्होनें अपनी राजनीतिक कविताएँ लिखी है। बड़ी बात यह है कि इस शतरंज संसार में नागार्जुन ने कभी अपने को प्रतिपक्षियों का मोहरा बनने नहीं दिया।.....[2]

आर्थिक :–

मनुष्य की चिन्तन शक्ति के साथ ही आर्थिक चिन्तन का जन्म हुआ है। मानव विचार के इतिहास में नियमों का विकास भले ही हाल ही में हुआ हो परंतु अर्थ संबंधी बातों के बारे में चिन्तन मनन और किसी हद तक विचार विमर्श तभी से चला आ रहा है। जब से मनुष्य ने विचार करना शुरू किया था। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मनुष्य प्रारंभ से ही आर्थिक प्रयास करता रहा है। जैसे–2 आर्थिक प्रगति होती गई, आवश्यकताओं का भी विकास हुआ और मनुष्य के आर्थिक प्रयत्नों का स्वरूप भी बढ़ते हुए परिवेश में ढ़लने लगा। पाषाण युग में मनुष्य पत्थरों से जंगली जानवरों का शिकार करता था। उस समय उसकी आवश्यकताएँ सीमित थी किन्तु आज वैज्ञानिक युग में मशीनों, यंत्रों, वैज्ञानिक प्रयोगों एवं नवीन आविष्कारों ने मानव प्रयासें की दिशा ही बदल दी। देखा जाये तो पहले का जीवन स्थिर था किन्तु आज का जीवन बहुत अधिक जटिल एवं गतिशील है।

प्राचीन युग में भारत में आर्थिक विचारों का उल्लेख मिलता है। यद्यपि इन विचारों पर धार्मिक तथा नैतिक विचारों की उतनी प्रधानता नहीं मिलती क्योंकि बाह्य आक्रांताओं के आक्रमण के कारण लोगों का जीवन छिन्न भिन्न हो गया था। मध्य काल में आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था नष्ट भष्ट हो गई थी। इस युग में भारतीय कवियों एवं साधु संतों के विचारों में यत्र–तत्र आर्थिक विचार मिलते है। जिन्होने आर्थिक समानता पर बल दिया तथा जाति भेद मिटाने का समर्थन किया।

आर्थिक चिन्तन का इतिहास :–

मनुष्य आर्थिक उन्नति के इतिहास से संबंध रखता है। इसके अन्तर्गत वाणिज्य, औद्योगिकी बैंकिंग इत्यादि आर्थिक क्रमिक विकास का अध्ययन किया जाता है। मानव समाज द्वारा भिन्न–2 आवश्यकताओं की पूर्ति एवं संतुष्टी के लिए विभिन्न संस्थाओं, उद्योगों यातायातों आदि आर्थिक संस्थाओं की स्थापना की गई इन सभी का क्रमिक अध्ययन आर्थिक चिन्तन की विषय सामाग्री है।

प्रो. हेने के अनुसार 'आर्थिक इतिहास का संबंध व्यापार, उद्योग और अन्य आर्थिक घटनाओं के इतिहास से है जिसका संबंध स्थूल रूप से मनुष्य के जीविकोपार्जन के साधनों से है।'....[3]

आर्थिक चिन्तन का महत्व :–

आर्थिक चिन्तन का इतिहास और आर्थिक चिनतन में घनिष्ट संबंध है। मनुष्य का चिन्तन अपने आस–पास के वातावरण से प्रभावित होता है। एक आर्थिक विचारक अपने चारों ओर के आर्थिक समस्याओं के बारे में सोचता और विचारता है। आज आर्थिक समस्याएँ बहुत विकराल हो गई है। ये विचार प्राचीन या मध्यकालिन विचारों के कल्पना से परे थे। निःसंदेह मानव विचार उसके वातावरण पर आश्रित रहते हैं। कदाचित

इसलिए युग के आर्थिक चिन्तन, उस युग के वातावरण द्वारा प्रेरित होते हैं और उसी के साँचे में ढ़ले रहते हैं। देश में वर्तमान कालिन समाजवादी विचारधारा भी प्रचलित आर्थिक वातावरण द्वारा अत्यधिक प्रभावित है।

आजकल आर्थिक विचार का महत्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। ये विचार तत्कालिन विचार से प्रभावित होते है। सत्य तो यह है कि आर्थिक विचारों से व्यक्ति लाभान्वित हो सकता है। आर्थिक चिन्तन के अध्ययन से उसमें क्रमबद्धता स्थापित की जा सकती है तथा आर्थिक विचारों की पृष्ठभूमि को समझने के लिए उनका अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। आर्थिक चिन्तन से हमें अर्थ के उद्‌गम स्वभाव एवं क्षेत्र को समझने में सहायता मिलती है। आर्थिक चिन्तन में आदर्श एवं जन कल्याण की बातें होती है। मनुष्य के दृष्टिकोण को आर्थिक चिन्तन वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान है।

नागार्जुन साहित्य में व्यक्त आर्थिक चिन्तन :-

साहित्य में साहित्यकारों ने आर्थिक चिन्तन को अहम भूमिका दी है। हर व्यक्ति समाज में रहकर अपना जीवनयापन करता है। जिसे अपना तथा अपने परिवार का भरण–पोषण करने के लिए 'अर्थ' की आवश्यकता होती है। चाहे वह समाजशास्त्री हो, अर्थशास्त्री हो या कोई रचनाकार हो या आम आदमी हो ! अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए आर्थिक चिन्तन की महत्ता होती है।

मानव जीवन ने जहाँ एक ओर सामाजिक, राजनीतिक चिन्तन पर अपना विचार प्रस्तुत करता है तो वहीं दूसरी ओर आर्थिक चिन्तन में भी वह सदैव तत्पर रहता है। बिना किसी चिनतन के किसी कार्य का सृजन नहीं किया जा सकता। साहित्य में रचनाकारों ने जहाँ अपनी लेखनी चलाई वहाँ आर्थिक दृष्टि से अछुता न रहा है। गरीबी, बेरोजगारी, निराशावाद को जन्म देने वाली आर्थिक व्यवस्था है।

साहित्यकारों ने अपनी साहित्यिक कलाओं के माध्यम से लोगों के वास्तविक आर्थिक जीवन शैली का चित्रण अपनी रचनाओं में उतारने का प्रवास सदैव किया है।

नागार्जुन की रचनाओं में भी आर्थिक चिन्तन स्पष्टतः दिखाई देता है। उनकी कविताओं कहानियों तथा उपन्यासों में भी आर्थिक रूप से चिन्तन मनन करके देश की जनता के जीवन में हो रहे उतार–चढ़ाव को सामने लाने का प्रयत्न किया गया है।

साहित्य की मुख्यधारा में यहीं लोग कीर्ति स्तंभ के रूप में दिखाई दे रहे है। जिन्होंने यह समझ–बूझकर अपने सृजन की दिशा तय की कि बदलते हुए समाज में किस बात से साधारण जनता का हित होगा, कौन सा पथ इतिहास को प्रगति की राह पर आगे बढ़ायेगा। हमारे अपने समाज में ही नहीं, संसार के अन्य देशों के समाज में भी अब यहीं देखा गया है कि वर्ग–विग्रह पर आधारित सभ्यताओं में अधिकांश श्रेष्ठ साहित्य अस्तित्व परक संघर्ष के बीच ही रचा गया है।

नागार्जुन की कविताओं में आर्थिक चिन्तन की झलक दिखती है। उनकी कविताओं का गहरा संबंध आदमी की दम तोड़ती जिन्दगी की तकलीफों और संघर्षों को लेकर उनकी संवेदना से है लेनिन के प्रति नागार्जुन की श्रद्धा इसलिए है कि वे श्रमिक जनों के लिए सुखद सुजान, भूख हडताल के प्रतिकार, दलित वर्ग के तारनहार बनकर आये, उन्होंने विषमता के प्राचीर को ढहा दिया।

नागार्जुन की यह संवेदना ही अन्याय, दमन और शोषण के विरोध में अवाज उठाने वाली है। धनिक जनों की सम्पदा और साधारण जनों की विपदा से संबंधित है। साधारण जन तरह–तरह के अमानुषिक और अप्राकृतिक

विधि निषेधों में उलझाता है। जीवन को निरर्थक मानकर उससे पलायन करने की सोचता है।

हमेशा से पंजी पति वर्ग और आम जन में जन–संघर्ष होते रहता है। यही कारण है कि नागार्जुन 'हे हमारी कल्पना के पुत्र, हे भगवान् कहकर मानव चेतना से दैवीय शक्तियों का आतंक उतार फेंकते हैं। वे परम्परा से जड़ते है लेकिन उसे अविवेक पूर्ण स्वीकार नहीं कर लेते। यह नागार्जुन की काव्य चेतना का मानवतावादी आधार है। नागार्जुन का यह मानवतावाद एक तरफ 'वैज्ञानिक चिन्तन' की आरे अभिमुख है और दूसरी तरफ समाज के अन्तर्विरोधों के खिलाफ एक सजग रचनाकार की तीव्र प्रतिक्रिया से संबंध है।

नागार्जुन द्वारा लिखित कविता 'अन्न पच्चीसी' में अन्न ब्रम्हा की माया बताया गया है। गरीब जनता अन्न के लिए तरस रहे हैं और भूखे मर रहे हैं लेकिन उन्हे अपना पेट भरने के लिए अन्न के दाने नसीब नहीं हो रहें हैं क्योंकि बड़े–बड़े व्यापारी अपने गोदामों में आनन को बंद करके रख लिए है तथा ऊँचे दामों में उसे बेचते है। गरीब जनता आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण उन्हे खरीद नहीं पाते हैं–

गोदामों में अन्न कैद है, पेट–पेट है खाली भूख–पिशाचिन बना रही है, द्वार–द्वार पर थाली दो चाहे हिंसा की देवी को गाली पर गाली बलि पशुओं की ले रही है, खप्पर लेकर काली गोदामों में अन्न कैद है, पेट–पेट है खाली।

अन्न ब्रम्ह को भूल गई क्या वीणा–पुस्तक वाली?
शीश महल में बनता है कवि नायलन की जाली।
कुछ आँखों का काजल देखा कुछ गालों की काली
भुला दिया है कटु सत्यों को देखों खामख्याली
अन्न ब्रम्हा को मूल गई क्या वीणा–पुस्तक वाली।....[4]

आज बदलते हुए परिवेश में महंगाई इतनी बड़ गई है कि गरीब आदमी केवल दो वक्त का भोजन ही बड़ी मुश्किल से जुटा पाता है उनके लिए भौतिक सुख–सुविधा का लाभ उठाना मानों सपना सा रह गया है। देश के बड़े अमीर जनता जिन्होंने बड़े नियम–कानून बनावे और अपने लिए उसे तोड़ देते है, परंतु गरीब जनता महँगाई के कानुन नहीं तोड़ते हैं :–

पैटन टैक उन्होने तोड़े
महँगाई का टैक कौन तोड़ेगा?
सैवर–जेट विमान गिराए उन हाथों ने
जातिवाद के सम्पाति की चोंच कौन झाड़ेगा?
डटे हुए हैं वे भौगोलिक सीमाओं पर
आर्थिक हित के छोरों की निगरानी कौन करेगा?.....[5]

खड़ाऊँ थी गद्दी पर
कर रहा था नाम राज
हवा लगी पूछने
कहाँ गय काम राज
सोना लगा हँसने लोहा लगा रोने रबड़ लगी घुलने

खादी लगी घुलने सेण्टर में वामराज,
बाकी अवामराज त्रां त्रां धिन चिन था
किट बनिया टटोलता है पाकिट
मंडियों पे छा गए, खूब चढ़े दाम राज।...[6]

सोना का दाम आसमान छु रहा था। रबड़ लगी थी घुलने अर्थात् बड़ का दाम कम था नागार्जुन द्वारा रचित कविता 'खड़ाऊँ की गद्दी पर' मँहगाई की मार इतनी थी कि कीमती वस्तु और कीमती होती जा रही थी। जिसे खरीदने के लिए आम आदमी के बस की बात नहीं थी। केवल राज नेता ही इन विलासिता पूर्ण जीवन भोग रहे थे।

शोषण के विरूद्ध आवाज उठने वाली रचनाओं में नगार्जुन की रचनाएँ भी दिव्य प्रतीत होती है। सदियों से सर्वहारा वर्ग के लोग या पूंजीपति लोग हमेशा अपना नियम–कानून लागू करते हैं और वह नियम स्वयं के लिए न बनाकर, आम जनता पर पारित करते है। मजदूरों को कम मजदूरी देकर अपना काम करवाते है।

भारत में जहाँ गरीब लोग अपना जीवन व्यतीत कर रहे है वहाँ ऊँच वर्ग के लोग गरीबों का खून चूसकर अपना महल खड़ा करते है। इसीलिए अभी तक गरीब जनता का जीवन सुपर नहीं पाया है तथा गरीब लोगों की दयनीय स्थिति रही है।

अन्न चॉबकर बैठ गए सारे भू–स्वामी
सॉप–सेज पर बेसुध लेटा अन्तर्यामी
निठुर बनो, बिल पर बिल खोदो, अन्न निकालो
शस्य–शत्रु की बातों पर तुम कान न डालो।....[7]

नागार्जुन द्वारा लिखित कविता घर से बाहर निकलेगी कैसे लाजवन्ती में कवि यह बताना चाहते है कि भू–स्वामी, गरीब लोगें से उनका भूमि छिन लेते है, गरीब किसानों से लगान लेते है। लगान न देने पर उनकी जमीन अपने नाम करा लेते है।

गरीबी के कारण जनता के वस्त्र फटे–पुराने है। जिसे पहनकर वह बाहर नहीं निकल सकते अर्थात् महँगाई इतनी बढ़ा दी गई है कि गरीब लोग आसानी से कोई वस्तु नहीं खरीद पाते :–

फटे वस्त्र हैं, घर से बाहर निकलेगी कैसे लाजवन्ती
शर्म न आती, मना रहे वे महँगाई की रजत जयन्ती
काम नहीं है, दाम नहीं है
चैन नहीं, आराम नहीं है
धुआँ भरा है दिल–दिमाग में
सुबह नहीं, शाम नहीं है
तरूणों को डाकू बनने दो...[8]

नागार्जन द्वारा रचित उपन्यास 'बलचनमा में बताया गया है कि कैसे बडे जमींदार तथा मालिक लोग गरीब तथा मजदूर वर्ग के लोगों के साथ शोषण तथा धोखाधड़ी करते है। मालिक द्वारा मजदूरों को दिये गये रकम का सूत इतना बड़ा देते है कि गरीब लोग उसे चूका नहीं पाते गरीब लोगों की जमीन मालिकों द्वारा हड़प ली

जाती है–

'मझले मालिक और बल्ली बाबू ने इसको अपने खिलाफ आन्दोलन का ओनामा संधि समझा। थी भी बात ठीक ही। इन लोगों ने सूद–दर–सूद की लपेट में पड़कर गाँव की जनता तबाह हो गई थीं। एक रूपैया साल भी में डेढ़–पौने दो रूपैया और एक मन धान महीने दो महीने बाद ही डेढ़ मन हो जाता था।'

छोटे जमींदार तो और भी कसाई होते है, एक तो करैला फिर नीम पर चढ़ा हुआ! कुछ मत पूछों भैया! मझले मालिक मारी कंजूस थे, देखते तुम तो कह उठते हाय राम, मैली धोती, पीले दाँत.... यहीं डेढ़ लाख रूपया का आदमी है ?....[9]

नागार्जुन ने अपने उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' में जमींदार तथा किसानों में हो रहे आन्दोलनों को बताया जो लोग जमींदारों के तरफ थे उन्हे खुब मुनाफा होता है उसके विपरित किसान का पक्ष देने पर कोई फायदा नहीं होता था।

निष्कर्ष :-

भू–स्वामियों को खुली छूट दे दी गई थी उसका परिणाम यह हुआ कि पोखरों और चारागाहों तक को वे चुप–चाप बेचने लगे नियम–कानून केवल आम जनता के लिए था। बडे जमींदारों के लिए कोई कानून लागू नहीं होता था–

'गरोखर और उससे पश्छिम कोस–भर का इलाका देपा के मैथिल जींदारों के अधिकार में था। कभी वे सचमुच बाब साहेब और 'सरकार' थे तिरहत के खानदानी शासक।

अब लेकिन जमींदारी उन्मूलन कानून के मुताबिक रैवतों का लगान या मालगुजारी वसुल–तहसील करने के हकों से मौकूफ हो चुके थे। व्यक्तिगत श्रोत की जमीन, बाग–बगीचे, कुओं–चमच्या और पोखर, देवी–देवता के नाम चढ़ी हुई जायदाद, चारागाह, परती–परांत, नदियों के पाट और तटवर्ती भूमि जैसी कुछ एक अचल सम्पत्तियों के मामले में जमींदारी–उन्मूलन कानून ने भू–स्वामियों को खुली छूट दे दी। नतीजा यह हुआ कि पोखरों और चारागाहों तक को वे चुपके चुपके बेचने लगे– 'आग लगते झोपड़ी जो निकले सो लाभ।'

आर्थिक चिन्तन में नागार्जुन ने, उन शोषकों के विरूद्ध अपना कलम चलाया है, जो समाज के गरीब लोगों को उधार देकर उनसे सूत समेत ब्याज ले लेते है या उनका पूरा जमीन अपने नाम करके बईमानी का परिचय देते है। तथा लोगों को आर्थिक चिन्तन प्रति सजग करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर, डॉ. संतोष कुमार तिवारी, पृष्ठ–73, प्रथम संस्करण–1980
2. आलोचना–नागार्जुन विशेषांक (1956–1957) संपादक डॉ. नामवर्शी, पृष्ठ–36
3. आर्थिक विचारों का इतिहास–वी.सी. सिन्हा पेपर बैंक डिविजन–के. एल. मलिक प्रा. लि. दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ठ–2
4. अन्न पचीसी–नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएं भाग–2 वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ–205
5. माँग रही तरूणाई वो हथियार–नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएं भाग–2 वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ–162

6. खड़ाऊ थी गद्दी पर–नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएँ भाग–2 वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली भाग–2 पृष्ठ–164
7. और बस अन्धकार है– नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएँ भाग–2 वाणी प्रकाशन नई दिल्ली भाग–2 पृष्ठ–165
8. घर के बाहर निकलेगी कैसे लाजवंती– नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएं भाग–2 वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ–197
9. बलचनमा–उपन्यास– नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएँ वाणी प्रकाशन नई दिल्ली. पृष्ठ–254

ई–मेल–aktranjeeta@gmail.com
फोन–8770809641

.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 131–136

जौनपुर जनपद के स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के व्यक्तित्व, अध्ययन आदत एवं मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन

अनिल कुमार यादव, शोध छात्र,
डॉ. राजेश कुमार सिंह, (II) शोध निर्देशक,
शिक्षक शिक्षा विभाग, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर।

सार-संक्षेप :-

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य जौनपुर जनपद के स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व, अध्ययन आदतें एवं मानसिक स्वास्थ्य का विश्लेषण करना है। इसमें विद्यार्थियों के व्यक्तित्व की विशेषताएँ, अध्ययन की आदतों की प्रवृत्तियाँ तथा मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित समस्याओं की पहचान की जाएगी। अध्ययन से यह भी स्पष्ट होगा कि इन तीनों पहलुओं के बीच आपसी संबंध किस प्रकार स्थापित होते हैं। इससे प्राप्त निष्कर्ष शैक्षिक संस्थानों, अभिभावकों व नीति निर्माताओं के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होंगे, जिससे कि विद्यार्थियों के समग्र विकास के लिए प्रभावी रणनीतियाँ विकसित की जा सकें। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों के 'समुचित एवं समग्र विकास' के लिए शैक्षणिक प्रदर्शन पर अत्यधिक ध्यान देने के साथ–साथ 'व्यक्तिगत विकास', 'गहन अध्ययन में रुचि' उत्पन्न करने व 'मानसिक स्वास्थ्य स्तर' को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए एक "समन्वित एवं सुनियोजित दृष्टिकोण" अपनाना आवश्यक है।

मुख्य शब्द :- व्यक्तित्व, अध्ययन आदत, मानसिक स्वास्थ्य, शिक्षा, स्नातक स्तर।

परिचय :-

शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, वरन् विद्यार्थियों के समग्र व्यक्तित्व का विकास भी है। इसमें उनके मानसिक स्वास्थ्य, अध्ययन की आदतें एवं व्यक्तित्व की विशेषताएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जौनपुर जनपद के स्नातक स्तर के विद्यार्थियों का अध्ययन इस दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह क्षेत्रीय शैक्षिक परिवेश तथा सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभावों को समझने में सहायक होगा। व्यक्तित्व, अध्ययन की आदतें व मानसिक स्वास्थ्य तीनों एक–दूसरे से गहरे रूप से जुड़े हुए हैं। व्यक्तित्व के विभिन्न पहलु जैसे 'आत्मविश्वास', 'समय–प्रबंधन' एवं 'सामाजिक समायोजन' विद्यार्थियों की अध्ययन की आदतों को प्रभावित करते हैं। उदाहरण स्वरूप, एक अध्ययन में पाया गया कि विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम उनके शैक्षिक प्रदर्शन पर प्रभाव डालते हैं

(सिंह एवं पासवान, 2021)। अध्ययन की आदतें जैसे कि 'समय–प्रबंधन', 'लक्ष्यों का निर्धारण' एवं 'सक्रिय अध्ययन तकनीकें' विद्यार्थियों की शैक्षिक सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, एवं प्रभावी अध्ययन आदतें विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को भी सकारात्मक रूप से प्रभावित करती हैं (पोखरिया, 2024)। मानसिक स्वास्थ्य, जैसे 'तनाव', 'चिंता' तथा 'अवसाद', विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धियों तथा समग्र विकास में बाधक बन सकते हैं। एक अध्ययन में यह पाया गया कि स्नातक प्रथम सेमेस्टर के विद्यार्थियों में परीक्षा चिंता का स्तर उच्च था, जो कि उनके मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है (बाजपेयी एवं शाह, 2023)। इस प्रकार, 'व्यक्तित्व', 'अध्ययन की आदतें' तथा 'मानसिक स्वास्थ्य' इन तीनों का आपसी संबंध विद्यार्थियों के समग्र विकास में महत्वपूर्ण है। वर्तमान अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष शैक्षिक संस्थानों तथा नीति निर्माताओं के लिए विद्यार्थियों के समग्र विकास के लिए प्रभावी रणनीतियाँ विकसित करने में सहायक होंगे।

अध्ययन के उद्देश्य :-

वर्तमान शोध अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित हैं :–

– जौनपुर जनपद के स्नातक स्तर के विद्यार्थियों के व्यक्तित्व की विशेषताओं का विश्लेषण करना।

– विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों की प्रवृत्तियों एवं प्रभावों का अध्ययन करना।

– विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित समस्याओं की पहचान करना एवं उनके समाधान के उपायों का सुझाव देना।

विद्यार्थियों का व्यक्तित्व :-

व्यक्तित्व एक ऐसा जटिल मानसिक एवं भावनात्मक संरचना है जो कि व्यक्ति के 'विचारों', 'भावनाओं' तथा 'व्यवहार' को प्रभावित करती है। विद्यार्थियों के जीवन में व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव उनके 'शैक्षिक प्रदर्शन', 'सामाजिक समायोजन' तथा 'मानसिक स्वास्थ्य' पर पड़ता है (एजुरिके, 2025)। स्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्र–छात्राएँ उस अवस्था में होते हैं जहाँ उनका व्यक्तित्व 'परिपक्वता की ओर' अग्रसर होता है, ऐसे में उनके समक्ष अनेक 'मनोवैज्ञानिक' एवं 'सामाजिक' चुनौतियाँ उत्पन्न होती हैं। इनमें प्रमुख चुनौती 'आत्मविश्वास' की कमी है। अनेक विद्यार्थी विशेष रूप से ग्रामीण पृष्ठभूमि से आने वाले, प्रतिस्पर्धी माहौल में स्वयं को हीन समझने लगते हैं। यह स्थिति उनके 'शैक्षिक प्रदर्शन' पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। दूसरी बड़ी चुनौती 'समय–प्रबंधन' की है। विद्यार्थियों को अक्सर यह नहीं सिखाया जाता कि सीमित समय में अधिकतम कैसे सीखा जाए, जिससे कि वे असंगठित दिनचर्या का शिकार हो जाते हैं। इसके अलावा, एक नई शैक्षणिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि में आने पर सामाजिक समायोजन में कठिनाई अनुभव होती है, जिससे उनमें 'अकेलापन', 'तनाव' एवं 'आत्मग्लानि' जैसी मानसिक समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं (लेड एवं ट्रॉप, 2003)।

इन समस्याओं के समाधान के लिए कुछ रणनीतियाँ अपनाई जा सकती हैं। सबसे पहले, विद्यार्थियों के आत्मविश्वास को बढ़ाने के लिए उन्हें 'सकारात्मक सोच', 'आत्म–प्रेरणा' तथा 'सफल लोगों के अनुभवों' से प्रेरणा लेने हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इसके साथ ही, समय–प्रबंधन की ट्रेनिंग, जैसे 'टाइम–टेबल बनाना', 'प्राथमिकता तय करना', तथा 'अवकाश में अध्ययन' जैसी आदतें सिखाने हेतु कार्यशालाएँ आयोजित की जानी चाहिए। वहीं, सामाजिक समायोजन में सहायता हेतु परामर्श सेवाओं, समूह गतिविधियों एवं संवादात्मक सत्रों का आयोजन किया जा सकता है, जो कि विद्यार्थियों को अपने नए परिवेश में सहजता से ढलने में मदद करेंगे (औनी

एवं अन्य, 2014)। इस प्रकार, विद्यार्थियों के व्यक्तित्व को सकारात्मक दिशा में विकसित करने के लिए एक 'संगठित', 'संवेदनशील' एवं 'सहयोगात्मक वातावरण' की आवश्यकता है जो उनके शैक्षिक और मानसिक विकास में सहायक हो सके।

विद्यार्थियों का अध्ययन आदत :-

विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें उनकी शैक्षिक सफलता की नींव होती हैं। यह आदतें 'समय–प्रबंधन', 'एकाग्रता', 'अध्ययन की विधियाँ' तथा 'नियमितता' जैसे अनेक पहलुओं पर आधारित होती हैं। एक सुव्यवस्थित अध्ययन शैली न केवल परीक्षा की तैयारी को आसान बनाती है, अपितु 'आत्मविश्वास' एवं 'मानसिक स्थिरता' को भी मजबूत करती है। प्रभावी अध्ययन आदतें छात्रों में 'संज्ञानात्मक विकास' को बढ़ावा देती हैं, जिससे वे परीक्षाओं में अच्छा प्रदर्शन ही करते हैं, अपितु व्यावहारिक जीवन में भी समस्याओं का समाधान बेहतर तरीके से कर पाते हैं (क्रिस्टेंसन एवं अन्य, 1991)। जौनपुर जनपद के स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की अध्ययन–शैली विभिन्न कारकों जैसे 'पारिवारिक पृष्ठभूमि', 'सामाजिक दबाव' एवं 'शैक्षिक संसाधनों की उपलब्धता' से प्रभावित होती है। आज के डिजिटल युग में विद्यार्थियों की सबसे बड़ी चुनौती 'डिजिटल–व्याकुलता' है। 'मोबाइल–फोन', 'सोशल–मीडिया' तथा 'वीडियो–प्लेटफॉर्म' का अत्यधिक उपयोग उनकी एकाग्रता को भंग करता है (सोलो एवं अन्य, 2019)। इसके अतिरिक्त 'समय–प्रबंधन' की कमी व 'अनुशासन हीनता' के कारण विद्यार्थी अध्ययन में निरंतरता नहीं रख पाते। 'प्रेरणा की कमी' एवं 'दीर्घकालीन लक्ष्य' का अभाव उन्हें अध्ययन से विमुख कर देता है।

इन चुनौतियों से निपटने के लिए विद्यार्थियों को 'स्टडी–प्लान' एवं 'टाइम–टेबल' बनाने की शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे वे अपने समय का समुचित नियोजन कर सकें। इसके साथ ही 'डिजिटल डिटॉक्स' को बढ़ावा देना आवश्यक है, जिससे कि वे तकनीकी उपकरणों का 'संतुलित' उपयोग सीख सकें। विद्यार्थियों की अध्ययन के प्रति रुचि बढ़ाने के लिए 'मनोवैज्ञानिक परामर्श' तथा 'प्रेरणात्मक सत्रों का आयोजन' उपयोगी सिद्ध हो सकता है। 'शिक्षकों' तथा 'अभिभावकों' को मिलकर सहयोगी वातावरण प्रदान करना चाहिए, जिससे कि विद्यार्थी 'अनुशासित', 'प्रेरित' एवं 'उद्देश्य पूर्ण अध्ययन शैली' अपना सकें। इस प्रकार 'संस्थागत सहयोग', 'व्यक्तिगत अनुशासन' एवं 'सामाजिक समर्थन' से अध्ययन आदतों में सकारात्मक परिवर्तन संभव है।

विद्यार्थियों का मानसिक स्वास्थ्य :-

मानसिक स्वास्थ्य विद्यार्थियों के 'संज्ञानात्मक', 'भावनात्मक' एवं 'सामाजिक कार्य प्रदर्शन' का एक महत्वपूर्ण घटक है, जो कि उनकी 'पढ़ाई', 'संबंधों' एवं 'निर्णय लेने की क्षमता' को सीधे रूप से प्रभावित करता है। मानसिक रूप से स्वस्थ विद्यार्थी केवल पढ़ाई में ही बेहतर प्रदर्शन नहीं करते हैं, वरन् सामाजिक रूप से भी अधिक 'संतुलित' एवं 'आत्मविश्वासी' होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू0 एच0 ओ0, 2022) के अनुसार, मानसिक स्वास्थ्य का सीधा संबंध जीवन की 'गुणवत्ता' एवं 'उत्पादकता' से होता है। जौनपुर जनपद जैसे अर्ध–शहरी क्षेत्रों में यह समस्या अधिक जटिल हो जाती है, जहाँ मानसिक स्वास्थ्य को लेकर जागरूकता की कमी एवं इसे अक्सर उपेक्षित कर दिया जाता है। छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली प्रमुख चुनौतियों में सबसे पहले' पारिवारिक' एवं' सामाजिक' दबाव है, जो कि विद्यार्थियों को निरंतर अपेक्षाओं के बोझ तले दबा देता है (इकबाल एवं अन्य, 2024)। इसके अतिरिक्त, 'शैक्षणिक प्रतिस्पर्धा' एवं 'परीक्षा का तनाव' भी

विद्यार्थियों में 'चिंता', 'अवसाद' एवं 'आत्मग्लानि की भावना' को जन्म देता है। सबसे गंभीर चुनौती 'मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं' की अनुपलब्धता है, जहाँ अधिकांश शिक्षण संस्थानों में प्रशिक्षित काउंसलर उपलब्ध नहीं होते हैं।

इन चुनौतियों के समाधान हेतु अनेक उपाय अपनाए जा सकते हैं। सबसे पहले, 'महाविद्यालयों' एवं 'विश्वविद्यालयों' में 'मनोवैज्ञानिक परामर्श सेवाओं' की स्थापना की जानी चाहिए (पिज्जो एवं अन्य, 2024), जिससे कि विद्यार्थी खुलकर अपनी समस्याएँ साझा कर सकें। इसके साथ ही ध्यान एवं योग को छात्रों की दिनचर्या में शामिल कर 'मानसिक स्थिरता' तथा आत्म चिंतन की भावना को बढ़ावा दिया जा सकता है। अंततः, 'सकारात्मक संवाद' तथा 'सहयोगी वातावरण' की आवश्यकता है, जिसमें 'शिक्षक', 'अभिभावक' एवं 'समाज' एकजुट होकर विद्यार्थियों को 'भावनात्मक सुरक्षा' एवं 'प्रोत्साहन' प्रदान करें। इस प्रकार 'मानसिक स्वास्थ्य' को 'शैक्षिक विकास' का अभिन्न अंग मानते हुए, इसके लिए नीतिगत प्रयास करना समय की आवश्यकता है।

विद्यार्थियों का व्यक्तित्व, अध्ययन आदत एवं मानसिक स्वास्थ्य :-

विद्यार्थियों के "व्यक्तित्व", "अध्ययन आदतें" एवं "मानसिक स्वास्थ्य" आपस में गहरे रूप से जुड़े हुए घटक हैं, जो कि उनके 'समग्र शैक्षिक' एवं 'सामाजिक जीवन' को प्रभावित करते हैं। 'सकारात्मक व्यक्तित्व' लक्षण जैसे कि 'आत्म–नियंत्रण', 'लक्ष्य निर्धारण' एवं 'सामाजिक समायोजन' बेहतर अध्ययन आदतों को जन्म देते हैं (लाला, 2018)। इसके विपरीत, 'नकारात्मक व्यक्तित्व लक्षण' जैसे कि 'आत्म–संदेह' अथवा 'सामाजिक अलगाव' अध्ययन की 'गुणवत्ता' को प्रभावित करते हैं। "मानसिक स्वास्थ्य" इन दोनों पहलुओं का परिणाम एवं कारण हो सकता है। उदाहरण के लिए, यदि किसी विद्यार्थी का 'मानसिक' स्वास्थ्य ठीक नहीं है, तो वह समय पर पढ़ाई नहीं कर पाएगा, 'एकाग्रता' में कमी होगी एवं 'आत्म–प्रेरणा' भी प्रभावित होगी, वहीं यदि उसका अध्ययन 'अनुशासित' है तो वह निश्चित रुप से वह 'आत्मविश्वासी' है, उसके 'मानसिक समस्याओं' से उबरने की संभावना भी अधिक होती है (कार्पिनेलो एवं अन्य, 2000)। विद्यार्थियों का" व्यक्तित्व" अध्ययन की 'दिशा' एवं 'गुणवत्ता' को प्रभावित करता है, जबकि अध्ययन की आदतें उनके 'मानसिक स्वास्थ्य' को स्थिर बनाए रखने में मदद करती हैं। 'त्रि–आयामी' विश्लेषण यह बताता है कि "मानसिक स्वास्थ्य, अध्ययन एवं व्यक्तित्व के बीच द्विदिश संबंध हैं" (लैमर्स एवं अन्य, 2012)। इसीलिए इन तीनों घटकों को एकीकृत दृष्टिकोण से समझना और सुधारना आवश्यक है।

निष्कर्ष :-

जौनपुर जनपद के स्नातक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों के 'व्यक्तित्व', 'अध्ययन आदतों' एवं 'मानसिक स्वास्थ्य' के वर्तमान अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यह घटक एक–दूसरे से गहराई से जुड़े हुए हैं। एक ओर "सकारात्मक एवं आत्मविश्वासी" व्यक्तित्व अध्ययन की आदतों को बेहतर बनाता है, जो अंततः विद्यार्थियों के 'मानसिक स्वास्थ्य' को स्थिर बनाए रखने में सहायक सिद्ध होता है, दूसरी ओर, यदि विद्यार्थी अध्ययन में 'अनियमितता', 'आत्म–संदेह', या 'मानसिक तनाव' का अनुभव करता है, तो यह उसके 'शैक्षणिक प्रदर्शन' एवं 'जीवन संतुलन' को 'नकारात्मक' रूप से प्रभावित कर सकता है। प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि विद्यार्थियों के 'समग्र विकास' के लिए केवल शैक्षणिक प्रदर्शन पर ध्यान देने के साथ–ही–साथ उनके 'व्यक्तित्व विकास', 'अध्ययन में रुचि' उत्पन्न करने एवं 'मानसिक स्वास्थ्य' को सुदृढ़ बनाए रखने के लिए एक "समन्वित

दृष्टिकोण" अपनाना आवश्यक है। 'शिक्षण संस्थाओं', 'अभिभावकों', एवं 'समाज' को इस दिशा में साझा उत्तरदायित्व निभाने की आवश्यकता है, जिससे कि विद्यार्थी केवल 'शैक्षणिक' रूप से सफल होने के साथ–ही 'मानसिक' रूप से भी 'सशक्त' एवं 'संतुलित जीवन' व्यतीत करने में सक्षम हो सकें।

सुझाव :–

वर्तमान अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि विद्यार्थियों के 'व्यक्तित्व', 'अध्ययन–आदतों' एवं उनके 'मानसिक स्वास्थ्य' में संतुलन लाने हेतु एक 'समग्र' तथा 'सहयोगात्मक' दृष्टिकोण अपनाना अति आवश्यक है। सबसे पहले, 'शैक्षणिक संस्थानों' को चाहिए कि वे नियमित रूप से 'व्यक्तित्व विकास', 'सार्वजनिक बोलचाल', 'समय–प्रबंधन' एवं 'आत्म विश्वास निर्माण' से संबंधित कार्यशालाओं का आयोजन करें, जिससे कि विद्यार्थियों का 'आंतरिक विकास' हो सके। अध्ययन आदतों को सुधारने के लिए शिक्षकों को विद्यार्थियों में 'लक्ष्य–निर्धारण', 'स्व–अध्ययन की आदत', 'रिवीजन तकनीक' एवं 'समय–प्रबंधन' सिखाने पर ध्यान देना चाहिए। इसके साथ–ही, विद्यार्थियों को 'स्टडी सर्कल' जैसी गतिविधियों के माध्यम से 'सहयोगात्मक अध्ययन' के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। "मानसिक स्वास्थ्य" की दृष्टि से प्रत्येक महाविद्यालय में 'प्रशिक्षित काउंसलर' की नियुक्ति की जानी चाहिए तथा 'ऑनलाइन' व 'ऑफलाइन परामर्श सेवाएँ' उपलब्ध करानी चाहिए। अभिभावकों को बच्चों पर अनावश्यक 'शैक्षिक दबाव' न डालते हुए 'भावनात्मक सहयोग' प्रदान करना चाहिए, साथ–ही, विद्यार्थियों को 'योग', 'ध्यान', 'संगीत', 'चित्रकला', 'लेखन' जैसी रचनात्मक गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिससे कि उनका मानसिक संतुलन बना रहे। अतः उक्त सभी सुझावों के प्रभावी क्रियान्वयन से विद्यार्थियों के 'व्यक्तित्व', 'अध्ययन आदतों' एवं 'मानसिक स्वास्थ्य' में सकारात्मक तथा दीर्घकालिक परिवर्तन संभव हो सकेगा।

संदर्भ सूची :–

1. Auni, R. T., Songok, R. J., Odhiambo, O. R., & Lyanda, J. L. (2014). Determinants of guidance and counselling programme in addressing students' social adjustment in secondary schools in Siaya District, Kenya. *International Journal of Humanities and Social Sciences*, *4*(4), 69-76.https://www.academia.edu/download/83087082/8.pdf
2. Carpinello, S. E., Knight, E. L., Markowitz, F. E., & Pease, E. A. (2000). The development of the Mental Health Confidence Scale: A measure of self-efficacy in individuals diagnosed with mental disorders. *Psychiatric Rehabilitation Journal*, *23*(3), 236.https://psycnet.apa.org/doi/10.1037/h0095162
3. Christensen, C. A., Massey, D. R., & Isaacs, P. J. (1991). Cognitive Strategies and Study Habits: An Analysis of the Measurement of Tertiary Students 'learning. *British Journal of Educational Psychology*, *61*(3), 290-299.
4. Ezurike, C. A. (2025).Role of Personality Adjustment in Enhancing Emotional Well-Being of Students at the University of Nigeria, Nsukka.*International Journal of Studies in Education,*

21(1), 53-64. https://ijose.unn.edu.ng/wp-content/uploads/sites/224/2025/04/IJOSE-2025-006-Ezeurike.pdf

5. Iqbal, S., Hamdani, A. R., Mazhar, S., Munawar, A., Tanvir, M., Dogar, S. F., & Hassan, A. (2024). Exploring the Role of Parental Expectations and Pressures on Students' Academic Performance and Mental Health.*Migration Letters*, *21*(S9), 1232-1242.
6. Ladd, G. W., & Troop?Gordon, W. (2003).The role of chronic peer difficulties in the development of children's psychological adjustment problems.*Child development*, *74*(5), 1344-1367.
7. Lala, O. H. (2018). Personality Traits, Self-Regulation and Goal Self-Concordance as Predictors of Academic and Emotional Adjustments of Secondary School Students in Ogun East Senatorial District (Dissertation).Olabisi Onabanjo University, Ago-Iwoye, Nigeria.
8. Lamers, S. M., Westerhof, G. J., Kovács, V., & Bohlmeijer, E. T. (2012).Differential relationships in the association of the Big Five personality traits with positive mental health and psychopathology.*Journal of Research in Personality*, *46*(5), 517-524.https://doi.org/10.1016/j.jrp.2012.05.012
9. Pizzo, R., Esposito, G., Passeggia, R., & Freda, M. F. (2024). Psychological counselling for students in higher education: a systematic review of its effectiveness on mental health and academic functioning. *Counselling Psychology Quarterly*, 1-21.https://doi.org/10.1080/09515070.2024.2434533
10. Salo, M., Pirkkalainen, H., & Koskelainen, T. (2019). Technostress and social networking services: Explaining users' concentration, sleep, identity, and social relation problems. *Information Systems Journal*, *29*(2), 408-435.
11. World Health Organization.(2024). *Mental health of adolescents*.https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/adolescent-mental-health
12. https://www-educationalvip-com/छात्रों–के–लिए–प्रभावी–अध्ययन–की–आदतें/
13. बाजपेयी, एन0, शाह, एस0 ए0 डब्ल्यू0 (2023)। स्नातक प्रथम सेमेस्टर के विद्यार्थियों में परीक्षा चिंता स्तर का अध्ययन। इन्टरनेशनल जर्नल फॉर मल्टीडीसिप्लिनारी रिसर्च, 5(5), 1–8। https://doi.org/10.36948/ijfmr.2023.v05i05.7616
14. सिंह, पी0 के0, एवं पासवान, एम0 (2021)। स्नातक स्तर के विद्यार्थियों की सृजनशीलता का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन। GISRRJ214577|https://gisrrj.com/GISRRJ214577

ggdcresearchscholar@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 137-144

"SPEAK TO SELL" LINGUISTICS AS A MARKETING TOOL

Dr. R. Rekha, Assistant Professor , Department of BBA
Dr. J. Sajitha, Assistant Professor & Head – Department of other Languages
Dr. P. Vidhya, Associate Professor & Head -Department of BCom CS
Sri Ramakrishna College of Arts & Science, Coimbatore.

ABSTRACT :

Linguistic skills play a pivotal role in shaping effective marketing communication. From crafting compelling brand messages to adapting content for diverse cultural markets, the strategic use of language enhances consumer engagement and influences purchasing behavior. This paper explores how core areas of linguistics—semantics, phonetics, pragmatics, and discourse—contribute to persuasive messaging and brand differentiation. Through the analysis of real-world marketing campaigns and linguistic techniques, the study illustrates how language choice affects brand perception, emotional resonance, and message clarity. In an era driven by globalization and digital interaction, linguistic awareness has become essential for marketers to connect with audiences authentically. The paper also highlights the growing relevance of AI and NLP in refining marketing language for targeted communication. Ultimately, this research underscores the need for integrating linguistic training into marketing education and practice.

KEYWORDS :

Linguistic skills, marketing communication, brand language, semantics, pragmatics, discourse, consumer behaviour, advertising, NLP, cross-cultural marketing.

INTRODUCTION :

In the evolving landscape of global business, marketing is no longer limited to merely selling a product or service; it is about crafting meaningful connections with consumers. At the core of this process lies the power of language. Linguistic skills—encompassing phonetics, semantics, syntax, pragmatics, and discourse—play a vital role in shaping how brands communicate, persuade, and

influence target audiences. In a world where attention spans are short and competition is fierce, the ability to use language effectively can determine whether a campaign resonates or fails.

Marketing messages must do more than inform; they must engage, evoke emotion, and encourage action. This is where linguistic expertise becomes an essential asset. From the creation of catchy brand names and slogans to culturally sensitive translations and persuasive ad copy, every element of language used in marketing carries strategic significance. Understanding how language functions across different social and cultural contexts allows marketers to craft messages that are not only clear and appealing but also contextually relevant.

Moreover, the digital age has heightened the importance of linguistic precision. With consumers interacting across multiple platforms, messages must be tailored with sensitivity to tone, style, and audience expectations. Advances in Natural Language Processing (NLP) and AI further highlight the growing integration of linguistic tools in data-driven marketing strategies. This paper explores how linguistic skills enhance marketing effectiveness and why language is more than a medium—it is a powerful strategic tool in brand communication and consumer engagement.

THEORETICAL FRAMEWORK: LINGUISTICS IN MARKETING :

The theoretical framework in this context draws from **core linguistic disciplines** to understand how language functions as a strategic tool in marketing. The key components are :

1. Phonology and Phonetics :

Phonetics is the study of the sounds of human speech. In marketing, sound symbolism plays a crucial role in brand naming and slogan creation. Certain sounds (e.g., plosives like /p/, /k/, /t/) are found to be more memorable or energetic.

Example : Brands like *Pepsi*, *Kodak*, or *Nike* use such phonemes to create auditory appeal.

2. Morphology :

This is the study of word formation and structure. In marketing, understanding morphology helps create catchy, meaningful, and easily interpretable names. Blending, compounding, or affixation techniques are used to form new terms (e.g., *Instagram* = instant + telegram).

3. Semantics :

Semantics deals with the meaning of words and phrases. Semantic framing in marketing can influence how consumers perceive products. Choosing words with positive connotations (e.g., *pure*, *natural*, *innovative*) can significantly impact consumer response.

4. Pragmatics :

Pragmatics focuses on language use in context. In marketing, this helps tailor messages to different audience segments. Understanding how meanings change depending on situation, tone, or

culture is vital in cross-cultural or digital marketing.

5. Discourse Analysis :

This examines language in larger units such as narratives, conversations, and texts. In marketing, discourse helps create compelling brand stories, ad campaigns, and user journeys. It emphasizes coherence, tone, and emotional arcs in communication.

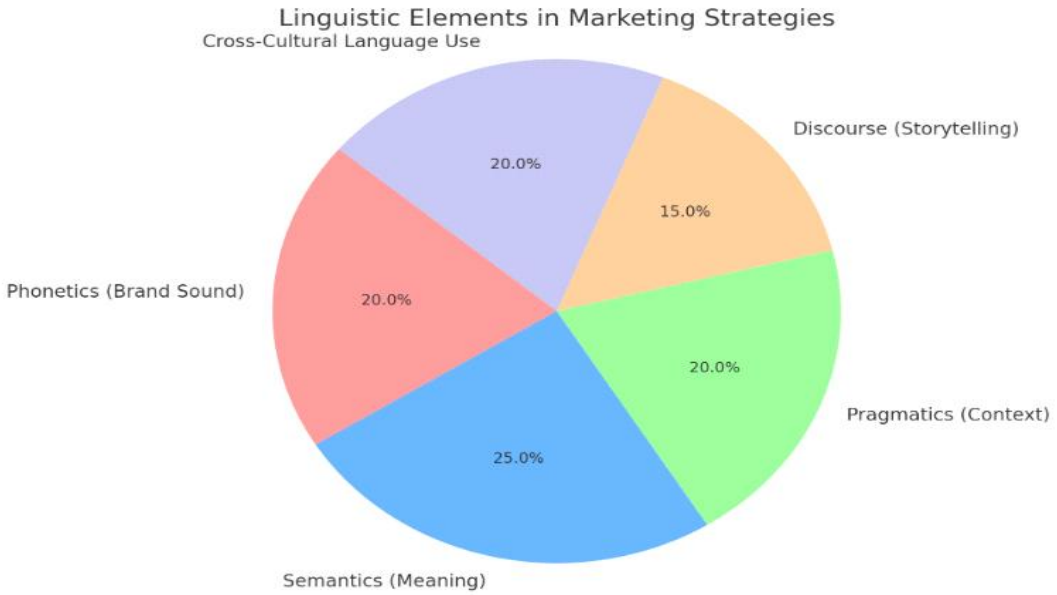

APPLICATION IN BRANDING AND NAMING :

Branding and naming are among the most critical areas where linguistic principles are actively applied in marketing. A brand name is often the first point of contact between a product and its potential consumer, and its linguistic construction can significantly influence recall, emotional appeal, and market success.

- **Phonological Appeal :**

Phonetics and phonology play a vital role in how brand names sound and how easily they are remembered. Marketers often favor plosive sounds (/p/, /t/, /k/) as they tend to create a strong auditory impact (e.g., *Pepsi*, *Kodak*, *Nike*). Euphonic names—those that sound pleasing—are more likely to stick in consumers' minds and trigger positive associations.

- **Morphological Creativity :**

Morphological techniques such as compounding (e.g., *Facebook*), blending (e.g., *Netflix* = internet + flicks), and affixation (e.g., *iPhone*) are used to construct names that convey meaning, innovation, or function. A well-crafted name not only reflects the product but also becomes part of a brand's identity and narrative.

- **Semantic Framing :**

Semantic choices in brand names can frame consumer perception. For example, using terms like *eco*, *pure*, or *max* suggests environmental consciousness, quality, or performance. Names with positive emotional or cultural resonance improve brand likability and trust.

- **Cross-Cultural Considerations :**

When branding for global markets, linguists help ensure that names do not have unintended meanings in other languages. Brands like Coca-Cola and Chevrolet have faced challenges in translation, highlighting the need for careful phonetic and semantic analysis in international branding.

PERSUASION STRATEGIES IN ADVERTISING :

Advertising is fundamentally persuasive in nature. The strategic use of language in ads is designed to influence consumer attitudes, emotions, and behaviors. Linguistic techniques—when skilfully applied—transform ordinary messages into compelling calls to action. Below are some of the core linguistic persuasion strategies employed in advertising:

1. Rhetorical Devices :

- **Repetition** : Reinforces key brand messages or slogans (e.g., "Have a break, have a KitKat").
- **Alliteration and Rhyme** : Makes messages catchy and easier to remember (e.g., "Maybe she's born with it. Maybe it's Maybelline.").

2. Emotive Language :

Marketers use emotionally charged words to evoke positive feelings—such as *love*, *freedom*, *fresh*, or *safe*—or even negative emotions like fear or urgency to provoke action (e.g., "Don't miss out!").

3. Imperatives (Command Language) :

Direct commands like *Buy now*, *Try it today*, or *Get yours now* are powerful and action-oriented, pushing the audience toward immediate response.

4. Metaphors and Analogies :

Metaphorical language helps explain complex products or create strong imagery (e.g., Apple's "Your next computer is not a computer" evokes innovation without technical detail).

5. Presupposition and Implicature :

Advertisers imply that certain benefits are already known or agreed upon by the consumer (e.g., "Upgrade your lifestyle"—presupposing that the current lifestyle needs improvement).

6. Inclusive and Personal Language :

Use of **second-person pronouns** like *you*, *your*, and inclusive phrases like *we* creates a sense of direct engagement and personalization.

7. Hedging and Vagueness :

Words like *may help*, *could improve*, or *as low as* provide persuasive flexibility while reducing legal liability, especially in health, finance, or tech marketing.

8. Code-Switching and Multilingual Persuasion :

In multicultural settings, marketers switch between languages or dialects to build trust and authenticity (e.g., localizing messages using regional expressions or slang).

9. Slogan Linguistics :

Slogans often condense complex brand values into short, memorable linguistic units. These are carefully crafted using rhythm, tone, and strategic ambiguity.

CROSS-CULTURAL AND MULTILINGUAL MARKETING :

Cross-cultural and multilingual marketing leverages linguistic skills to bridge communication gaps, respect cultural sensitivities, and resonate with diverse consumer bases. When brands expand into international markets, they face not only translation challenges but also deeper issues related to semantics, pragmatics, and sociolinguistics.

1. Beyond Translation: Localization :

Literal translation often fails to capture the cultural nuances embedded in language. Localization goes a step further by adapting phrases, idioms, humor, and tone to align with the cultural values of the target audience. For instance, McDonald's slogan "I'm lovin' it" was carefully adapted across multiple languages to preserve its emotional appeal while fitting local syntax and cultural expectations.

2. Language Choice and Identity :

The language in which a product is marketed often signals identity, prestige, or inclusivity. For example, luxury brands may use French or Italian to convey elegance, while local brands might use regional dialects or indigenous languages to foster trust and authenticity. The strategic use of code-switching—alternating between languages—also appeals to bilingual or multicultural audiences, especially in urban and diaspora settings.

3. Pragmatic and Cultural Sensitivity :

Pragmatic norms vary across cultures—what is persuasive or polite in one language may be offensive or ineffective in another. Brands must be aware of taboo topics, indirect speech norms, and differing levels of formality. Marketing linguists play a crucial role in auditing campaigns for such issues to prevent miscommunication or brand damage.

4. Successful Case Examples :

- Coca-Cola uses customized packaging with local names and culturally adapted slogans ("Share a Coke with…").

- Procter & Gamble tailors its advertising for different countries, even modifying visual storytelling and tone to match local cultural contexts.

THE RISE OF NEUROLINGUISTICS AND AI IN MARKETING :

As technology continues to evolve, so too does the intersection between linguistics, consumer psychology, and artificial intelligence (AI). Neurolinguistics—the study of how language is processed in the brain—combined with AI-powered language tools is revolutionizing modern marketing by offering deeper insights into how consumers think, feel, and respond to language.

1. Understanding Neurolinguistics in Marketing :

Neurolinguistics explores how different linguistic structures activate emotional and cognitive responses in the brain. Marketers are now using neuromarketing tools such as **EEG, fMRI, and eye-tracking** to study how consumers react to specific words, metaphors, tones, or brand names. Words that trigger emotional or sensory responses tend to be more memorable and persuasive, directly influencing consumer decision-making.

For example, studies have shown that concrete and emotionally charged words like "fresh," "secure," or "luxury" stimulate areas of the brain associated with pleasure and trust—making them more effective in advertising copy.

2. AI and Natural Language Processing (NLP) :

Artificial Intelligence, particularly Natural Language Processing (NLP), has transformed how brands communicate with audiences. NLP enables sentiment analysis, chatbot conversations, personalized messaging, and even automated content generation based on linguistic data.

Key applications include :

- **Sentiment Analysis** : AI scans customer feedback to identify emotional tone, helping brands adjust language for better engagement.
- **Chatbots and Voice Assistants** : AI-driven bots use language models to simulate human-like interaction and guide consumers through the buying process.
- **A/B Testing of Language** : AI tools evaluate different linguistic styles (formal vs. casual, emotional vs. rational) to determine which wording drives higher conversions.

3. Predictive Linguistic Analytics :

AI models can now **predict consumer behavior** by analyzing linguistic patterns in search queries, social media posts, and reviews. This allows marketers to tailor messages not only to demographics but also to psychographics—targeting mindset, personality, and mood through customized language.

4. Ethical Considerations :

As neurolinguistic and AI tools become more powerful, concerns arise around manipulative messaging, data privacy, and the unconscious influence of language. Ethical marketing must balance persuasive power with respect for consumer autonomy.

CONCLUSION :

Linguistics offers a robust toolkit for marketers aiming to create impactful communication. Whether through brand naming, persuasive ad copy, or culturally sensitive campaigns, language strategy plays a foundational role in shaping perception and behaviour. As marketing evolves in the digital age, the integration of linguistic science will only grow in importance.

References :

1. **Cook, G. (2001).** *The discourse of advertising* (2nd ed.). London: Routledge. This book analyzes how language is used in advertising to persuade, inform, and shape consumer perception, combining linguistics with marketing theory.
2. **Danesi, M. (2008).** *Brands*. New York: Routledge.
3. Danesi explores how branding is inherently a linguistic process, focusing on the semiotics and symbolic meaning behind brand names and messages.
4. **Kotler, P., & Keller, K. L. (2016).** *Marketing management* (15th ed.). Pearson Education. A foundational marketing text that highlights the importance of communication strategies, including language framing, in successful brand positioning.
5. **Crystal, D. (2003).** *Language and the internet*. Cambridge University Press.
6. Offers insight into how digital platforms influence language use and how businesses adapt their linguistic strategies for online audiences.
7. **Beard, F. (2005).** One hundred years of humor in American advertising. *Journal of Macro marketing, 25*(1), 54–65.Analyzes linguistic techniques such as humor and wordplay in ads, demonstrating their effect on consumer recall and brand engagement.
8. **Piller, I. (2003).** Advertising as a site of language contact. *Annual Review of Applied Linguistics, 23*, 170–183. Discusses multilingual and cross-cultural advertising, focusing on how linguistic choices influence global consumer interpretation.
9. **Koller, V. (2008).** 'Not just a colour': Pink as a gender and marketing cue. *Gender and Language, 2*(1), 119–141.This study links linguistic cues (like colour terms and associations) with gender-targeted marketing strategies, showing how language shapes perception.
10. **Luntz, F. (2007).** *Words that work: It's not what you say, it's what people hear*. Hyperion. Although written from a political perspective, this book shows how carefully chosen language

can shape public opinion—highly applicable to branding.

11. **Goddard, A. (2002).** *The language of advertising: Written texts* (2nd ed.). Routledge.
12. Offers a detailed analysis of how written linguistic elements—layout, typography, and copy—are used to create persuasive marketing messages.
13. **Wernick, A. (1991).** *Promotional culture: Advertising, ideology and symbolic expression*. Sage. Explores how language in advertising constructs social values and ideologies, positioning marketing discourse as a cultural and linguistic practice.

jsajitha@srcas.ac.in

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 145–150

भवानी प्रसाद मिश्र के खण्ड काव्य 'कालजयी' में मिथकीय चेतना

डॉ. हरिभजन प्रियदर्शी
पीएम.श्री. राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय (कन्या) मलोट, जिला– श्री मुक्तसर साहिब (पंजाब)

मिथक एवं साहित्य का चोली दामन का साथ है। जब साहित्य के कलापक्ष की चर्चा होती है तो बर्बस हमारा ध्यान कलापक्ष के विविध पक्षों बिम्ब, प्रतीक, भाषा तथा अलंकार, छन्द मिथक की ओर स्वतः आकृष्ट हो जाता है। आधुनिक सन्दर्भों में समीक्षा के मुख्य मानदण्ड भी यही है। वर्तमान युग की कोई भी काव्य भाषा मिथक रहित नहीं होती बल्कि मिथक उसकी एक प्रमुख शक्ति बन गयी है। सृष्टि की उत्पत्ति एवं मानव को आस्तित्व के साथ मिथक का प्रचलन शुरू हो गया। प्रत्येक साहित्यकार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपनी प्राचानी घटनाओं एवं इतिहास से अवश्य जुड़ा होता है। अतः किसी भी भाषा में मिथक की रचना स्वतंत्र रूप में नहीं होती क्योंकि मिथक स्वयं निर्मित अन्तर्विरोधों को नहीं वरन् सामाजिक अन्तर्विरोधों को व्यक्त करता है।

मिथक का अर्थ एवं स्वरूप :–

'मिथक अंग्रेजी के 'मिथ' शब्द का हिन्दी पर्याय है। मिथ का उद्‌भव युनानी शब्द 'मुथोस' (डनजीवे) से हुआ है। जिसका अर्थ है कोई मौखिक कथा। यहाँ कथा के साथ मौखिक शब्द का प्रयोग विशेष महत्व रखता है, क्योंकि मुथोस का शाब्दिक अर्थ है – 'जो कुछ कहा गया'[1] प्रारंभ में इस शब्द का प्रयोग पुनः स्मरण के लिए किया जाता था किन्तु कालान्तर में इसका प्रयोग एक विशेष प्रकार की कथा के लिए होना लगा।[2]

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अंग्रेजी के 'मिथ' शब्द को मिथक की संज्ञा प्रदान की है। वस्तुतः यह शब्द उन्हीं की देन है।[3] कामिल बुल्के ने अपने अंग्रेजी – हिन्दी कोश में भी मिथ के हिन्दी समनार्थी रूप में 'मिथक' शब्द का प्रयोग किया है।'[4] वैसे मिथक के समनार्थी के रूप में अनेक शब्द प्रयुक्त किए जा रहे हैं। जैसे–देव कथा, पुराण–कथा, पुरकथा, धर्म ग्रंथ आदि हिन्दी में प्रयुक्त ये सभी शब्द मिथ के केवल एक पक्ष अति मानवीय, आलौकक या दैविक का ध्वनित कथा मात्र नहीं है।

डॉ. नागेन्द्र मिथ के अर्थ के सम्बंध में कहते हैं, "सामान्य रूप से मिथक का अर्थ है –ऐसी परम्परागत कथा जिसका सम्बंध अति प्राकृत्ति घटनाओं और भावों से होता है। मिथक मूलत : आदिम मानव के समृष्टि मन की सृष्टि है। जिसमे चेतन की अपेक्षा अचेतन प्रक्रिया का प्राधन्य रहता है। मिथक की रचना उस समय हुई जब मानव और प्रकृति के बीच की विभाजक रेखाएं स्पष्ट नहीं थी। दोनों एक सार्वभौम जीवन में सहभागी थे। वे परस्पर सहयोग एवं सूत्रों के बन्धन में बंधे हुए थे और चेतन मानव का मन अज्ञात रूप से प्रकृति की घटनाओं

को अपने जीवन की घटनाओं तथा अनुभवों के माध्यम से समझने का प्रयास करता था। समष्टि मन द्वारा प्रकृति के तत्वों और घटनाओं के मानवीकरण की यह अचेत्तन प्रक्रिया ही मिथक रचना मूल है।[5]

भारतीय मिथकों का स्वरूप बहुत ही लचीला रहा है। जिसे स्पष्ट करते हुए डॉ. शंभुनाथ लिखते हैं, "मिथक अपने दिक् और काल से जुड़े कलात्मक पुनः सृजन है। ये मिथक शास्त्रीय कथाओं से भिन्न है। पुराण कथा या पुनरावृत्त अतीत के मिथक है किन्तु मिथक को केवल उन्हीं में परिसीमित नहीं किया जा सकता। यह सिर्फ अतीत की विधि नहीं है उसका आधुनिक विकास हुआ है। समाज बदला तो इसके साथ लोगों का मिथक के प्रति रूख और व्यवहार बदला है।[6]

हिन्दी में मिथक शब्द का प्रयोग आधुनिक काल में प्रारम्भ हुआ। यह शब्द आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की देन है। भारतीय मिथक परम्परा का श्री गणेश ऋग्वेद से हुआ वेदों से लेकर, उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण, बौद्ध तथा जैन धर्म तक के साहित्य में भारत के मूलभूत मिथक विद्यमान है। प्रत्येक देश की संस्कृति उसके मिथक साहित्य में विद्यमान है।

मिथक का वर्गीकरण :-

स्थूल रूप से डॉ. नागेन्द्र ने मिथक के तीन प्रकारों का वर्णन किया है :-

1. सुष्टि सम्बंधी मिथक 2. प्रत्यय सम्बंधी मिथक 3. देवताओं के प्राणोयधार से संबन्धित मिथक।[7]

श्री ई. ए. गार्डनर ने निम्त 12 प्रकार के मिथकों का उल्लेख किया है।[8]

1. ऋतु परिवर्तन एवं प्राकृतिक परिवर्तन से संबंधित मिथक।
2. अन्य प्राकृतिक तत्वों से सम्बंधित मिथक।
3. विशिष्ट या आसामन्य प्राकृतिक तत्वों से सम्बंधित मिथक।
4. सृष्टि के जन्म संबंधी मिथक।
5. देवताओं के जन्म से सम्बन्धित मिथक।
6. मनुष्य और पशुओं के जन्म सम्बन्धित मिथक।
7. आवागमन सम्बंधी मिथक।
8. वीर नायकों परिवारों एवं राष्ट्र से सम्बन्धित मिथक।
9. सामजिक संस्थाओं एवं अविष्कारों से सम्बन्धित मिथक।
10. मृत्यु के बाद आत्मा स्थिति सम्बन्धी मिथक।
11. दानवों और दैत्यों से सम्बन्धित मिथक।
12. ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित मिथक।

उपरोक्त मिथक के वर्गीकरण को आधार मानकर 'कालजयी' में मिथक सम्बन्धी तथ्यों एवं विचारों को दूंढने का प्रयास किया है। भवानी प्रसाद मिश्र की कृति 'कालजयी' में विद्यमान मिथक का स्वरूप रूमिथक काव्य की कलात्मक सौन्दर्य की वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मिथक और समकालीनता को एक सिक्के के दो पहलू मानते हुए भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने काव्य सृजन में मिथक का ही सहारा लिया है। अपने भावों एवं विचारों की पुष्टि हेतु उन्होंने अपनी कविताओं मे वेदों पुराणों तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों के उदाहरण को उद्धृत किया है। उन्होंने अपने खण्ड काव्य 'कालजयी' में मिथक के विभिन्न्न रूपों का निरूपण किया है। सम्राट अशोक के

आख्यान तथा ऐतिहासिक पात्रों के कथन की पुष्टि हेतु मिथकों का खूब सहारा लिया है जो कि उनकी कुशाग्र बुद्धि का द्योतक है।

ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित मिथक :-

बहुत सी सत्य तथा ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बंध में विभिन्न पौराणिक कथाएँ प्राप्त होती है। वे इसी कोटि में आती है। किसी भी देश का इतिहास उसके राजा का इतिहास न होकर उसमें रहने वाले लोगों का सांस्कृतिक आर्थिक इतिहास होता है। 'कालजयी' की विषय वस्तु एक ऐतिहासिक घटना है। कवि ने महाभारत के युद्ध की तुलना को कलिंग के युद्ध के साथ किया है जिसका प्रमाण निम्न शक्तियों में दृष्टिगोचर होता है :–

'थे मगथ राज भयभीत
कि वे जब जायेंगे
तो ये चारों अपनी–अपनी पर आयेंगे
कारण रण तब
सिंहासन बन जायेगा
तब एक महाभारत फिर से
इस धरती पर ठन जायेगा।'[9]

कवि ने मगध के राज बिन्दुसार की चिन्ता को उद्धृत किया है कि कहीं कौरव पांडवों की भाँति अशोक, सुसीम, महिन्द तथ तिष्य आपस में युद्ध न करें।

सृष्टि के जन्म सम्बन्धित मिथक :-

इस कोटि के मिथकों में सृष्टि के जन्म और विकास से सम्बन्धित घटनाओं को आधार बनाकर काव्य की रचना की जाती है। भारतीय परम्परा में मनु आदि की कथाएँ इसी कोटि में आती है। भवानी प्रसाद ने मानव को मनु वंशज मानते हुए आपसी भाईचारे एवं मानवता का सन्देश दिया है :–

'आदिकाल से है प्रयत्न
मनु के बेटे सब एक हो सके
सबकी आँखे खुले हर्ष में
सब शंका से हीन हो सके।[10]

वास्तव में मिथक की पहचान के बिना संस्कृति के विकास को व्याख्या करना संभव नहीं है। मिथक इतिहास की गहरी समझ का दरवाजा है। समाज के नये आयाम में खड़े मनुष्य, मनुष्य की वस्तुओं तथा वस्तुओं का मनुष्य से सम्बन्ध को उसकी दुनिया को मिथक तरसता है। उसकी सोच को एक नई भाषा देता है और इस भाषा में अपनी एक नई पहचान कायम करता है और दुविधा, थकावट एवं सकट की घड़ी में मिथक ही मानवीय अभिव्यक्ति के सबसे बड़े सहायक सिद्ध होते हैं। भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने इस खण्ड काव्य के माध्यम से वेद उपनिषद, षडदर्शन तथा मनुस्भृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति का उल्लेख करके सृष्टि की रचना एवं संस्कृति के विकास के चरणों को उद्घाटित करने का प्रयाश किया। हगारे प्रचीन एवं पौराणिक ग्रंथ ही भारतीय संस्कृति के अस्तित्व की संभाल कर रखा है। यथा :–

'अर्थ से इति सक

उदगम से सागर तक की
संस्कृतियां समझी
वेद उपनिषद षडदर्शन
मनु याज्ञवल्क्य स्मृतियां समझी।'[11]

देवताओं से सम्बन्धित एवं सांसारिक नश्वरता संबंधी मिथक :-

भवानी प्रसाद मिश्र में अपने खण्डकाव्य के अन्तर्गत विभिन्न देवताओं राम, कृष्ण, शिव, इन्द्र सूर्यादि देवताओं के बारे में उल्लेख किया है। पौराणिक कोश के अनुसार, इन्द्र देवताओं का राजा है। ऋग्वेद में यह बड़े योद्धा के रूप में चित्रित है। उनकी अखण्ड एवं पराक्रम का बार–बार उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद के लगमग 250 सूक्त इन्द्र पर कोन्द्रित है।'[12] ऐरावत को पौराणिक कोश के अनुसार– 'यह पूर्व दिशा का रक्षक माना जाता है श्रीसागर मंथन के समय उत्पन्न होंगे वाले 14 रत्नों में से एक ऐरावत भी था जो कि सफेद हाथी है। इसी हस्ती का मस्तिष्क काट कर विष्णु ने शनि की कुदृष्टि से बचाकर गणेश के धड़ से जोड़ा था, इसलिए इसका नाम ऐरावत था।'[13] सूर्य देवता को धर्म ग्रंथों में इन्द्र घाता पर्जन्य, त्वष्टा, पूषा, अर्यमा, भग, विवस्वान विष्णु, अंशुमन, वरूण, एवं मित्र 12 नामों का उल्लेख मिलता है। इनके विविध कार्य का वर्णन भी किया गया है। कवि ने उपरोक्त सभी अर्थात् इन्द्र के ऐरावत एवं सूर्य के हजारों घोड़ों को नश्वर कहा। इन पात्रों के माध्यम से वे सांसारिक नश्वस्ता एवं क्षणभंगुरता को प्रमाणित करने का प्रयास किया है :–

'इन्द्र का ऐरावत
अश्व स्वयं सूर्य के
बेटा नयण्य है सब
अभी है अभी नहीं।'[14]

ऋतु परिवर्तन एवं अन्य प्राकृतिक परिवर्तन में सम्बन्धित मिथक :-

इस वर्ग में किस प्रकार सर्दी, गर्मी, वर्षा, शरद, हेमन्त, बसन्त आदि ऋतुओं तथा रात के बाद दिन, सप्ताह, मासादि, एक निश्चित क्रम के अनुसार आते हैं। सूर्य चन्द्र पृथ्वी आदि कैसे एक दूसरे की परिक्रमा करते हैं, आदि से सम्बन्धित मिथक आते हैं। भवानी प्रसाद भिश्र ने प्रकृति को विविध वर्णच्छायाओं, भंगिमाओं और रूपच्छवियों से कदम–कदम पर साक्षात्कार किया है। प्रकृति ने भी भवानी प्रसाद मिश्र जी को भरकर रिझाया है। मन भरकर ऐसे लुभाया है। हरी भरी लहलहाती प्रकृति के रूप में वैभव को वे निःसंकोच ऐसे टकटकी लगाकर निहारे जैसे वह उनका कोई आत्मज हों। प्रस्तुत खंड काव्य में अशोक और देवी के माध्यम महामधु मास पर्व अर्थात् चौत्र मास के महापर्व रामनवमी एवं नवरात्रि के पावन रूप एवं सुगन्धित वातावरण का मर्मस्पशी चित्रांकन किया है :–

'देवी और अशोक
महा मधुमास पर्व की रजनीगंधा
रूप आरती सी करता था
जब ऐसे में उतरी संध्या।'[15]

कवि ने प्रकृति को शोक विषाद एव रूदन के क्षणों में अत्यधिक विषाद एवं खिन्नता के साथ अश्रुपात

करते हुए भी अंकित किया है। बिन्दुसार के स्वार्गवास को निम्न पंक्तियों के अन्तर्गत अत्यंत कारूणिक तथा मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है :–

'उस संध्या की रात्रि
भयानक वार्ता लाई
बिन्दुसार ने
अपनी पार्थिक देह गंवाई।।[16]

वीर नायकों, परिवारों एवं राष्ट्र से सम्बन्धित मिथक :-

किस भाँति किस वीर का जन्म हुआ, किस प्रकार अमूक परिवार, कुल कबीले जाति या राष्ट्र का उदय हुआ इसकी व्याख्या विवेचन व विश्लेषण से सम्बन्धित मिथक इसी वर्ग में आते हैं। प्रस्तुत खण्डकाव्य के प्रथम सर्ग के प्रारम्भ में ही कवि ने खण्डकाव्य की कथा को मात्र अशोक की कथा न कहकर पूरी संस्कृति एवं पूरे भारत की कहानी माना है :–

'यह कथा व्यक्ति की नहीं,
एक संस्कृति की है,
यह स्नेह शांति
सौन्दर्य, शौर्य की घूति की है।
यह धारा संस्कृति की
विशिष्ट अति वेगवान,
केवल भरत की धरती पर प्रवहमान।।[17]

अशोक की वीरता एवं शौर्य से विश्व में भला कौन परिचित नहीं है। उनकी कुटनीति एवं रणनीति से अनभिज्ञ व्यक्ति क ही मुकाबला करता था पर उसको भी लोहे के चने चबाने पड़ते क्योंकि वह दुश्मन के दांत खट्टे करना बखूबी जानते थे। इसलिए भला भवानी प्रसाद कैसे न बखान करते। उनकी निम्न पंक्तिया दृष्टाव्य हैं :–

'फिर से अशोक ने कहा
कि तत्पर रहना सब
जब मेरी भेरी पड़े सुनाई।।
चलना तब।।'[18]

अशोक ने कलिंग विजय के पश्चात् युद्ध न करने की ठानी क्योंकि उस नरसंहार ने उनके हृदय को परिवर्तित करके रख दिया था। उन्होंने हिंसा का त्यागकर बौद्ध धर्म अपना सिया। निम्न पंक्तियां उनके उसी रूप को उद्घाटित करती है :–

'मैं था अब तक शैव
शक्ति का पूजक था मैं परम्परा से
किन्तु कलिंग विजय के तांडव लास–त्रास ने
मुझे समूचा हिला दिया।'[19]

भवानी प्रसाद मिश्र के खण्डकाव्य 'कालजयी' के अध्यनोपरांत स्पष्ट होता है कि उन्होंने इतिहास के जिस काल खण्ड अपना विषय चुनाव तथा अपनी लेखनी का आधार बनाया वह वास्तव में आज के युग के प्रत्यक्ष रूप में सांग और सर्वागीण है। कहानी को आगे बढाने हेतु विविध प्रकार के मिथकों का प्रयोग, इनको उच्चकोटि का साहित्यकार सिद्ध करता है तथा प्रमाणित करता है कि काव्य के भाव पक्ष पर ही इनकी अच्छी पकड़ नहीं है, अपितु कलात्मक सौन्दर्य की अभिवृद्धि करने में भी सिद्ध हस्त हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :-

1. डॉ. पुष्पाल सिंह, काव्य–मिथक, गाजियाबाद : अमित प्रकाशन, 1871 पृ.
2. वही, पृष्ठ 2
3. डॉ. बच्चन सिंह, समकालीन साहित्य : आलोचना की चुनौती, वाराणसी : हिन्दी प्रचारक संस्थान, प्रथम संस्करण, 1968 पृ. 35
4. कामिल बुल्के, अंग्रेजी हिन्दी कोश, नयी दिल्ली : एस चन्द एण्ड सन्स, तृतीय संस्करण, 1984, पृ. 420
5. डॉ. नाग्रेन्द्र, मिथक और साहित्य, नई दिल्ली : पब्लिशिंग हाऊस, प्रथम संस्करण, 4967, पृ. 7
6. डॉ. शंभुनाथ, मिथक और आधुनिक कविता, नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, प्रथम संस्करण, 1966, पृ. 7
7. डॉ. नागेन्द्र, मिथक और साहित्य, नई दिल्ली : पब्लिशिंग हाऊस, प्रथम संस्करण, 1987, पृ. 18–12
8. एजी. गार्डनर, एनसाइक्लोपीडिया आफ रीलीजन एन्ड एथीक्स भाग – 9 संपा. जेम्स हेस्टिगंज, एडवर्ग : टी एन्डटी, कर्लाक पब्लिकशन, 1953, पृ. 418–120
9. भावानी प्रसाद मिश्र, कालजयी, मेरठ : भारतीय साहित्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1978, पृष्ठ 17
   वहीं, पृष्ठ 96
10. वहीं, पृष्ठ 96
11. वहीं, पृष्ठ 92
12. डॉ. एन पी. कूट्टन पिल्ले, पौराणिक सन्दर्भ कोश, हैदराबाद : किरण प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1984 पृष्ठ 84
13. वहीं पृ. 127
14. भावानी प्रसाद मिश्र, कालजयी, मेरठ : भारतीय साहित्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण 4978, पृष्ठ 21
15. वहीं, पृ. 58
16. वहीं, पृ. 65,
17. वही, पृ. 41
18. वहीं, पृ. 46
19. वहीं, पृ. 82

haribhajan1@gmail.com, मो. नं. 98761–86791

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 151–155

मध्यप्रदेश के श्योपुर जिले के सौंईकलां की स्थापत्यकला

डॉ. मीना श्रीवास्तव
विभागाध्यक्ष व प्राध्यापक इतिहास, स्वशासी कमलाराजा कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर, म.प्र.
खेमराज आर्य
सहायक प्राध्यापक इतिहास, शासकीय आदर्श कन्या महाविद्यालय श्योपुर, म.प्र.

प्रस्तावना :–

श्योपुर जिला भारत के मध्यप्रदेश राज्य का एक दूरस्थ जिला हैं। यहाँ पर एशियाई शेरों के लिए बनाया गया कूनो नदी व पालपुर रियासत के क्षेत्र में फेला हुआ 'कूनो–पालपुर राष्ट्रीय उद्यान' भी स्थित हैं। सितम्बर, 2022 में भारत के माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा शेरों के स्थान पर 'अफ्रीकी चीते' 'कूनो राष्ट्रीय उद्यान' में छोड़कर विश्व प्रसिद्ध कर दिया हैं। यह जिला अपनी लकड़ी की खराद कला व लाख की चूड़ियों के लिए भी प्रसिद्ध हैं। इसके साथ ही चम्बल व पार्वती नदियाँ राजस्थान राज्य के बारां, कोटा, सवाई माधोपुर व करौली जिलों में प्रवाहित होती हैं। श्योपुर जिले की प्रमुख नदियों में चम्बल, पार्वती, कूनो, क्वारी, श्योपुर की जीवनदायिनी सीप, अहेली आदि हैं। यहाँ पर ऐतिहासिक व सांस्कृतिक धरोहरों के स्थल बहुत बड़ी संख्या में स्थित हैं। श्योपुर–सवाईमाधोपुर सड़क मार्ग पर जिला मुख्यालय से 10 कि.मी. की दूरी पर सीप नदी के किनारे सौंई कस्बा स्थित है, जहाँ सीप नदी, अमराल नदी तथा बरसाती नदी कंकरेंडी का संगम भी यही होता हैं। इस कस्बे में व आसपास ऐतिहासिक स्थापत्य कला के अनेक उदाहरण यत्रतत्र बिखरे पड़े हैं। जिनमें प्रमुख हैं :–

गढ़ी :–

किवदंती के अनुसार इसका पूर्व में नाम संबलपुर, मुरादाबाद था। एक योगी बालचंद सुई की नौक से निकल गये थे, इसलिए इसे सौंई कहा जाता हैं। सीप नदी के किनारे स्थित गढ़ी का वर्तमान में सिर्फ एक दरवाजा ही शेष है, जबकि बाकी पर लोगों ने कब्जा करके बस्ती बसा ली हैं।[1]

योगियों का मठ :–

सौंई गाँव में रन्नोद रोड के दाएँ और एक किलेबंद दीवार से घिरा हुआ नाथ/योगी समुदाय का मध्यकालीन मठ स्थित हैं। वर्तमान में मठ में प्रवेश के लिए उत्तर व पश्चिम दिशा में भी किलेबंद दीवार को तोड़कर द्वार बना दिए गये है, जबकि मठ में प्रवेश करने का लकड़ी का दरवाजा पूर्व दिशा में था जो आज भी अपनी मजबूती के साथ खड़ा हुआ हैं। पूर्व दिशा के द्वार से मठ में प्रवेश करने पर एक आयताकार चबूतरे पर तीन छतरियाँ (नाथ साधुओं की समाधियाँ पद चिन्हों के रूप में अंकित), एवं एक नाथ साधू की समाधि पदचिन्ह के रूप में अंकित वर्गाकार चबूतरे पर छतरियों के सामने बना हुआ हैं। आयताकार छतरियों के चबूतरे पर पर

चढ़ने के लिए पांच–पांच सीढ़ियाँ उत्तर दिशा की और से बनी हुई हैं।

पूर्व दिशा से प्रवेश द्वार से मठ के अंदर जाने पर प्रथम छतरी सोलह (16) स्तम्भों वाली गुम्बदाकार, आमलक व शिखर कलशयुक्त हैं। इस छतरी के गर्भगृह में बने हुए स्तुप के अंदर पदचिन्ह उकेरे गये हैं। ये पदचिन्ह नाथ योगी की समाधि पर बनाये गये हैं। गर्भगृह के स्तुप के ऊपर आमलक व आमलक के ऊपर कमल के फूल के शिखर पर कलश स्थापित हैं। छतरी के अंदर–बाहर स्तुप के दाएँ–बाएँ कुल चार नाथयोगी साधुओं की समाधियाँ बनी है, जिनको पदचिन्हों के द्वारा दर्शाया गया हैं। इस प्रथम छतरी में ऊपर छत के अंदर नौ कमल के फूल उत्कीर्ण हैं। यह छतरी नक्काशीरहित एवं चित्ररहित हैं।

प्रथम छतरी से लगी हुई दूसरी छतरी का आकार छोटा हैं। ये वर्गाकार चार स्तम्भों वाली हैं। इसके गर्भगृह में चतुर्मुखी शिवलिंग स्थापित है, जिसके सामने एक नंदी की मूर्ति स्थापित की गई हैं। इस छतरी की ऊँचाई लगभग बारह फीट हैं। इस छतरी का गुंबद कमलाकार हैं। गुंबद के ऊपर आमलक व आमलक के शिखर पर कलश स्थापित था, जो गिर जाने के कारण अब चबूतरे पर रखा हैं। इस छतरी की वर्गाकार छत के चारों और की एक साइड साढ़े नौ (9) – साढ़े नौ (9) कमल यानि कुल अड़तीस (38) कमल उत्कीर्ण हैं। ये छतरी पहले चारों और से खुली हुई थी, जिसके द्वार मेहराबदार हैं। इस छतरी के चारों दिशाओं के द्वार के दोनों और एक–एक कमल उत्कीर्ण है जिनकी कुल संख्या आठ हैं। इस छतरी के अंदर के चारों कोनों में भी चार कमल उत्कीर्ण हैं।

तीसरी छतरी का चबूतरा थोड़ा ऊँचा हैं। ये छतरी वर्गाकार चबूतरे पर बारह (12) स्तम्भों वाली हैं। गर्भगृह में एक गोलाकार स्तुप बना हुआ हैं। स्तुप के अंदर पदचिन्ह उत्कीर्ण हैं। स्तुप के ऊपर आमलक, आमलक के कमल के ऊपर कलश स्थापित हैं। इस छतरी के स्तम्भ एवं छत नक्काशीदार और चित्रों से सुशोभित हैं। इस छतरी के आगे की और दाएँ व बाएँ में तीन–तीन स्तम्भों के मध्य में छत के अंदर कमल उत्कीर्ण हैं। इस छतरी के पीछे के चार स्तम्भों पर हिन्दू देवी–देवताओं की क्रमशः मत्स्यावतार, गणेशजी, दुर्गामाता व विद्या की देवी सरस्वती की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। गर्भगृह के ऊपर की छत के अंदर भी हिन्दू देवी–देवताओं, बौद्ध धर्म के संस्थापक महात्मा बुद्ध, जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर महावीर स्वामी की मूर्तियाँ भी उत्कीर्ण हैं। इन उत्कीर्ण मूर्तियों के ऊपर नृत्यरत स्त्री–पुरुष व वाद्ययंत्र बजाते हुए लोग और भगवान श्रीकृष्ण बांसुरी बजाते हुए तथा गोपियाँ सिर पर मटकी ले जाती हुई आदि मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। छतरी के अंदर की और के आठ स्तम्भों पर छह कमल के फूल व भगवान गणेशजी की मूर्ति एवं घोड़े पर सवार किसी देवता की मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इस छतरी की वर्गाकार छत पर जोड़ (+) के चारों दिशाओं में कुल चालीस चिन्ह अंकित हैं। उत्तर दिशा में दस जोड़ (+) के चिन्हों के ऊपर छह (6) कमल के फूल व दाएँ और दो मोर और बाएँ और दो शेरों के मध्य में एक हाथी उत्कीर्ण हैं। पश्चिम दिशा में दस जोड़ वाले चिन्हों के ऊपर दस कमल के फूल व बाएँ एक मोर उत्कीर्ण हैं। दक्षिण दिशा में दस जोड़ के चिन्हों के ऊपर ग्यारह (11) कमल के फूल उत्कीर्ण हैं। तथा पूर्व दिशा में दस जोड़ वाले चिन्हों के ऊपर ग्यारह कमल के फूल उत्कीर्ण हैं। कमल, मोर, शेर, हाथी मेहराब के मध्य में उत्कीर्ण हैं। वर्गाकार छत के ऊपर गोलाकार गुंबद बना हुआ है, गुंबद के ऊपर आमलक, आमलक के ऊपर कमलाकृति के ऊपर शिखर पर कलश स्थापित हैं। इस छतरी के चबूतरे पर सीढियों के दाएँ और एक सती स्मारक छोटे मन्दिराकार में बना हुआ हैं।

बांके-बिहारी-जी का मंदिर :-

इस मंदिर में स्थापित कृष्ण भगवान की मूर्ति मकराना के काले पत्थर से तथा राधाजी की मूर्ति सफेद मार्बल पत्थर से निर्मित हैं। मंदिर में प्रवेश करने के लिए 6 (छह) सीढियों के चढने पर मुख्य द्वार आता हैं। द्वार के बाहर दो स्तम्भों पर दो ताख बने हुए हैं। ताख के बगल में ही बाहर एक छोटा वर्गाकार शिवमंदिर हैं, जिसमे तीन शिवलिंग एवं एक प्रथम पूज्य गणेशजी की मूर्ति स्थापित हैं। प्रवेश द्वार के ऊपर 8 (आठ) खम्भों वाली छतरी नक्काशीदार, बेलबूटे व चित्रांकित हैं। मुख्य प्रवेश द्वार से मंदिर के अंदर पूर्व दिशा से प्रवेश करने पर चार खम्भों वाला एक बरामदा बना हुआ हैं। इस बरामदे के दाएँ एक कमरा व बाएँ एक कमरा बना हुआ हैं। बाएँ कमरे में प्रवेश करने का एक दरवाजा मुख्य दरवाजे के बाएँ और से भी बना हुआ हैं। बरामदे के बाद खुला चौक हैं। दाएँ और मंदिर की छत पर जाने के लिए सीढियाँ बनी हुई हैं। चौक के बाद मंदिर का प्रांगण 8 (आठ) खम्भों पर बना हुआ हैं। प्रांगण के अंदर एक हैं व बरामदे के अंदर एक कमरा बना हुआ हैं। मुख्य मंदिर के गर्भगृह में राधा–कृष्ण की मूर्तियाँ स्थापित हैं, मंदिर में परिक्रमा देने के लिए प्रदक्षिणापथ बना हुआ हैं। मंदिर के बाएँ और एक कमरा बना हुआ हैं। कमरे के बाद दो बरामदे बने हुए हैं। ये दोनों बरामदे चार–चार स्तम्भों वाले हैं। फिर चौक आ जाता हैं। ये मंदिर श्योपुर के गौड़ शासकों की स्थापत्यकला शैली का एक उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

सोरती का अंडा (शिवमंदिर) एवं आठ स्तम्भों वाली छतरी :-

ग्राम सोंई में गुरनावदा रोड़ पर ये दोनों ही निर्मित हैं। इस शिखरयुक्त मंदिर के गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित हैं। ये मंदिर व शिवलिंग वर्षा ऋतु में अति वर्षा से कंकरेंडी की बरसाती नदी में आये जल से जलमग्न हो जाता हैं। गर्भगृह के बाहर द्वार पर एक शिलालेख लगा हुआ हैं, जो जीर्णशीर्ण होने के कारण अपठनीय अवस्था में हैं। मंदिर के बाहर एक स्तम्भ गढ़ा हुआ था जो वर्तमान में टूट गया हैं। मंदिर के सामने नंदी की मूर्ति स्थापित हैं। मंदिर के सामने ही लगभग 25 मीटर की दूरी पर श्योपुर के गौड़ शासकों की स्थापत्यकला शैली में निर्मित एक अष्ठकोणाकार आठ स्तम्भों वाली छतरी। इस छतरी में नक्काशी एवं चित्र अंकित किये गये हैं। इस छतरी का चबूतरा वर्गाकार और गर्भगृह में शिवलिंग स्थापित हैं।

सीताराम जी मंदिर :-

यह मंदिर मीणा जाति के रावों के मंदिर के नाम से जाना जाता हैं। सौंई में यह मंदिर राठौर मोहल्ले में स्थित हैं, जिसका निर्माण लगभग 17वीं शताब्दी में यहाँ के गौड़ शासकों द्वारा किया गया। इस मंदिर में सीता जी व राम जी की मूर्तियाँ अष्टधातु से निर्मित हैं। मंदिर में प्रदक्षिणापथ बना हुआ हैं एवं छत सपाट हैं। मंदिर के दाएँ व बाएँ और मंदिर के पुजारी के निवास के लिए कमरे बनाए गये थे। मंदिर के सामने 8 (आठ) स्तम्भों वाला बरामदा हैं।

ब्राम्हणों का राधेकृष्ण मंदिर :-

यह पुराने बाजार में स्थित हैं। मंदिर की छत सपाट हैं। मंदिर के प्रवेशद्वार पर एक प्रस्तर का स्तम्भ लगा हैं जिस पर एक और सूर्य और दूसरी और चन्द्रमा की आकृति अंकित हैं। मंदिर में राधा व कृष्ण की अष्टधातु की मूर्तियाँ स्थापित हैं। प्रदक्षिणापथ भी हैं। मंदिर लगभग 300 वर्ष पूर्व का निर्मित है जिसका निर्माण गौड़ राजाओं द्वारा किया गया था।

नरसिंह/नृसिंह जी का मंदिर :-

यह मंदिर सीप नदी के किनारे स्थित हैं। यह मालियों के मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि इसका निर्माण माली समाज के लोगों द्वारा किया गया था। मंदिर की छत सपाट व प्रदक्षिणापथ भी हैं। इस मंदिर का निर्माण लगभग 250 वर्ष पूर्व किया गया था।

रघुनाथ जी का मंदिर :-

यह मंदिर मीणाओं या परसावतों के मंदिर के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस मंदिर में स्थापित रामजी व सीताजी की मूर्तियाँ अष्टधातु से निर्मित हैं। प्रदक्षिणापथ है व छत सपाट हैं। मंदिर के दाएँ, बाएँ व सामने बरामदे बने हुए हैं। मंदिर के दरवाजे पर ताख बने हुए है। मंदिर के दरवाजे के ऊपर मीनारनुमा झरोखे वाली छतरी बनी हैं। यह मंदिर सौंई के गौड़ राजाओं द्वारा लगभग चार सौ वर्ष पूर्व बनवाया गया था।

केशवराय जी का मंदिर :-

यह मंदिर छिपाओ के मंदिर के नाम से प्रसिद्ध है। यह शिवहरे मोहल्ले में स्थित है। इस मंदिर के गर्भगृह में मकराना के काले पत्थर से निर्मित मूर्ति स्थापित हैं, मूर्ति में केशवराय जी के अतिरिक्त दो और मूर्तियों सहित एक गरुण की मूर्ति भी हैं। इस मंदिर के बगल में एक कमरा व बरामदा बना हुआ है जिनका निर्माण सौंई के गौड़ शासकों द्वारा किया गया था। मंदिर नागर शैली में निर्मित हैं, जिसमें शिखर बना हुआ हैं। इस मंदिर का निर्माण लगभग 12वीं–13वीं शताब्दी में किया गया था।

छिपाओ की बावड़ी :-

श्योपुर के गौड़ राजाओं द्वारा राजस्थानी राजपुताना स्थापत्यकला में श्योपुर से लगभग 11 किलोमीटर की दूरी पर सवाई माधोपुर रोड पर सौंई गाँव में बाएँ हाथ पर एक ऐतिहासिक बावड़ी स्थित है, जोकि तीन मंजिला है। इससे कुछ दूरी पर ही एक नाथ सम्प्रदाय का मठ भी बना हुआ है। यह बावड़ी सुरक्षित अवस्था में है। इसमें नीचे जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई है। इस बावड़ी में वर्षभर जल रहता है।[2]

सती स्मारक :-

सौंई गाँव में सती स्मारक बहुत बड़ी संख्या में स्थित हैं। यह सती स्मारक चबूतरों व छतरियों में स्थापित किये गये हैं। सीप नदी के किनारे अलाउद्दीन खिलजी द्वारा 1303 में रण थम्भौर पर किये आक्रमण के समय यहाँ की जागीर के मारे गये सैनिकों के सती स्मारक बड़ी संख्या में, जिनमें से कुछ पर लेख भी उत्कीर्ण है, लेकिन जोकि वर्तमान में पठनीय स्थिति में नहीं हैं। इन स्मारकों में सती होने वाली स्त्री पुरुष के साथ खड़ी है, ऊपर एक हाथ का पंजा, सूर्य, अर्धचन्द्र आदि अंकित हैं।[3] गाँव के मध्य में मीणा समुदाय की सती की दो कलात्मक छतरियाँ बनी हुई है, जिनमें सती प्रस्तर स्मारक लगे हुए हैं।

इस्लामी स्थापत्यकला :-

सौंई गाँव में अलाउद्धीन खिलजी द्वारा 1303 ई. में रण थम्भौर पर किये गये आक्रमण के समय इस्लाम धर्म के आगमन का विवरण मिलता हैं। सौंई में इस्लामी स्थापत्य कला के अंतर्गत मस्जिद, ईदगाह, मजार आदि स्थित हैं। यहाँ पर ईद के अवसर पर नवाज अदा करने के लिए गोपालपुरा रोड के नजदीक एक ईदगाह स्थित है जोकि लगभग 500 वर्ष पुरानी हैं। पूर्व में इसका प्रयोग नवाज पढ़ने के लिए मस्जिद के रूप में भी किया जाता था। यहाँ पर जामा मस्जिद अंसारी मोहल्ले में स्थित हैं। यह लगभग 250 वर्ष पुरानी हैं। जिसे वर्तमान स्वरूप

20 वर्ष पूर्व देकर इसका विस्तार किया गया। मौजा सैय्यद, बड़ी अम्मा की मजार, सरवर सुल्तान की दरगाह व मस्जिद में प्रत्येक गुरुवार को श्रदालु व दर्शनार्थी बड़ी संख्या में दर्शन व सजदा करने आते हैं। ताजिये जामा मस्जिद से निकलकर सरवर सुल्तान की दरगाह पर विश्राम करते है। ताजियों का विसर्जन ज्वालापुर गाँव में सीप नदी में किया जाता हैं। सीप नदी के उस पार बाएँ तट पर मलंग बाबा की मजार के अतिरिक्त छह मजारे और हैं साथ ही एक पुरानी व एक नयी मस्जिद भी बनी हुई हैं। सीप नदी के किनारे पानी की टंकी के पास बडित वाले बाबा की मजार स्थित हैं। केशवराय जी के मंदिर के पास प्यारे सैय्यद की मजार स्थित हैं।

सन्दर्भ :-

1. उपाध्याय, रुपेश, चंबल संभाग के किले, गढियाँ एवं मठ–मंदिर, जिला पुरातत्व एवं पर्यटन परिषद्, श्योपुर, 2020, पृष्ठ 33
2. उपाध्याय, रुपेश, श्योपुर की बावड़ियाँ, जिला पुरातत्व, पर्यटन एवं संस्कृति परिषद्, श्योपुर, पृष्ठ 19
3. उपाध्याय, रुपेश, चंबल संभाग के किले, गढियाँ एवं मठ–मंदिर, जिला पुरातत्व एवं पर्यटन परिषद्, श्योपुर, 2020, पृष्ठ 34

ईमेल – khemrajarya10@gmail.com

मोबाइल : 8719000682, 9098913206

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 156–160

विनयचन्द्रसूरि कृत 'काव्यशिक्षा' ग्रन्थ में प्रतिपादित अनेकार्थक शब्दों में द्वयक्षरकाण्ड

शिवराज मीणा
सहायक आचार्य, संस्कृत, हरिअनत इंटीग्रेटेड महाविद्यालय, बोरखेड़ा, कोटा।

आचार्य विनयचन्द्रसूरि ने अपने 'काव्यशिक्षा' नामक ग्रन्थ में कवियों को अनेक प्रकार की काव्योपयोगी शिक्षाएं प्रदान की हैं। कविसमय, क्रियाओं, वर्णों, संख्याओं एवं वर्णनीय विषयों इत्यादि का पर्याप्त विषदता से उल्लेख करके जहां उन्होने नवीन कवियों का मार्ग प्रशस्त किया वहाँ विभिन्न शब्दों का उल्लेख करते हुये वे उनसे सम्बद्ध अनेक प्रकार के अर्थो को भी निर्दिष्ट करते हैं। उन्होने अनेकार्थक शब्दों के अंतर्गत द्वयक्षरकाण्ड, त्रयक्षरकाण्ड, चतुरक्षरकाण्ड, पञ्चाक्षरकाण्ड अंत्यक्षरकाण्ड इत्यादि का विस्तृत उल्लेख किया हैं। आचार्य विनयचन्द्रसूरि द्वारा किया गया यह प्रयास निःसन्देह कवि शिक्षा की श्रृंखला में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता हैं। किन्तु प्रस्तुत शोध आलेख की शब्द सीमा को ध्यान में रखते हुए मौलिक आलेख के अंतर्गत द्वयक्षरकाण्ड के विस्तृत विवेचन को संकुचित शब्दों समेटना ही वस्तुतः मेरा प्रयास रहेगा।

द्वयक्षरकाण्ड :–

सर्वप्रथम लेखक द्वारा दो अक्षरों से सम्बद्ध विभिन्न शब्दों एवं उनके अनेक अर्थो को वर्णित करते हुए अक्ष को मूल्य, पूजा, दुःख, व्यसन तथा स्वामी या प्रभु और अर्चा को पूजा एवं प्रतिमा, अज को छाग, हरि, विष्णु रघुनाथ, विधाता तथा कामदेव इत्यादि अर्थों तथा अट्ट को मंडी एवं अट्टालिका अब्ज को धन्वन्तरि, चंद्र, शंख, पद्म एवं संख्या और अर्हत् को जिनेन्द्र, एवं पूज्य व्यक्ति के अर्थ में उल्लिखित किया गया हैं। ऊर्णा शब्द को भौंहों के मध्यवर्ती केशपुंज, मेढ़ा (मेघ), लोमनि (जानवर के बाल) इत्यादि तथा ऋण के लिए दाता अर्थात् देने वाला, जल एवं दुर्ग इत्यादि अर्थो का प्रयोग किया गया हैं। इसी प्रकार कच शब्द को केश, शुष्क घाव, बंधन, पत्र, गीष्पति अर्थात् बृहस्पति का पुत्र इत्यादि एवं साथ ही कण शब्द को धान का अल्प सा अंश एवं कण को जीरा तथा पिप्पली इत्यादि अर्थो में वर्णित किया गया हैं। कर्ण शब्द के लिए पतवार एवं कान इत्यादि तथा कांची शब्द के लिए गुञ्जा, मेखला एवं नगरी इत्यादि अर्थो का और काण्ड के लिए चार खंड, नाल, अधम, वर्ग, स्कन्ध (वृक्ष का तना) अवसर सरकंडा, झाड़ी, श्लाघा, एवं अंबु इत्यादि अर्थो का निरूपण हैं।

इसी प्रकार कान्ता को प्रियङ्गु एवं योषित तथा कीर्ति को यश, विस्तार, प्रासाद एवं कीचड़ और कृत शब्द को युग पर्याप्त इत्यादि अर्थो में तथा कृष्णा को नील वर्ण, द्रौपदी, पिप्पली, (पिपरामूल अथवा चींटी), तथा केतु को द्युति एवं पताका इत्यादि अर्थो में प्रयुक्त किया गया हैं। क्रीडा शब्द को किलोल करने एवं अनादर करने तथा

क्रौच को द्वीप एवं पक्षी इत्यादि के अर्थो में निरूपित किया गया हैं। इसी प्रकार लेखक द्वारा क्षण शब्द को पर्व, अवसर, उत्सव एवं काल विशेष इत्यादि अर्थो में प्रकाशित किया गया हैं। गाथा के लिए वे वाक् भेद एवं वृत्ति तथा गुञ्जा के लिए कृष्ण, ढ़ोल, मधुर ध्वनि इत्यादि और गुड के लिए हाथी कवच, एवं गन्ने से बने पदार्थों को वर्णित करते हैं। चर्चा शब्द का वर्णन करते हुए विनयचन्द्रसूरि दुर्गा, चिन्ता, चन्दन लेप इत्यादि अर्थो का तथा तीर्थ के लिए शास्त्र, गुरु, यज्ञ, पुण्यक्षेत्र, अवतार, ऋषि की सम्मानसूचक उपाधि जल, स्त्री रज, दर्शन एवं पात्र इत्यादि अर्थो का प्रयोग करते हैं। द्विज शब्द को लेखक ने विप्र, क्षत्रिय, वैश्य, दन्त और विहंगम (वहंगी–भार ले जाने का साधन) इत्यादि अर्थों में तथा धृति को विशेष, योग, धारण, धैर्य, सुख, सन्तोष तथा अध्वर्य इत्यादि के अर्थो में उपन्यस्त किया हैं। इसी प्रकार नाग शब्द के लिए मतंगज, पुन्नाग, सर्प, नागकेसर, क्रूर, नागदंत, मुस्ताक्षति एवं मेघ इत्यादि अर्थो को निबद्ध किया गया हैं तथा पंक्ति शब्द के लिए गौरव एवं पाक तथा पूर्त के लिए पूरित और प्रजा के लिए बाल अर्थात् शक्ति तथा लोक इत्यादि अर्थो को लेखक द्वारा द्योतित किया गया हैं।

इसी प्रकार बीज को वीर्य, धान, हेतु, तत्त्व, अंकुर एवं कारण इत्यादि अर्थो में तथा भग को अर्क, ज्ञान, माहात्म्य, यश, वैराग्य, मुक्ति, रूप वीर्य, प्रयत्न, इच्छा, श्री, धन, ऐश्वर्य तथा योनि इत्यादि अर्थो में और भसत् को भास्वर एवं मोस तथा भाण्ड को विक्रेता की वाणिज्य वस्तु, तुरंग, अलंकार, नदी का तल या नदी की शीतलता इत्यादि अर्थो में 'काव्यशिक्षा' नामक ग्रन्थ में निब) किया गया हैं। भुज को बाजु एवं कर तथा भोग को राज्य, वेश्या, सेवक, सुख, सांप की केंचुली, सर्प कण, अष्टांग (घुटना, हस्त, पाद, वक्ष, सिर, वचन, दृष्टि एवं बुद्धि), तथा महात्मा बुद्ध द्वारा उपदिष्ट अष्टविध मार्गो (सम्यग सम्यग्दृष्टि, सम्यक–संकल्प, सम्यग्वाक् सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीव, सम्यकव्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि) और रक्षा इत्यादि अर्थो का वाचक बताया गया है।

इसी प्रकार मंद शब्द के लिए आचार्य द्वारा मूढ़, शनि, रोग ग्रस्त, भाग्य से वर्जित, गज जाति, अल्प एवं धीमी गति इत्यादि अर्थों तथा मार्ग के लिए मृगमद, महीना, सौम्यऋक्ष (बुद्धनक्षत्र), अन्वेषण एवं पथ इत्यादि अर्थों और मेघ के लिए मोथा या मुस्ताक्षति एवं बादल इत्यादि अर्थों को उपनिबद्ध किया गया है एवं मोक्ष के लिए दीन, पाटल एवं निष्फल इत्यादि अर्थों मोचा के लिए शाल्मलि एवं कदली वृक्ष इत्यादि अर्थों का उल्लेख करते हुये मृग को कुरंग प्रार्थना, शिकार, गज, पशु एवं नक्षत्र इत्यादि अर्थो तथा मृगी को वनिता इत्यादि अर्थो का वाचक बताया हैं। इसी प्रकार यज्ञ शब्द को आत्मन्मख, नारायण एवं हुताशय (यज्ञीय भेंट के रूप में होम किया हुआ) इत्यादि अर्थो में तथा योग को अप्राप्य की प्राप्ति, संसर्ग, कार्मण (जादूगरी) ध्यान, युक्ति, वपु, सातत्य, प्रयोग, सन्नाह, चिकित्सा, धन, एवं विशकुम्भादौ (ज्योतिष के अनुसार विश्कुम्भ आदि २७ योग हैं–विश्कुम्भ प्रीति आयुष्मान् सौभाग्य शोभन अतिगण्ड सुकर्मा धृति शूल गण्ड वृद्धि ध्रुव व्याघात हर्षण वज्र अष्टक व्यतीपात वरीयान् परिघ, शिव, सिद्धि साध्य शुभ शुक्ल ब्रह्मा ऐन्द्र तथा वैधृतिद्ध इत्यादि अर्थों में प्रयोग करने का निर्देश किया गया हैं। इसी प्रकार रङ्ग के लिए नृत्य एवं युद्धक्षेत्र तथा रथ के लिए स्यन्दन पाद शरीर वेतसद्रुम इत्यादि अर्थों का एवं राग के लिए गान्धार, क्लेश, अनुराग, मत्सर (डाह, क्रोध) नृप एवं लोहित वर्ण की वस्तुओं। राजि को रेखा एवं पंक्ति, तथा रुजा को रोग या विकार तथा नष्ट करने इत्यादि के अर्थों में प्रयुक्त करने को कहा गया हैं। इसी प्रकार लञ्ज शब्द को आचार्य विनयचन्द्रसूरि ने पट्ट तथा कच्छ (धोती की छोर जो शरीर पर चारों ओर ओढ़ने

के पश्चात इकट्ठा करके लांग की भाति पीछे टांग ली जाती हैं) इत्यादि अर्थों में तथा लाज को भृष्ट धान, नर्म ताजा चावल तथा खस इत्यादि अर्थों में उपनिब) किया हैं। वङ्ग के लिए कपास, बैंगन का पौधा या फल और वङ्गा के लिए बंगाल के निवासी इत्यादि वणिग् के लिए वाणिज्यजीवनि और व्रज के लिए गोष्ठ, संघ एवं मार्ग इत्यादि अर्थों को उपन्यस्त किया गया हैं। श्लाघा को उपासना इच्छा एवं स्तुति इत्यादि अर्थों में तथा शृंग को चिन्ह, हाथी अथवा सूअर के दांत, जलयन्त्र, शिखर (पर्वतादि की चोटी) तथा प्रभूता के उत्कर्ष इत्यादि अर्थों में वर्णित किया गया हैं। इसी प्रकार सर्ग को उत्साह, निश्चय, अध्याय, मोह, अनुमति, सृष्टि, त्याग स्वभाव इत्यादि अर्थों में तथा संज्ञा को नाम गायत्री मंत्र, हाथ से संकेत करना, सूर्य की भार्या एवं बोध इत्यादि अर्थों में वर्णित करने के साथ ही सज्जा के लिए सन्नद्ध (तैयार, कटिबद्ध), एवं सम्भृत (सुसज्जित) इत्यादि एवं सूट शब्द के लिए पारद, और सारथि इत्यादि की शिक्षा काव्यशिक्षा में निर्दिष्ट की ग्ई हैं। उपर्युक्त शब्दो से संबन्धित विभिन्न अर्थों का उल्लेख कवि द्वारा द्वयाक्षर काण्ड के अंतर्गत किया गया हैं। व्यावहारिक रूप से भी उपर्युक्त शब्द संस्कृत साहित्य की अनेक काव्यकृतियों में उपलब्ध होते हैं। यहां पर शब्दो की मर्यादा को देखते हुए कतिपय शब्दो के अति अल्पनीय उदाहरण ही मौलिक शोध आलेख में प्रस्तुत कर पाने सम्भव होंगे जैसे :–

रघुवंश में अर्चा को पूजा के अर्थ मे वर्णित करते हुए महर्षि वशिष्ठ द्वारा रानी सुदक्षिणा को पुत्र प्राप्ति हेतु गौ नंदिनी की पूजा करने का निर्देश दिया गया है :–

वधुर्भक्तिमती चैनामर्चितामतपोवनात्
प्रयता प्रातरन्वेतु सायं प्रत्युक्षजेदपि।।

इसी प्रकार अर्हत शब्द का प्रायोगिक रूप भी द्रष्टव्य होता है जैसे रघुवंश में जब आश्रम वासियों को राजा दिलीप के आश्रम में आने का समाचार प्राप्त हुआ तो वहाँ के सभी सभ्य संयमी मुनियों ने अपने रक्षक, पूजनीय एवं नीति पूर्वक आचरण करने वाले सपत्नीक राजा का सम्मानपूर्वक स्वागत किया :–

तस्मै सभ्याः सभार्याय गोप्त्रे गुप्तमेन्द्रियाः।
अर्हणामर्हते चक्रुर्मुन्यो नयचक्षुषे।।

इसी प्रकार 'कर्ण' शब्द के लिए शाकुंतला की वह पंक्ति द्रष्टव्य है जिसमे अनसूया अपनी सखि प्रियंवदा को कहती है कि अरे सखी 'कर्ण' अर्थात् कान देकर सुनो! यह तो किसी अतिथि की वाणी लगती है।

अनसूया–कर्ण दत्वा सखि! अतिथिनामिय निवेदितम्।

'मार्ग' शब्द को प्रायोगिक रूप से देखे तो कालिदास ने 'मेघदूत' मे मेघ के पथ प्रदर्शन के लिए 'मार्गम् शब्द को कवि शिक्षानुमोदित वर्णित किया है :–

जग्ध्वारणयेष्वधिकसुरभि
गन्धमाघ्राय चोर्व्या।
सारबास्ते जललवमुचः
सूचयिष्यंति मार्गम्।।

'मनुस्मृति' मे योग को प्रयोग या उपायार्थ वर्णित करते हुए कहा गया है कि कोई पुरुष बलात्कार से स्त्रियों की रक्षा करने मे समर्थ नहीं होता अपितु उपायभूत योग के प्रयोग से वह स्त्रियों की रक्षा कर सकता है।

न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम्

एतैःपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम्।।

इसी प्रकार 'वङ्गा' शब्द के लिए प्रायोगिक दृष्टि से रघुवंश का एक प्रसंग दर्शनीय है :–

वङ्गानुत्खाय तरसा नेता नौसाधनोद्यतान्।
निचखान जयस्तम्भान्गङ्गा स्त्रोतोंन्तरेषु सः।।

इसी प्रकार "श्लाघा" शब्द का प्रयोग देखें तो "वेणीसंहार" में इसे "प्रसन्नता" एवं "स्तुति" के अर्थ में वर्णित करते हुये कहा गया है कि शिखंडी को पुरस्कृत करके जराग्रस्त भीष्म पितामह के वध से जो स्तुति पांडवों की हुई क्या वही कौरवों की नही होगी।

हते जरति गाङ्गेये
पुरस्कृत्य शिखंडिनम्।
या श्लाघा पांडुपुत्राणाम्
सैवास्माक्म् भविष्यति।।

इसी प्रकार "भाण्ड" शब्द का प्रायोगिक रूप देखें तो पंचतंत्र की एक उक्ति जिसमें गोरम्भ की सोच को व्यक्त करते हुए कहा गया है कि वह गोरम्भ यही सोचा करता था कि किसी प्रकार इस भाण्ड अर्थात् आभूषण व्यापारी को राजा की कृपा से वञ्चित करके मै अपने अपमान का बदला चुका लूं :–

कथं मया तस्य भाण्डपते राजप्रसादहानिः
कर्तव्येति चिन्तयन्नास्ते।।

इसी प्रकार 'अभिज्ञानशाकुंतल' मे राजा दुष्यन्त द्वारा कहे शब्द "देखो सूत अर्थात् सारथि! आश्रम में विनीत वेश में ही प्रवेश करना 'चाहिए' में 'सूत' के लिए 'सारथि' अर्थ का प्रयोग कविशिक्षा परम्परानुसार किया गया है :–

राजा अवतीर्यद्व सूत विनीतवेषेण प्रवेष्टव्यानि
तपोवनानि नाम! इंद तावद् गृह्यताम्।

उपसंहार :-

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अनेकार्थक शब्दों के माध्यम से विनयचन्द्रसूरि ने कवियों का उन विषयों से साक्षात्कार करवाया जहां अन्य आचार्यो की दृष्टि पहुंच ही नहीं सकी।

आचार्य विनयचन्द्रसूरि ने इतने भिन्न–भिन्न प्रकार के अर्थो का विवेचन किया है कि उन्होंने कवियों को सुकुमार कवि बनने के गुणों से सम्यक् प्रकार से परिचित करवा दिया हैं। उनके आश्चर्यचकित कर देने वाले अर्थो में निःसन्देह मौलिकता के दर्शन तो होते ही हैं साथ ही प्रयोग के द्वारा की गई पुष्टि उनके इस प्रशिक्षण को सार्थक भी कर देती हैं।

संदर्भ-सूचि :-

1. का. शि. 5/11, 12, 14, 24, 15, 29
2. वही 5/2
3. वही 5/12, 27, 28

4. वही 5/28, 13, 24,
5. वही 5/29, 30, वही 29, 30
6. वही 5/25, 13,
7. वही 5/28, 33, 16, 225
8. वही 5/13, 33, 34
9. वही 5/15,
10. वही 5/31
11. वही 5/1, 32, 17
12. वही 5/17, 18, 2, 3, 35, 26
13. वही 5/18, 3, 4
14. वही 5/36, 4
15. वही 5/11, वही, 14, 5
16. वही 5/22, 6, 7
17. वही 5/7, 35, 7, 8, 19
18. वही 5/22, 19,
19. वही 5/8, 20,
20. वही 5/12, 9
21. वही 5/20, 23, 22, 33
22. रघु. 1/90
23. रघु. 1/55
24. अभि.शा. 4/1 से पूर्व
25. पू. मे. 22
26. मनु. 9/10
27. रघु. 4/36
28. वेणी. 2/4
29. पंच. 142 के बाद पृ. 59.
30. अभि. शा. 1/15 के बाद।

पता – 603, स्वराज एनक्लेव, बोरखेड़ा, कोटा, पिन – 324005
मो. 7597429188

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 161-165

शेखावाटी क्षेत्र के ग्रामीण समुदाय के लोक–देवता : बाबा मालदास

डॉ. कमल महला
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय लक्ष्मणगढ़, सीकर।

शेखावाटी क्षेत्र का परिचय :–

राजस्थान के उत्तर–पूर्वी भू–भाग पर स्थित सीकर तथा झुंझुनू जिले को सम्मिलित रूप से शेखावाटी क्षेत्र या शेखावाटी अंचल कहा जाता है। 16 वीं शताब्दी से शेखावाटी क्षेत्र आमेर (जयपुर) राज्य की एक रियासत थी। पाश्चात्य इतिहासकारों ने शेखावाटी को राजस्थान का स्कॉटलैण्ड माना है।[1]

शेखावाटी का नामकरण :–

शेखावत राजपूतों से शासित प्रदेश होने के कारण इस क्षेत्र का नाम शेखावाटी पड़ा है। शेखावत शासकों के अलवा कायमखानी, नागड़ पठान आदि शासकों का शासन इस क्षेत्र में रहा है। शेखावत राव शेखाजी के वंशज थे तथा कच्छवाहों के भी वंशज थे। वाटी शब्द का प्रयोग क्षेत्र या चारदीवारी अथवा घेरे को बताता है। इसलिए शेखावाटी नाम से ज्ञात होता है 'शेखावतो का क्षेत्र' अथवा 'शेखावतो का प्रदेश'।

शेखावाटी की भोगोलिक स्थिति :–

शेखावाटी क्षेत्र का क्षेत्रफल एवं विस्तार – शेखावाटी अंचल एक सांस्कृतिक समरूपता के आधार पर चिन्हित किये जाने पर वर्तमान में प्रशासनिक रूप से निर्मित किये गए सीकर, झुंझनू, चूरू, नागौर, जयपुर जिलों में विस्तारित स्वीकार किया जा सकता है, परन्तु सीकर तथा झुंझनू जिलों को विवाद रहित शेखावाटी का भूभाग माना जा सकता है। इस आधार पर वर्तमान सीकर तथा झुंझनू जिले के क्षेत्र का भौगोलिक विस्तार, जो कि निम्नानुसार है, को शेखावाटी के क्षेत्रफल तथा विस्तार के रूप में समझा जा सकता है :–

सीकर जिले का कुल क्षेत्रफल 7742.43 वर्ग कि.मी. सीकर जिला लगभग 5,191.44 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। जिले की सीमाएँ उत्तर में झुंझुनू, उत्तर–पश्चिम में चूरू, दक्षिण–पश्चिम में नागौर, और दक्षिण–पूर्व में जयपुर जिलों से मिलती हैं। झुंझनू जिले का क्षेत्रफल 5,928 वर्ग किलोमीटर है। यह जिला उत्तर और उत्तर–पूर्व में हरियाणा राज्य से, दक्षिण–पूर्व में सीकर जिले से, दक्षिण–पश्चिम में नागौर जिल से, और पश्चिम में चूरू जिले से घिरा हुआ है।[2]

शेखावाटी अर्द्ध – मरुस्थलीय प्रदेश है। यहां पर इस प्रकार की वनस्पति ही पायी जाती है जिसको ज्यादा पानी की आवश्यकता नहीं होती। उदाहरण के लिए झाड़ी, कैर, कीकर, गूलर, सीसम, बबूल, सिरस, पलास आदि

यहां बहुलता से है। इस प्रदेश की प्रमुख नदियों में कान्तली, रानोली, कोछोर, त्रिवेणी, हर्ष एवं गंगा है। शेखावाटी प्रदेश खनिज पदार्थों से समृद्ध है। झुन्झुनूं जिले में खेतड़ी की पर्वत श्रृंखलाएं तांबे के लिए विश्व में प्रसिद्ध हैं। शेखावाटी क्षेत्र में कोबाल्ट, निकल, युरेनियम एवं सीसा आदि खनिज मिलते हैं। इन सबके अलावा चीनी मिट्टी, कच्चा चूना पत्थर, इमारती पत्थर इस क्षेत्र में मिलता है।

सामाजिक सरचना – किसी भी क्षेत्र में निवास करने वाली जनसंख्या एक विशेष प्रकार की वर्ग, वर्ण या जाति व्यवस्था में सामाजिक ढांचे का निर्माण करती है। कोजर एवं रोजनबर्ग के अनुसार सामाजिक संरचना का तात्पर्य सामाजिक इकाइयों के तुलनात्मक स्थिर एवं प्रतिमानित सम्बन्धों से है।[3]

भारतीय समाज में जाति तथा धर्म पर आधारित सामाजिक वर्गीकरण तथा संस्तरण देखने में मिलता है। शेखावाटी में भी धर्म तथा जाति व्यवस्था में विभेदित एवं संस्तरित समाज है। प्रमुख रुप से यहां पर हिन्दु तथा मुस्लिम धर्म को मानने वाली जनसंख्या निवास करती है। यहां पर अल्प संख्या में जैन धर्म के अनुयायी भी निवास करते हैं।

2011 की जनगणना के अनुसार सीकर और झुंझुनू जिलों की जनसंख्या और धर्म के आधार पर विवरण–सीकर जिले में कुल जनसंख्या : 26,77,737, पुरुष 13,80,268, महिलाएँ 12,97,469 है। हिन्दू धर्म में 89% तथा मुस्लिम धर्म में लगभग 10% जनसँख्या आती है। इसी प्रकार से झुंझनू जिले में कुल जनसंख्या 21,39,658, पुरुष 10,95,896, महिलाएँ 10,43,762 है। हिन्दू धर्म के अनुयायी 91% तथा मुस्लिम धर्म के अनुयायी लगभग 8% है।[4]

लक्ष्मणगढ़ उपखंड, राजस्थान के सीकर जिले में स्थित एक प्रशासनिक इकाई है। इस उपखंड का कुल क्षेत्रफल 1,222 वर्ग किलोमीटर है, जिसमें 1,205.49 वर्ग किलोमीटर ग्रामीण क्षेत्र और 16.26 वर्ग किलोमीटर शहरी क्षेत्र शामिल है।

भौगोलिक स्थिति : लक्ष्मणगढ़ उपखंड सीकर जिले के उत्तर–पूर्वी भाग में स्थित है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52 पर, सीकर से लगभग 30 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। 2011 की जनगणना के अनुसार, लक्ष्मणगढ़ उपखंड की कुल जनसंख्या 3,20,956 है, जिसमें से 2,67,564 लोग ग्रामीण क्षेत्रों में और 53,392 लोग शहरी क्षेत्रों में निवास करते हैं। उपखंड का लिंगानुपात प्रति 1,000 पुरुषों पर लगभग 979 महिलाएं है।[5]

प्रमुख कस्बे और गाँव : लक्ष्मणगढ़ उपखंड में कुल 165 गाँव शामिल हैं। प्रमुख गाँवों में बठोठ, बिड़ोदी बड़ी, बिड़ोदी छोटी, सिंगोदड़ा, धानानी, जाजोद, और नेछवा शामिल हैं। लक्ष्मणगढ़ उपखंड अपने ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्व के लिए जाना जाता है, जिसमें लक्ष्मणगढ़ किला और विभिन्न प्राचीन हवेलियाँ प्रमुख आकर्षण हैं।

संत का परिचय – बाबा मालदासजी का मंदिर सीकर जिले के लक्ष्मणगढ़ तहसील के राजपुरा ग्राम में स्थित हैं। राजपुरा ग्राम का मार्ग लक्ष्मणगढ़–मुकन्दगढ़ सड़क मार्ग से निकलता हैं। लक्ष्मणगढ़–मुकन्दगढ़ सड़क मार्ग पर लक्ष्मणगढ़ से 10 किलोमीटर दूर आंतरोली ग्राम के बाद राजपुरा ग्राम का बस स्टेण्ड है, जहाँ से एक किलोमीटर उत्तर में जाने पर राजपुरा ग्राम आता है। बाबा मालदासजी राजपुरा ग्राम में जाट जाति में पूनिया गौत्र में पैदा हुए। इनके जन्म के सटीक समय की जानकारी प्राप्त नहीं होती हैं। बाबा मालदासजी का स्वर्गवास वर्ष 1978 में चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि के दिन हुआ था।यदि बाबा की आयु सौ वर्ष माने तो इनका

जन्म 1878 के लगभग हुआ होगा।

बाबा मालदास जी के मंदिर में स्थापित बाबा की प्रतिमा

बाबा मालदासजी का मंदिर तथा झोपड़ी –

राजपुरा ग्राम में बाबा मालदास का मंदिर निर्मित है जिसका निर्माण ग्रामवासियों एवं बाबा के भक्तों द्वारा बाबा की मृत्यु के उपरान्त दी गयी भू–समाधि स्थल पर करवाया गया। इस मंदिर में बाबा की मूर्ति स्थापित की गयी है तथा मंदिर की देखभाल एवं पूजा–पाठ आदि कार्यों के लिए पुजारी का प्रबन्ध भी किया गया है। मंदिर के अतिरिक्त गांव में बाबा का निवास स्थल रहीं एक कुटिया है। लगभग आठ फुट व्यास के आकार वाली इस झोपड़ी की छत सरकण्ड़ों द्वारा निर्मित की गयी है। बाबा मालदासजी के बारे में किसी ग्रन्थ अथवा लेखन सामग्री की अनुपलब्धता होने के कारण राजपुरा ग्राम के निवासियों एवं मंदिर में आने वाले श्रद्दालुओं से बाबा के संदर्भ में जानकारी एकत्र की गयी जिससे यह ज्ञात होता है कि बाबाजी के संत स्वभाव तथा उनके जीवन काल में किये गए चमत्कार भरे कार्यों या भविष्यवाणियों से प्रभावित होकर लोगो द्वारा उन्हें पूजा जाने लगा है। बाबा मालदास जी के जीवन विवरण से यह भी ज्ञात हुआ है कि बाबा को किसी भी संत परम्परा से संबंधित नहीं किया जा सकता है क्योंकि इनके गुरु या आराध्य देवी या देवता का कोई विवरण उपलब्ध नहीं है।

बाबा मालदासजी की कोई स्कूली शिक्षा का कोई विवरण ज्ञात नहीं होता है। ग्रामीणों से हुई बातचीत से बाबा के अनपढ़ होने की जानकारी मिलती है। बाबा जन्मजात सिद्ध संत थे। बाबा मालदासजी बचपन में ग्रामीणों तथा अपने परिवारजन के पशुओं को गाँव की गोचरभूमि, जिसे स्थानीय भाषा में 'जोहड़' या 'जोहड़ा' कहा जाता है, में चराने ले जाते थे जहाँ पर किसी पेड़ के नीचे बैठकर ध्यानमग्न हो जाया करते थे। मालदासजी की उदासीनता देख कर पशु चरते–चरते बहुत बार आस–पास के खेतो में चले जाते थे। खेतो के मालिक किसान बाबा को पागल या बावला कह कर उलाहना दिया करते थें।

बाबा मालदासजी की सिद्वियों से ग्रामीणों का अवगत होना तथा संत के रूप में मान्यता प्राप्त करना – बाबा के संबंध में उनके बाल्य काल में ग्रामीणों की मान्यता यहीं थी कि बाबा एक सामान्य और भोले स्वभाव के व्यक्ति थें। कुछ लोग बाबा को पागल या बावला भी कह दिया करते थे। समय के साथ जब बाबा द्वारा अनायास ही बोली गयी बातों के सत्य हो जाने पर ग्रामीणों ने बाबा की वचन सिद्धि की इस क्षमता को पहचान कर बाबा को सिद्ध संत के रूप में स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया। बाबा मालदासजी के संदर्भ में जो विवरण ग्रामीणों से ज्ञात हुआ उसके अनुसार बाबा ने अपने जीवनकाल में अनेक चमत्कार किये थे। वचनसिद्धि के कई

विवरण मिले है, रोग निवारण की घटनाओं एवं महामारी की भविष्यवाणी के विवरण भी मिले है।

बाबा मालदासजी द्वारा किए गए चमत्कारों को प्रमुख रूप से तीन प्रकारो में वर्गीकृत कर समझा जा सकता है यथा, मनुष्यों को रोगमुक्त करना,आपदा या महामारी की भविष्यवाणी करना एवं बाबा द्वारा अनायास कही बातों का सत्य निकलना। बाबा मालदासजी द्वारा अपने जीवनकाल में इसी प्रकार के अनेक ऐसे चमत्कार किये गए है। इन घटनाओं का विवरण ग्रामीणों द्वारा दिया गया है। बाबा जब जीवित थे तब अनेक सट्टा खेलने वाले जुंआरी प्रवृति के लोग भी बाबा के पास सट्टे में निकलने वाले अंक को पूछने आ जाते थे।बाबा के मुँह से अनायास ही निकली बातो से यह लोग संभावित अंक का कयास लगाते रहते थे। ग्रामीण बताते है कि बाबा ऐसे लोगो को भगाने के लिए गालियॉ देते थे पर सट्टा खेलने वाले गालियाँ सुनते हुए भी वहाँ पर जमे रहते थे। कई ग्रामीण अपने खोये हुए या चोरी हुए पशुओं के संबन्ध में भी पूछने मालदासजी के पास आया करते थे।

बाबा मालदास के मंदिर में अर्पित किया जाने वाला भोग एवं प्रसाद – लोक देवता बाबा मालदासजी को जीवनभर जो भोजन पसंद था उसी भोजन को बाबा के मंदिर में भोग के रूप में अर्पित किया जाता है और बाबा का प्रिय भोजन था हरी मिर्च, बाजरे की ठंडी रोटी, शीतल दही और दूध। बाबा मालदासजी के मंदिर में आने वाले श्रद्धालु, जिनमें स्थानीय ग्रामीण प्रमुख रूप से है, मंदिर में भोग के रूप हरी मिर्च, बाजरे की ठंडी रोटी, शीतल दही और दूध आदि को अर्पित कर इसी सामग्री को प्रसाद के रूप में प्राप्त एवं ग्रहण करते है।

बाबा मालदासजी द्वारा किये गए चमत्कार – बाबा मालदास जी ने अपने जीवन काल में मानव कल्याण के कई कार्य किये जिनका विवरण ग्रामीणों से की गयी बातचीत में मिलता है। बाबा द्वारा मनुष्यों एवं पशुओं दोनों के कल्याण उनकी पीड़ा का निदान करके किया है। ग्रामीण अपने पालतू पशुओं को बीमारी से मुक्त करने के लिए बाबा से अरदास करने आते थे इस संबंध में एक ग्रामीण ने बताया कि उसके एक परिचित की ऊंटनी बीमार हो गयी तो वह बाबा के पास सहायता मांगने आया जिस पर बाबा ने कहा कि ऊंटनी को हरी मिर्च खिला दो तो वह ठीक हो जाएगी। ऊंटनी के मालिक ने सोचा कि ऊंट मिर्च नहीं खाते पर उसने बाबा के कहे अनुसार ऊंटनी को हरी मिर्च खिला दी जिसके बाद ऊंटनी ठीक भी हो गयी।

एक ग्रामीण भगीरथ जी ने एक प्रसिद्ध घटना का उल्लेख किया है जिसका विवरण अन्य ग्रामीणों ने भी दिया है जिसके अनुसार बाबा के चमत्कारों की बात सुनकर एक सेठ बाबा के पास आया। उसके घुटनों में दर्द था, वह चल नहीं पाता था। सेठ ने बाबा से घुटनों की पीड़ा ठीक करने की प्रार्थना की। दयालु बाबा के आशीर्वाद देते ही सेठ के घुटनों का दर्द दूर हो गया तथा वह चलने–फिरने लगा। बाबा ने अपने घुटनों की ताकत सेठ को दे दी और तब से बाबा जीवन भर बैठे ही रहे कभी खड़े नहीं हो पाए। उन्होंने सेठ के पीड़ा खुद भोगना स्वीकार कर सेठ को ठीक कर दिया।

बाबा से जुड़ा एक और चमत्कार भारूराम जी पूनियां ने बताया कि बाबा का शरीर शांत होने पर जब ग्रामीण उन्हें समाधि दे रहे थे तो ग्रामीणों ने देखा की बाबा के मृत शरीर से पसीना एवं खून निकल रहा है। इन सब चमत्कारों के अलावा अनेक ग्रामीण यह स्वीकार करते है कि उनके परिवार पर बाबा का आशीर्वाद है जिसके कारण वे स्वस्थ एवं खुशहाल है।

शेखावाटी में किसान समुदाय तथा बाबा मालदास जी के मध्य संबंध का समाजशास्त्रीय के अध्ययन करने के उपरान्त यह ज्ञात होता है कि लोक देवताओ तथा ग्रामीण जनसमूह के मध्य घनिष्ठ संबंध रहा है। ग्रामीण

लोक देवताओं से अधिक गहरा और सीधा जुड़ाव स्वीकारते है। लोक देवता एवं संत जनकल्याण के अपने कार्यों के कारण जनसमुदाय में लोकप्रियता एवं आदर प्राप्त करते है और धीरे–धीरे पूजनीय हो जाते है। इसी प्रकार संत एवं लोक देवता का दर्जा प्राप्त होता है।

संदर्भ :-

1. शर्मा एवं शास्त्रीय शेखावाटी का इतिहास, पृ. 74
2. Government of Rajasthan. (2025). Jankalyan category and entry type. Rajasthan Government.
3. Coser, Lewis A., & Rosenberg, Bernard. (1976). Sociological Theory: A Book of Readings (5th ed.). Macmillan.
4. Office of the Registrar General & Census Commissioner, India. (2011). Census of India 2011: Provisional Population Totals. Ministry of Home Affairs, Government of India.
5. Office of the Registrar General & Census Commissioner, India. (2011). Census of India 2011: Provisional Population Totals. Ministry of Home Affairs, Government of India.

kamalmahla@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 166–172

Romeo Juliet : Artistic Study

Dr. Sanyukta Thorat
Department Head and Associate Professor Department of Fine Arts and Chhand Mandir
Rashtrasant Tukdoji Maharaj Nagpur University

Summary :

Romeo and Juliet by William Shakespeare is a timeless artistic masterpiece that delves deep into the human emotions of love, fate, conflict, and tragedy. As an artistic study, the play is a profound exploration of the intense and passionate love between two young individuals from feuding families—the Montagues and the Capulets.

Shakespeare masterfully weaves poetic language, dramatic irony, symbolism, and vivid imagery to portray the impulsive nature of youthful love, as well as the destructive power of hatred and social division. The play's structure, from the lyrical opening sonnet to the final death scene, reflects a deliberate artistic choice to balance romance with inevitability, creating a rhythm that mirrors the tension between love and fate.

Introduction :

William Shakespeare's Romeo and Juliet stands as one of the most iconic and enduring works in the history of literature, not only for its romantic narrative but also for its profound artistic qualities. As an artistic study, the play offers a rich tapestry of poetic expression, dramatic structure, symbolic imagery, and emotional depth that captures the complexity of human experience. Set against the backdrop of Verona, the story of the star-crossed lovers unfolds through a series of vivid scenes filled with lyrical dialogue, intense emotion, and escalating conflict, all of which contribute to the dramatic tension and tragic resolution. Shakespeare's use of language—marked by metaphors, similes, sonnets, and rhetorical devices—elevates the narrative to a realm of artistic brilliance, transforming a tale of forbidden love into a universal commentary on fate, youth, passion, and the destructiveness of hate.

The play also reflects Renaissance ideals and anxieties, blending classical influences with contemporary themes, thereby enriching its artistic value. Through the characters of Romeo and

Juliet, Shakespeare presents not merely a romantic tragedy, but a nuanced study of impulsiveness, idealism, and the inevitable collision between personal desire and societal constraints. The visual and emotional intensity of the play has inspired countless adaptations in theatre, art, music, and film, attesting to its enduring artistic power. In this study, Romeo and Juliet is approached not simply as a story of love and death, but as a complex artistic creation that continues to move, challenge, and inspire audiences across time and cultures.

The characters themselves are portrayed as both victims of external circumstances and their own emotional excesses, making the tragedy deeply human and relatable. Romeo and Juliet's secret meetings, poetic exchanges, and ultimate demise highlight not only their individual emotions but also the broader social constraints and generational conflicts that doom them. Through this artistic lens, Romeo and Juliet is more than a romantic tale—it is a reflection on the consequences of impulsiveness, the fragility of human relationships, and the tragic cost of enmity passed down through generations. The play continues to resonate across cultures and eras, serving as a powerful artistic expression of love's potential and peril.

Choice of subject :

The choice of Romeo and Juliet as a subject for artistic study is both compelling and significant due to the play's enduring impact on literature, drama, and visual culture. Shakespeare's tale of two young lovers caught in the crossfire of familial hatred transcends time, culture, and geography, making it a universally relevant work of art. The subject is rich in emotional, thematic, and symbolic layers that lend themselves to artistic exploration—from the beauty and intensity of youthful love to the tragic consequences of impulsive decisions and inherited conflict.

The characters, though deeply individual, represent archetypes of passion, innocence, honor, and rebellion, providing a foundation for timeless interpretations in various artistic forms including theatre, painting, music, ballet, and film. By choosing Romeo and Juliet as the focus of an artistic study, one engages not only with the poetic brilliance and dramatic structure of the play but also with its visual imagery, powerful motifs, and the ways in which it continues to influence and inspire artists around the world. Furthermore, the play's treatment of light and darkness, fate and free will, life and death, makes it a fertile subject for artistic inquiry and expression.

Its emotional intensity and tragic beauty make it particularly suitable for analyzing how art can reflect, question, and shape human experience. Thus, the choice of Romeo and Juliet is not merely a study of a romantic tragedy but a deep artistic investigation into the human condition as envisioned by one of the greatest literary minds in history.

Objectives of Study :

1. To explore the artistic and literary elements employed by William Shakespeare in Romeo and Juliet.
2. To analyze the dramatic structure, dialogue, and poetic devices used in the play.
3. To examine the visual and symbolic representation of love, conflict, and tragedy in various adaptations of Romeo and Juliet.
4. To study the emotional depth and psychological portrayal of key characters through artistic lenses.
5. To understand the influence of Romeo and Juliet on different art forms such as painting, dance, theatre, film, and music.

Assumptions :

1. Romeo and Juliet is not only a literary masterpiece but also a rich source of artistic inspiration across multiple art forms.
2. The emotional and thematic depth of the play lends itself to varied artistic interpretations over time and across cultures.
3. Shakespeare's use of poetic language, symbolism, and dramatic tension contributes significantly to the artistic value of the play.
4. Visual, musical, and performative adaptations of Romeo and Juliet reflect changing artistic, social, and cultural sensibilities.
5. Artistic representations of Romeo and Juliet emphasize universal human emotions such as love, conflict, loss, and fate.

Research Methodology :

- Information Collection
- Field Study
- Analytical Methods
- Statistical Information
- Conclusions and Recommendations

Subject Analysis :

The subject of Romeo and Juliet offers a rich and multidimensional foundation for artistic analysis, as it intertwines powerful themes of love, fate, conflict, youth, and death within a tightly woven dramatic structure. At its core, the play is a study in emotional extremes—where passionate love and deep-seated hatred exist side by side, creating a volatile atmosphere that leads to inevitable tragedy. Artistically, Shakespeare uses this contrast to heighten the intensity of the narrative, with

love and violence often portrayed in the same breath. The language of the play is highly poetic and symbolic, filled with metaphors of light and darkness, celestial imagery, and oxymoronic expressions that capture the paradoxes of love and life.

Romeo and Juliet themselves are not just characters but representations of idealized love, whose emotions transcend reason and social boundaries, making them both relatable and mythic. The dramatic technique of foreshadowing, especially through the use of dreams, premonitions, and the prologue, adds an artistic layer that emphasizes the role of fate and the inescapable nature of the events that unfold. Furthermore, the play's settings—from the festive ball to the shadowy tomb—are crafted to mirror the internal states of the characters, enhancing the emotional and visual impact.

The tragic ending, though heartbreaking, is also artistically redemptive, as it brings about reconciliation and exposes the futility of hatred. Through this subject analysis, it becomes evident that Romeo and Juliet is not just a romantic drama but a deeply artistic reflection on the vulnerabilities of human nature, the beauty and danger of intense emotion, and the thin line between love and loss.

Literary Artistry in Romeo and Juliet :

Language and Poetic Form :

One of the most striking artistic features of Romeo and Juliet is Shakespeare's masterful use of language. The play is replete with poetic devices such as metaphor, simile, personification, and especially the use of the sonnet form. The prologue itself is a Shakespearean sonnet, encapsulating the tragic fate of the two lovers in just 14 lines. This compact poetic form sets a lyrical tone and establishes a sense of inevitability.

Throughout the play, Shakespeare uses rich imagery and symbolism to convey the intensity of the characters' emotions. For instance, Romeo's first encounter with Juliet is described with celestial metaphors—Juliet is a "rich jewel in an Ethiope's ear," and their love is compared to a "holy shrine." Such elevated poetic language not only intensifies the romantic atmosphere but also elevates the characters' youthful passion to a spiritual plane.

Dramatic Structure and Conflict :

Shakespeare's skillful dramaturgy enhances the artistic value of the play. The structure follows the classical five-act tragedy, with a clear exposition, rising action, climax, falling action, and catastrophe. The central conflict between love and social duty, youth and age, and individual desire versus family loyalty creates dramatic tension throughout the narrative.

The play's dialogue is crafted with rapid exchanges and vivid contrasts. The use of oxymorons such as "loving hate" and "feather of lead" reflects the confusion and intensity of adolescent love. Shakespeare's ability to blend comedy, romance, and tragedy in the same play is an artistic innovation

that broadens its emotional appeal and complexity.

Theatrical Innovations and Staging :

Original Performance Context :

Romeo and Juliet was written in the early 1590s and first performed by the Lord Chamberlain's Men. The Globe Theatre's open-air structure and Elizabethan theatrical conventions influenced how the play was staged and received. The absence of elaborate scenery placed greater emphasis on dialogue, physical gestures, and the actors' expressiveness, thereby heightening the audience's imaginative engagement.

Use of Space and Time :

Shakespeare employs innovative techniques in managing theatrical space and time. The rapid shifts from public spaces (streets, the market square) to private spaces (Juliet's chamber) reflect the contrast between social constraints and intimate emotions. Scenes such as the balcony scene use minimal props but powerful poetic language to create a deeply evocative atmosphere, illustrating the theatrical economy and creative use of minimal stage design.

Characterization and Performance :

The characters of Romeo and Juliet offer actors rich emotional material, from the innocence and impulsiveness of young love to the despair of inevitable loss. The complexity of characters such as Mercutio and the Nurse adds layers of humor and realism, balancing the idealism of the protagonists. This multifaceted characterization is an artistic achievement, allowing diverse interpretations and dynamic performances over centuries.

Visual Symbolism and Artistic Imagery :

Light and Darkness Motif :

Visual symbolism in Romeo and Juliet plays a crucial role in conveying thematic elements. The frequent contrast between light and darkness represents both the purity of love and the shadow of death. Juliet is often described as a radiant source of light in the dark world of Verona's feuding families. For example, Romeo refers to Juliet as "the sun" and a "bright angel."

This motif also enhances the play's dramatic tension. Many pivotal scenes, such as the lovers' nocturnal meetings and Romeo's exile, occur at night, symbolizing danger, secrecy, and fleeting happiness. The use of light and darkness enriches the play's aesthetic quality, inviting visual interpretation in stage and film adaptations.

The Symbolism of Poison and Death :

Poison and death are recurring images that foreshadow the tragic outcome. The vial of poison Romeo consumes and Juliet's dagger symbolize not only physical death but the destructive power of

passion and familial hatred. The artistic use of these symbols elevates the narrative from mere melodrama to a profound meditation on fate, mortality, and the consequences of entrenched conflict.

Cultural and Artistic Legacy :

Adaptations and Interpretations :

Romeo and Juliet has inspired countless adaptations across various artistic media, including opera, ballet, film, and visual arts. Each adaptation reflects the cultural context of its time, demonstrating the play's universal themes and artistic flexibility.

For instance, Sergei Prokofiev's ballet adaptation emphasizes the poetic and emotional essence through music and movement, highlighting the artistic interplay between literature and performing arts. Baz Luhrmann's 1996 film Romeo + Juliet modernizes the setting while preserving Shakespeare's original language, blending contemporary visual aesthetics with classical text. This creative fusion exemplifies how Romeo and Juliet continues to be a living artistic work.

Influence on Romantic Art and Literature :

The play's portrayal of youthful, idealized love has influenced the Romantic movement in literature and art. The archetype of star-crossed lovers has permeated poetry, painting, and music, often symbolizing the conflict between individual passion and social constraints. Romantic artists and writers draw upon the emotional intensity and tragic beauty embodied in Shakespeare's characters to explore themes of love, loss, and destiny.

Educational and Cultural Significance :

Beyond entertainment, Romeo and Juliet serves as a cultural touchstone in education and discourse on love, family, and social division. Its artistic study fosters critical thinking about human emotions and societal norms. Schools and universities worldwide include the play in curricula, encouraging students to engage with its artistic and ethical dimensions.

Conclusion :

In conclusion, Romeo and Juliet stands as a masterful artistic creation that continues to resonate with audiences due to its timeless exploration of love, fate, conflict, and human vulnerability. Shakespeare's exceptional use of poetic language, symbolic imagery, and dramatic structure elevates the narrative from a simple romantic tragedy to a profound artistic expression of the human condition. The characters of Romeo and Juliet, though young and impulsive, are drawn with such emotional depth and lyrical intensity that their story transcends its historical setting to become a universal symbol of passionate but doomed love.

The play's artistic brilliance lies in its ability to balance beauty and sorrow, light and darkness, hope and despair—inviting endless interpretations and adaptations across various art forms and cultures.

As an artistic study, Romeo and Juliet offers insight not only into Shakespeare's creative genius but also into the broader questions of life, death, emotion, and destiny. Its visual elements, thematic richness, and emotional power ensure that it remains a foundational work in the study of literature and art. Ultimately, the play endures not only because of the love story it tells but because of the artistic mastery with which that story is told—a mastery that continues to inspire artists, scholars, and audiences around the world.

Bibliography :

1. Bloom, Harold. Shakespeare: The Invention of the Human. Riverhead Books, 1998.
2. Greenblatt, Stephen. Will in the World: How Shakespeare Became Shakespeare. W.W. Norton & Company, 2004.
3. Neely, Carol Thomas. Women and Men in Shakespeare's Plays. Yale University Press, 1985.
4. Mack, Maynard. Shakespeare's Tragic Sequence. Yale University Press, 1957.
5. Wells, Stanley, and Gary Taylor, editors. The Oxford Shakespeare: Romeo and Juliet. Oxford University Press, 2008.
6. Girard, René. Deceit, Desire, and the Novel: Self and Other in Literary Structure. Johns Hopkins University Press, 1965.
7. www.wikipedia.com

Email Id : sanyuktapihu@gmail.com
Mobile no. 9372163566

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 173–177

हिंदी भाषा शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की संभावनाएं

Hicky Devadas
Assistant Professor, Govt. College of Teacher Education, Kozhikode, Kerala

सारांश :–

21वीं सदी में कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) का विकास शिक्षा क्षेत्र में एक नया युग लेकर आया है। भारत जैसे बहुभाषी देश में हिंदी भाषा की शिक्षा में AI की भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। यह शोध लेख हिंदी भाषा शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की संभावनाओं, चुनौतियों और भविष्य की दिशाओं का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द :– कृत्रिम बुद्धिमत्ता, हिंदी भाषा शिक्षा, डिजिटल शिक्षा, भाषा प्रौद्योगिकी, व्यक्तिगत शिक्षा।

प्रस्तावना :–

हिंदी विश्व की तीसरी सबसे बड़ी भाषा है और भारत की राजभाषा के रूप में इसका महत्व निर्विवाद है। आज के डिजिटल युग में हिंदी भाषा की शिक्षा में नवाचार की आवश्यकता है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता इस दिशा में एक क्रांतिकारी समाधान प्रस्तुत करती है। पारंपरिक शिक्षण पद्धतियों की सीमाओं को पार करते हुए, AI आधारित तकनीकें व्यक्तिगत, इंटरैक्टिव और प्रभावी शिक्षण अनुभव प्रदान कर सकती हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी डिजिटल प्रौद्योगिकी और AI के उपयोग पर जोर दिया गया है। इस संदर्भ में हिंदी भाषा शिक्षा में AI की संभावनाओं का अध्ययन समसामयिक और आवश्यक है।

भाषा शिक्षा में प्रौद्योगिकी के उपयोग पर व्यापक शोध हुआ है। चैपल एवं जयानी (2003) ने CALL (Computer Assisted Language Learning) के महत्व को रेखांकित किया था। वर्मा (2018) ने भारतीय भाषाओं में डिजिटल शिक्षा की चुनौतियों पर प्रकाश डाला है।

हाल के वर्षों में Machine Learning और Natural Language Processing के विकास ने भाषा शिक्षा में नई संभावनाएं खोली हैं। शर्मा एवं गुप्ता (2021) ने हिंदी NLP के विकास में आई प्रगति का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। अग्रवाल (2022) ने AI आधारित भाषा शिक्षण ऐप्स की प्रभावशीलता पर अध्ययन किया है।

हिंदी भाषा शिक्षा में AI की मुख्य संभावनाएं :–

1. **व्यक्तिगत शिक्षण (Personalized Learning) :**

कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रत्येक छात्र की अधिगम शैली, गति और आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षण सामग्री को अनुकूलित कर सकती है।

Adaptive Learning Systems का उपयोग करके :

– छात्रों की कमजोरियों की पहचान और उसके अनुसार अभ्यास सामग्री प्रदान करना।
– व्याकरण, शब्दावली और उच्चारण में व्यक्तिगत सुधार योजना बनाना।
– प्रगति की निरंतर निगरानी और फीडबैक प्रदान करना।

2. बुद्धिमान ट्यूटरिंग सिस्टम (Intelligent Tutoring Systems)

ITS तकनीक के माध्यम से :

– वर्चुअल हिंदी शिक्षक का विकास जो 24 x 7 उपलब्ध हो।
– संवादात्मक शिक्षण जहां छात्र प्रश्न पूछ सकें।
– तत्काल संदेह निवारण और स्पष्टीकरण।
– विभिन्न शिक्षण विधियों का स्वचालित चयन।

3. प्राकृतिक भाषा प्रसंस्करण (Natural Language Processing)

हिंदी NLP के विकास से :

– स्वचालित व्याकरण जांच और सुधार।
– वाक्य संरचना का विश्लेषण और सुझाव।
– शब्दार्थ विश्लेषण और संदर्भ आधारित शब्द चयन।
– लेखन कौशल में सुधार के लिए तत्काल फीडबैक।

4. वाक् पहचान और संश्लेषण (Speech Recognition & Synthesis)

उच्चारण और श्रवण कौशल विकास में :

– हिंदी उच्चारण की सटीकता की जांच।
– मातृभाषा के प्रभाव की पहचान और सुधार।
– श्रुतलेख अभ्यास के लिए स्वचालित Audio सामग्री।
– बोलचाल की हिंदी सीखने के लिए संवादात्मक अभ्यास।

5. गेमिफिकेशन और इंटरैक्टिव शिक्षण :

AI आधारित शैक्षिक खेलों के माध्यम से :

– भाषा सीखने को मनोरंजक बनाना।
– चुनौती स्तर का स्वचालित समायोजन।
– उपलब्धि आधारित पुरस्कार प्रणाली।
– सामूहिक शिक्षण गतिविधियां।

व्यावहारिक अनुप्रयोग –

1. स्कूली शिक्षा में :

– प्राथमिक स्तर पर देवनागरी लिपि सीखने के लिए AI ऐप्स।
– मध्य स्तर पर व्याकरण और रचना कौशल विकास।
– उच्च स्तर पर साहित्य विश्लेषण और आलोचनात्मक चिंतन।

2. उच्च शिक्षा में :-

– हिंदी साहित्य के विश्लेषण के लिए Text Mining.
– भाषा विज्ञान अनुसंधान में डेटा विश्लेषण।
– अनुवाद अध्ययन में Machine Translation का उपयोग।

3. व्यावसायिक प्रशिक्षण में :-

– सरकारी कर्मचारियों के लिए हिंदी प्रशिक्षण मॉड्यूल।
– व्यापारिक हिंदी सीखने के लिए विशेषीकृत कोर्स।
– न्यायपालिका में हिंदी के उपयोग हेतु प्रशिक्षण।

तकनीकी चुनौतियां :-

1. भाषाई जटिलताएं

– देवनागरी लिपि की जटिलता और संयुक्ताक्षरों की समस्या।
– क्षेत्रीय उच्चारण भेद और बोलियों की विविधता।
– संस्कृत तत्सम शब्दों की बहुलता।
– व्याकरणिक नियमों की जटिलता।

2. डेटा की कमी :

– गुणवत्तापूर्ण हिंदी भाषी डेटाबेस की कमी।
– विभिन्न स्तरों के लिए मानकीकृत सामग्री का अभाव।
– दृश्य है श्रव्य संसाधनों की सीमित उपलब्धता।

3. तकनीकी सीमाएं :

– हिंदी के लिए परिष्कृत AI मॉडल का अभाव
– Computing Resources की आवश्यकता।
– इंटरनेट कनेक्टिविटी की समस्या।

सामाजिक-आर्थिक प्रभाव :

सकारात्मक प्रभाव :-

– शिक्षा की पहुंच में वृद्धि, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में।
– शिक्षा की लागत में कमी।
– मानकीकृत गुणवत्ता का आश्वासन।
– रोजगार के नए अवसर।

चुनौतियां :-

– पारंपरिक शिक्षकों की नौकरी पर प्रभाव।
– डिजिटल विभाजन की समस्या।
– सामाजिक संपर्क में कमी।
– भाषा की सांस्कृतिक जड़ों से दूरी।

भविष्य की दिशाएं :

- बेसिक हिंदी लर्निंग ऐप्स का व्यापक विकास।
- Speech Recognition की सटीकता में सुधार।
- सरकारी स्कूलों में पायलट प्रोजेक्ट का क्रियान्वयन।
- समग्र AI Tutoring Systems का विकास।
- Virtual Reality और Augmented Reality का एकीकरण।
- Cross-linguistic AI models का विकास।
- Quantum Computing के साथ Integration

नीतिगत सुझाव :-

सरकारी स्तर पर :

- हिंदी AI Research के लिए विशेष Funding.
- Public-Private Partnership को बढ़ावा।
- Data Collection और Standardization की योजना।
- शिक्षक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में AI समन्वय।

शैक्षणिक संस्थानों के लिए :

- AI Literacy को पाठ्यचर्या में शामिल करना।
- शोध और विकास के लिए प्रयोगशाला।
- Industry Collaboration को प्रोत्साहन।
- छात्र और अध्यापक Faculty Exchange Programs.

निजी क्षेत्र की भूमिका :

- EdTech Startups को Support.
- Corporate Social Responsibility के तहत Funding.
- Technology Transfer और Knowledge Sharing.
- अंतरराष्ट्रीय Collab.

निष्कर्ष :-

हिंदी भाषा शिक्षा में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की संभावनाएं अत्यंत व्यापक और उत्साहजनक हैं। यद्यपि तकनीकी और सामाजिक चुनौतियां मौजूद हैं, परंतु उचित नीति निर्माण, अनुसंधान निवेश और Stakeholders के सहयोग से इन्हें दूर किया जा सकता है।

AI का उपयोग हिंदी शिक्षा को अधिक व्यक्तिगत, प्रभावी और सुलभ बना सकता है। इससे न केवल भाषा सीखने की गुणवत्ता में सुधार होगा, बल्कि हिंदी का वैश्विक प्रसार भी संभव होगा। भविष्य में AI और हिंदी भाषा शिक्षा का संयोजन भारत की भाषाई विरासत को संरक्षित करते हुए उसे आधुनिक युग के अनुकूल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

सफलता के लिए आवश्यक है कि हम तकनीकी को मानवीय स्पर्श के साथ संतुलित करें और भाषा की

सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखते हुए नवाचार को अपनाएं।

संदर्भ सूची :-

1. अग्रवाल, प्रिया (2022). "AI आधारित भाषा शिक्षण ऐप्स की प्रभावशीलता : एक तुलनात्मक अध्ययन', शैक्षिक तकनीकी जर्नल, खंड 15, अंक 3, पृष्ठ 45–62.
2. गुप्ता, राजेश कुमार (2021). 'डिजिटल इंडिया में हिंदी भाषा की चुनौतियां और संभावनाएं', भाषा विज्ञान पत्रिका, खंड 28, अंक 2
3. तिवारी, डॉ. संजय (2020). 'हिंदी शिक्षा में सूचना प्रौद्योगिकी का योगदान : आधुनिक शिक्षा, खंड 45, अंक 8
4. पांडे, डॉ. रमेश चंद्र (2019). 'भारतीय भाषाओं के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता : संभावनाएं और चुनौतियां', तकनीकी शिक्षा पत्रिका, खंड 22, अंक 1
5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020). भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय।

P. : 9526266873

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 178–186

राजस्थान की पंचायती राज व्यवस्था में महिला सशक्तिकरण : न्यायिक दृष्टिकोण

रामचंद्र सिंह (शोधार्थी, विधि विभाग)
डॉ. संजुला थानवी (एसोसिएट प्रोफेसर)
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

सारांश :–

राजस्थान की पंचायती राज व्यवस्था में महिला सशक्तिकरण और न्यायिक दृष्टिकोण विषयक यह लेख राज्य में महिलाओं को स्थानीय शासन में भागीदारी दिलाने की दिशा में किए गए संवैधानिक, विधिक एवं न्यायिक प्रयासों का समेकित विश्लेषण प्रस्तुत करता है। संविधान के 73वें संशोधन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिए 33% आरक्षण सुनिश्चित किया गया,[1] जिसे राजस्थान सरकार ने 50% तक बढ़ाकर महिला सहभागिता को और सशक्त बनाया। इस आरक्षण ने महिलाओं को राजनीतिक, सामाजिक और प्रशासनिक क्षेत्र में नेतृत्व करने का अवसर दिया, जिससे ग्राम स्तर पर शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता एवं सामाजिक विकास संबंधी निर्णयों में उनका सक्रिय योगदान बढ़ा। न्यायपालिका ने भी महिला प्रतिनिधित्व की सुरक्षा एवं गरिमा के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जावेद बनाम हरियाणा राज्य (2003) में सुप्रीम कोर्ट ने चुनाव लड़ने की योग्यता को जनसंख्या नियंत्रण जैसे व्यापक सामाजिक उद्देश्यों से जोड़ा और स्पष्ट किया कि चुनाव लड़ना मौलिक नहीं बल्कि वैधानिक अधिकार है, जिस पर तर्कसंगत प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं। राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा सारिका बनाम राज्य सरकार एवं राज्य बनाम शोभा देवी जैसे प्रकरणों में महिला सरपंचों के अधिकारों की रक्षा करते हुए स्पष्ट किया गया कि निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों को उनके कार्यकाल के दौरान दबाव या प्रॉक्सी शासन के तहत कार्य करने के लिए विवश नहीं किया जा सकता। हालांकि, व्यवहारिक धरातल पर आज भी कई क्षेत्रों में महिलाओं को प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व, सामाजिक दबाव और निर्णय लेने की स्वतंत्रता की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। फिर भी, राज्य सरकार की नीतियों, संवैधानिक संरक्षण और न्यायिक समर्थन ने राजस्थान में महिला सशक्तिकरण की दिशा में पंचायती राज व्यवस्था को एक सशक्त मंच के रूप में स्थापित किया है।

मुख्य शब्द : पंचायती राज व्यवस्था, महिला सशक्तिकरण, न्यायिक दृष्टिकोण, प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व, न्यायिक संरक्षण, नेतृत्व क्षमता।

प्रस्तावना :–

आज सबसे ज्यादा इस्तेमाल और चर्चित शब्द है महिला सशक्तिकरण। सशक्तीकरण श्शब्द की सबसे

विशिष्ट विशेषता यह है कि इसमें शक्ति श्शब्द शामिल है, जहाँ महिलाएँ भौतिक और बौद्धिक संसाधनों पर नियंत्रण प्राप्त करती हैं और पितृसत्ता और लिंग आधारित भेदभाव की विचारधारा को चुनौती देती हैं। सशक्तिकरण एक जटिल अवधारणा है जिसकी व्याख्या कई तरीकों से की जाती है। अपने सरलतम रूप में सशक्तिकरण का मतलब सत्ता के पुनर्वितरण की अभिव्यक्ति है जो पितृसत्तात्मक विचारधारा और पुरुष प्रभुत्व को चुनौती देता है। यह एक प्रक्रिया और प्रक्रिया का परिणाम दोनों है। यह संरचनाओं और संस्थानों का परिवर्तन है जो लैंगिक भेदभाव को मजबूत करता है और नष्ट करता है। विजयंती (2000) के अनुसार, सशक्तीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके तहत महिलाएं अपनी आत्मनिर्भरता बढ़ाने के लिए खुद को संगठित करने में सक्षम हो जाती हैं, ताकि वे अपने विकल्पों को बनाने और अपने संसाधनों को नियंत्रित करने के लिए अपने स्वतंत्र अधिक स्वयं के अधीनता को चुनौती देने और काम करने में सहायता करेगा। सशक्तिकरण जागरुकता और क्षमता निर्माण की एक की शक्ति और नियंत्रण कर निर्माण करहै है।

महिलाओं का सशक्तीकरण मानव अधिकारों और विकासात्मक प्रवचनों में तेजी से लोकप्रिय शब्द बनता जा रहा है। महिलाएं जीवन के सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। समाज के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए महिलाओं का सशक्तीकरण एक आवश्यक बुनियादी शर्त है। यद्यपि महिलाओं की आबादी का आधा हिस्सा है, वे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में अधीनता में असमान हैं। महिलाएं स्वाभिमान और स्वायत्तता के लिए संघर्ष कर रही हैं। 1980 के मध्य से महिलाओं दवारा अपनी उत्पीड़ित स्थिति और विभिन्न महिलाओं के आंदोलनों के माध्यम से दुर्दशा पर सवाल उठाने के कारण, महिला सशक्तिकरण का मुद्दा ध्यान में आया। महिला को पुरुषों के साथ समानता प्राप्त करने में मदद करने के लिए या लिंग आधारित भेदभाव को कम करने में सहायता के रूप में सशक्तिकरण की परिकल्पना की गई है।

राजस्थान की सामाजिक संरचना परंपरागत रूप से पुरुष प्रधान रही है, जहाँ महिलाओं की भूमिका घरेलू दायरे तक सीमित मानी जाती थी। किंतु लोकतांत्रिक शासन प्रणाली के विस्तार और संविधान के 73वें संशोधन अधिनियम, 1992 के लागू होने के बाद पंचायती राज संस्थाओं के माध्यम से महिलाओं को राजनीतिक मंच पर प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ। राजस्थान, जिसने 50% आरक्षण लागू कर इस दिशा में अग्रणी भूमिका निभाई, आज ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाने की दिशा में एक प्रेरक उदाहरण बन चुका है। महिला सशक्तिकरण न केवल अधिकारों की प्राप्ति तक सीमित है, बल्कि यह निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी, नेतृत्व की क्षमता के विकास और सामाजिक परिवर्तन की ओर भी संकेत करता है। न्यायपालिका ने समय–समय पर अपने निर्णयों के माध्यम से महिलाओं के इस नवगठित अधिकार को संरक्षण और दिशा प्रदान की है। जावेद बनाम हरियाणा राज्य, सारिका बनाम राज्य सरकार, एवं राज्य बनाम शोभा देवी जैसे मामलों में न्यायालयों ने स्पष्ट किया कि महिला प्रतिनिधित्व केवल सांकेतिक नहीं, बल्कि प्रभावशाली होना चाहिए। यह लेख राजस्थान की पंचायती राज व्यवस्था में महिला सशक्तिकरण की प्रगति और उसमें न्यायिक दृष्टिकोण की भूमिका का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है। ग्रामीण स्थानीय निकायों को समग्र अंतरण वर्ष 2013–14 के 39.9% से बढ़कर 2021–22 के बीच 43.9% हो गया तथा पंचायत अंतरण (विकेंद्रीकरण) सूचकांक 2024 में यह सूचकांक 54.6% हो गया है।

रिपोर्ट यह दर्शाती है कि पंचायतों को अधिक स्वायत्तता और सशक्तिकरण मिल रहा है, हालांकि कुछ राज्यों में विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया में सुधार की आवश्यकता है। विकेंद्रीकरण रैंकिंग में कर्नाटक अव्वल रहा जबकि

केरल और तमिलनाडु क्रमशः दूसरे और तीसरे स्थान पर रहे, वहीं रैंकिंग में सुधार कर राजस्थान 8वें स्थान पर पहुंच गया।[2]

लेख के प्रमुख उद्देश्य :–

राजस्थान में पंचायती राज व्यवस्था के अंतर्गत महिलाओं की भागीदारी का विश्लेषण करना, विशेषकर 73वें संविधान संशोधन और राज्य सरकार द्वारा किए गए कानूनी प्रावधानों की पृष्ठभूमि में।

1. महिला सशक्तिकरण की वास्तविक स्थिति को समझना, अर्थात आरक्षण के माध्यम से महिलाओं को प्राप्त अधिकारों का ग्राम पंचायतों में व्यवहारिक रूप से किस प्रकार क्रियान्वयन हुआ है।
2. न्यायपालिका द्वारा दिए गए महत्वपूर्ण निर्णयों का अध्ययन करना, जिनसे महिला पंचायती प्रतिनिधियों के अधिकारों की रक्षा, उनकी भूमिका की वैधता और गरिमा सुनिश्चित हुई है।
3. प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व, सामाजिक दबाव, और निर्णय लेने की स्वतंत्रता जैसी व्यवहारिक चुनौतियों को उजागर करना, जिससे यह समझा जा सके कि कानूनी अधिकारों के बावजूद महिला नेतृत्व किन–किन अड़चनों का सामना करता है।
4. इस बात का मूल्यांकन करना कि न्यायिक दृष्टिकोण किस प्रकार महिला सशक्तिकरण को समर्थन और संवैधानिक संरक्षण प्रदान करता है, और पंचायतों में उनकी भूमिका को प्रभावशाली बनाता है।
5. स्थानीय शासन में महिलाओं के सशक्तिकरण की प्रक्रिया को एक सामाजिक परिवर्तन के रूप में रेखांकित करना, जिससे लोकतंत्र की जड़ें गांव स्तर तक मजबूत होती हैं।

शोध पद्धति :–

यह एक वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध है, जिसमें पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी, कानूनी प्रावधानों एवं न्यायिक दृष्टिकोण का विश्लेषण किया गया है। यह द्वितीयक डेटा पर आधारित शोध है, जिसमें विभिन्न विधिक निर्णयों, सरकारी दस्तावेजों, संविधान संशोधनों, पंचायती राज अधिनियम, शोध पत्रों, पुस्तकों एवं समाचार स्रोतों का उपयोग किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र :–

राजस्थान राज्य की पंचायती राज व्यवस्था, विशेष रूप से ग्राम पंचायत स्तर पर महिलाओं की भूमिका एवं उससे संबंधित न्यायिक पहलुओं का :

1. न्यायिक निर्णयों की व्याख्या व उनका प्रभाव।
2. महिला प्रतिनिधित्व के सामाजिक प्रभावों की समीक्षा।
3. पूर्व एवं वर्तमान स्थिति की तुलना के माध्यम से परिवर्तन की दिशा को रेखांकित करना।

राजस्थान में पंचायती राज संस्थाओं (PRIs) के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाने की दिशा में कई संवैधानिक और विधिक प्रयास हुए हैं। इन प्रयासों ने महिलाओं की सामाजिक स्थिति को सुदृढ़ करने, उनके नेतृत्व को बढ़ावा देने और निर्णय–निर्धारण की प्रक्रियाओं में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने का मार्ग प्रशस्त किया है। इस संदर्भ में कुछ ऐतिहासिक कानूनी मामलों और निर्णयों ने विशेष भूमिका निभाई है, जिनमें :

विशाखा बनाम राजस्थान राज्य[3] (1997) : एक ऐतिहासिक फेसला यह मामला राजस्थान की एक महिला सामाजिक कार्यकर्ता भंवरी देवी के साथ हुए सामूहिक बलात्कार की घटना से जुड़ा था। भंवरी देवी

महिला विकास कार्यक्रम के अंतर्गत कार्यरत थीं और उन्होंने एक बाल विवाह को रोकने का प्रयास किया था। इसी प्रयास के कारण उन्हें हिंसा का शिकार होना पड़ा। यह घटना बताती है कि ग्राम स्तर पर कार्य करने वाली महिलाएँ, विशेषकर निर्वाचित प्रतिनिधि या कार्यकर्ता, कई बार अपने सामाजिक कर्तव्यों का निर्वहन करते समय हिंसा, अपमान या उत्पीड़न का सामना करती हैं। इस घटना के आधार पर दायर याचिका में सुप्रीम कोर्ट ने ऐतिहासिक विशाखा दिशानिर्देश जारी किए। इन दिशानिर्देशों का उद्देश्य कार्यस्थलों पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए एक स्पष्ट ढांचा देना था।

संवैधानिक आधार :-

विशाखा दिशानिर्देशों को भारतीय संविधान के निम्नलिखित अनुच्छेदों के अंतर्गत महिलाओं के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए स्थापित किया गया :–

1. अनुच्छेद 14 – समानता का अधिकार।
2. अनुच्छेद 19 – अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार।
3. अनुच्छेद 21 – जीवन और व्यक्तिगत सम्मान का अधिकार।

पंचायती राज में प्रासंगिकता :-

विशाखा दिशानिर्देशों का सीधा प्रभाव पंचायती राज की महिला प्रतिनिधियों (Elected Women Representatives -EWRs) पर पड़ा। ग्राम पंचायतों में कार्यरत महिलाओं को अक्सर धमकी, सामाजिक दबाव या मानसिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है, जिससे वे स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर पातीं। इन दिशानिर्देशों ने पंचायत स्तर पर महिलाओं को सुरक्षित कार्य वातावरण उपलब्ध कराने की दिशा में महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान किया।

प्रभाव और नीतिगत बदलाव :-

1. महिलाओं की सुरक्षा पर ध्यान केंद्रित हुआ।
2. ईडब्ल्यूआर के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम आरंभ हुए, जिसमें उनके अधिकारों और कानूनी संरक्षण की जानकारी दी गई।
3. कानूनी जागरूकता अभियानों को बढ़ावा मिला, जिससे महिलाएँ अपने अधिकारों के प्रति अधिक सचेत हो सकें।
4. सामाजिक और सांस्कृतिक बाधाओं को दूर करने के लिए संस्थागत प्रयासों को बल मिला।

विशाखा बनाम राजस्थान राज्य न केवल एक कानूनी मील का पत्थर था, बल्कि यह स्थानीय शासन में महिलाओं की गरिमा, सुरक्षा और आत्मनिर्भरता को सुनिश्चित करने वाला एक निर्णायक मोड़ भी रहा। इस फैसले के पश्चात पंचायती राज व्यवस्था में महिला सशक्तिकरण को केवल आरक्षण तक सीमित न रखते हुए, एक समावेशी और संरक्षित नेतृत्व प्रणाली की ओर अग्रसर किया गया।

सारिका बनाम राज्य सरकार[4] एक महत्वपूर्ण न्यायिक निर्णय है, जिसने पंचायती राज संस्थाओं (च्ल्पे) में महिला सशक्तिकरण और नैतिक आचरण के संबंध में गंभीर बहस को जन्म दिया। यह मामला विशेष रूप से राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में अत्यंत प्रासंगिक और निर्णायक माना जाता है।

यह मामला उस समय चर्चा में आया जब राजस्थान सरकार ने पंचायती राज अधिनियम, 1994 में एक

नया संशोधन5 किया। इसमें यह प्रावधान जोड़ा गया कि पंचायती राज चुनाव में उम्मीदवार तभी खड़ा हो सकता है यदि उसके दो से अधिक जीवित बच्चे न हों, और यह शर्त महिला उम्मीदवारों पर भी समान रूप से लागू की गई। सारिका, एक महिला, जिसने तीसरे बच्चे को जन्म दिया था, सरपंच पद से अयोग्य घोषित कर दी गई। उसने इस निर्णय को राजस्थान उच्च न्यायालय में चुनौती दी कि :

1. क्या दो–बच्चे की नीति महिला सशक्तिकरण के अधिकारों का उल्लंघन करती है?
2. क्या यह नीति लैंगिक भेदभाव को बढ़ावा देती है?
3. क्या यह महिला के व्यक्तिगत और पारिवारिक निर्णय लेने के अधिकार में हस्तक्षेप है?

राजस्थान उच्च न्यायालय ने सरकार के पक्ष में निर्णय देते हुए कहा कि :

1. दो से अधिक बच्चों की शर्त जनसंख्या नियंत्रण की नीति का हिस्सा है, जो सार्वजनिक हित में है।
2. यह नीति सभी उम्मीदवारों पर समान रूप से लागू होती है – पुरुष और महिला दोनों।
3. यह प्रतिबंध लोकतांत्रिक संस्थाओं की गुणवत्ता और उत्तरदायित्व को बनाए रखने के लिए आवश्यक है।
4. यह किसी भी व्यक्ति को चुनाव लड़ने से रोकता नहीं है, बल्कि एक योग्यता की शर्त रखता है।

पंचायती राज और महिला सशक्तिकरण की दिशा में प्रासंगिकता :–

1. **उत्तरदायित्व आधारित सशक्तिकरण :** यह फैसला स्पष्ट करता है कि महिला प्रतिनिधियों को नैतिक और सामाजिक उत्तरदायित्वों का पालन करते हुए लोकतांत्रिक भूमिका निभानी चाहिए। इससे पंचायती राज में गुणवत्ता युक्त नेतृत्व को बढ़ावा मिलता है।

2. **नीतिगत समानता की पुष्टि :** इस निर्णय ने यह स्थापित किया कि महिला आरक्षण या सशक्तिकरण का अर्थ यह नहीं है कि वे नीतिगत और कानूनी बाध्यताओं से मुक्त रहेंगी। इसका उद्देश्य उन्हें बराबरी का अधिकार देना है, विशेषाधिकार नहीं।

3. **जनसंख्या नीति और महिला नेतृत्व :** महिलाएँ परिवार नियोजन और जनसंख्या स्थिरीकरण की नीतियों की प्रथम पंक्ति की प्रतिनिधि बन सकती हैं। यह निर्णय उदाहरण के माध्यम से नेतृत्व की भावना को बढ़ाता है।

4. **व्यक्तिगत अधिकार बनाम सार्वजनिक उत्तरदायित्व :** सारिका केस ने यह स्पष्ट किया कि पंचायती राज में नेतृत्व का पद सामाजिक जवाबदेही से जुड़ा होता है, और व्यक्तिगत स्वतंत्रता सार्वजनिक कर्तव्य की कीमत पर नहीं हो सकती। यह फैसला स्पष्ट करता है कि महिला सशक्तिकरण का मार्ग सिर्फ आरक्षण या पद प्राप्ति नहीं, बल्कि जवाबदेह और अनुशासित नेतृत्व से होकर गुजरता है। यह निर्णय महिला प्रतिनिधियों को सक्षम, नैतिक और सामाजिक रूप से जागरूक नेता बनने की प्रेरणा देता है।

73वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 :–

यह संशोधन राजस्थान सहित पीआरआई[6, 7]में महिलाओं के लिए एक तिहाई आरक्षण अनिवार्य करता है, जिसने तब से राजस्थान पंचायती राज अधिनियम के तहत आरक्षण को बढ़ाकर 50% कर दिया है। हालांकि यह कोई केस लॉ नहीं है, लेकिन यह प्रावधान विभिन्न निर्णयों में कानूनी चुनौतियों और पुष्टियों का विषय रहा है :

भारत संघ बनाम राकेश कुमार[7] : में सर्वोच्च न्यायालय ने पीआरआई में महिलाओं और हाशिए के समुदायों के लिए आरक्षण की संवैधानिक वैधता को बरकरार रखा, अनुच्छेद 243डी की वैधता को मजबूत किया। अदालत ने इस बात पर जोर दिया कि इस तरह के आरक्षण समावेशी शासन और जमीनी स्तर पर महिला

सशक्तीकरण के लिए आवश्यक हैं।

राजस्थान में दो बच्चों के मानदंड को चुनौती : जावेद बनाम हरियाणा राज्य[8]

हालांकि यह मामला हरियाणा से संबंधित है, लेकिन यह राजस्थान के लिए प्रासंगिक है, क्योंकि राज्य ने राजस्थान पंचायती राज अधिनियम, 1994 के तहत पंचायत चुनाव लड़ने के लिए दो बच्चों का मानदंड लागू किया है। हरियाणा सरकार ने अधिनियम9 में संशोधन करते हुए एक प्रावधान जोड़ा था, जिसके अनुसार तीन या उससे अधिक जीवित बच्चों वाले व्यक्ति को पंचायत चुनाव लड़ने के लिए अयोग्य घोषित किया गया। इस संशोधन को कई व्यक्तियों ने चुनौती दी, जिनमें जावेद प्रमुख याचिकाकर्ता थे। उनका तर्क था कि यह प्रावधान मौलिक अधिकारों, विशेषकर अनुच्छेद 14 (समानता) और अनुच्छेद 21 (जीवन का अधिकार) का उल्लंघन करता है। उसने इस निर्णय को राजस्थान उच्च न्यायालय में चुनौती दी कि :–

1. क्या तीन से अधिक बच्चों वाले व्यक्ति को पंचायत चुनाव से वंचित करना संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन है?
2. क्या यह प्रावधान 'तर्कसंगत वर्गीकरण' के मानकों को पूरा करता है?
3. क्या यह निर्णय जनसंख्या नियंत्रण की दिशा में न्यायोचित कदम है?

निर्णय :–

सर्वोच्च न्यायालय ने दो बच्चों के मानदंड को बरकरार रखा, यह कहते हुए कि यह परिवार नियोजन को बढ़ावा देने का एक उपाय है और मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं करता है।

संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं :–

न्यायालय ने माना कि यह एक तर्कसंगत वर्गीकरण है। इसका उद्देश्य जनसंख्या नियंत्रण को बढ़ावा देना है, जो एक वैध सार्वजनिक उद्देश्य है।

अनुच्छेद 21 का उल्लंघन नहीं :–

यह प्रतिबंध सिर्फ चुनाव लड़ने के अधिकार पर है, न कि बच्चे पैदा करने के अधिकार पर। व्यक्ति अपने इच्छानुसार बच्चे रख सकता है, लेकिन यदि वह पंचायती प्रतिनिधित्व चाहता है, तो उसे कुछ शर्तें माननी होंगी।

राज्य की नीतियों के साथ संगति :–

यह निर्णय जनसंख्या नियंत्रण, स्वस्थ मातृ–शिशु जीवन, और गुड गवर्नेंस की दिशा में लिया गया सही कदम है।

विधिक सिद्धांत :

	विधिक सिद्धांत	विवरण
1	तर्कसंगत वर्गीकरण	यदि वर्गीकरण एक वैध उद्देश्य की पूर्ति करता है, तो अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं होता।
2	चुनाव लड़ना मौलिक अधिकार नहीं	यह केवल वैधानिक अधिकार है, और उस पर प्रतिबंध लगाए जा सकते हैं।
3	जनसंख्या नियंत्रण	एक राष्ट्रहित का उद्देश्य है और इसके लिए सामाजिक नीति आधारित प्रतिबंध न्यायोचित हैं।

राजस्थान पीआरआई में महिलाओं पर प्रभाव :-

ग्रामीण राजस्थान में, जहाँ पितृसत्तात्मक मानदंडों के कारण महिलाओं का अक्सर परिवार के आकार पर सीमित नियंत्रण होता है, इस प्रतिबंध की आलोचना महिलाओं की चुनाव लड़ने की पात्रता को असंगत रूप से प्रभावित करने के लिए की गई है। यह उनकी राजनीतिक भागीदारी को सीमित करता है, सशक्तिकरण प्रयासों को कमजोर करता है।

शायरा बानो बनाम भारत संघ[10] :

मुख्य रूप से ट्रिपल तलाक को खत्म करने के लिए जाना जाता है, इस सुप्रीम कोर्ट के मामले ने अनुच्छेद 14, 15 और 21 के तहत महिलाओं के संवैधानिक अधिकारों को मजबूत किया। निर्णय ने लैंगिक समानता और पितृसत्तात्मक प्रथाओं को खत्म करने में न्यायपालिका की भूमिका पर जोर दिया, जो सामाजिक–सांस्कृतिक बाधाओं का सामना कर रही पीआरआई में महिलाओं के लिए प्रासंगिक है।

राजस्थान पीआरआई के लिए प्रासंगिकता :-

यह निर्णय राजस्थान में ईडब्ल्यूआर के लिए कानूनी जागरूकता अभियान और प्रशिक्षण कार्यक्रम जैसी पहलों का समर्थन करता है, जिसका उद्देश्य महिलाओं को उनके अधिकारों के बारे में शिक्षित करना और उन्हें अपने समुदायों में घरेलू हिंसा और लैंगिक भेदभाव जैसे मुद्दों को संबोधित करने के लिए सशक्त बनाना है।

शोध का निष्कर्ष :-

राजस्थान की पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी ने ग्रामीण भारत के सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य में एक क्रांतिकारी परिवर्तन की नींव रखी है। 73वें संविधान संशोधन एवं राज्य सरकार द्वारा पंचायती राज अधिनियम, 1994 में किए गए प्रावधानों के माध्यम से महिलाओं को ग्राम स्तर पर न केवल प्रतिनिधित्व का अवसर मिला, बल्कि उन्होंने निर्णय–निर्माण की प्रक्रिया में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका सिद्ध की है। आरंभ में जहाँ महिला आरक्षण को केवल सांकेतिक माना गया, वहीं अब यह स्पष्ट हो गया है कि महिलाएँ स्थानीय शासन की दिशा, योजनाओं और प्राथमिकताओं को बदलने की क्षमता रखती हैं।

न्यायपालिका ने इस प्रक्रिया को न केवल संवैधानिक समर्थन प्रदान किया है, बल्कि अपने अनेक निर्णयों के माध्यम से महिला प्रतिनिधियों की गरिमा, अधिकार और कार्यक्षमता की रक्षा भी सुनिश्चित की है। जावेद बनाम हरियाणा राज्य, सारिका बनाम राज्य सरकार और राज्य बनाम शोभा देवी जैसे मामलों में अदालतों ने स्पष्ट कर दिया कि महिलाओं की भागीदारी किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था की आधारशिला है, जिसे किसी भी स्थिति में कमज़ोर नहीं होने दिया जा सकता।

हालाँकि व्यवहारिक धरातल पर अब भी कई चुनौतियाँ जैसे प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व, सामाजिक–पारिवारिक दबाव, अशिक्षा, और संसाधनों की कमी मौजूद हैं, फिर भी यह कहा जा सकता है कि राजस्थान की पंचायती राज व्यवस्था महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक प्रेरक मॉडल के रूप में उभर रही है। महिला नेतृत्व ने ग्रामीण विकास को एक नई दृष्टि दी है, और आने वाले समय में यह भागीदारी न केवल शासन को अधिक समावेशी बनाएगी, बल्कि ग्रामीण समाज में स्थायी सामाजिक परिवर्तन का कारक भी बनेगी।

नीतिगत सुझाव :-

राजस्थान में पंचायती राज प्रणाली के अंतर्गत महिला सशक्तिकरण की दिशा में अब तक हुए संवैधानिक,

कानूनी एवं न्यायिक प्रयासों को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए निम्नलिखित नीति–निर्माण आधारित सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं :

1. **प्रॉक्सी शासन की समाप्ति हेतु स्पष्ट विधिक व्यवस्था :** महिलाओं के नाम पर चुने गए प्रतिनिधियों के स्थान पर उनके पति या पुरुष परिजनों द्वारा वास्तविक सत्ता संचालन की प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए आवश्यक है कि पंचायती राज अधिनियम में प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व को दंडनीय अपराध घोषित किया जाए। राज्य चुनाव आयोग को इस संबंध में सतर्कता समितियाँ गठित करनी चाहिए जो वास्तविक कार्य करने वाले प्रतिनिधि की निगरानी करें।

2. **नियमित नेतृत्व एवं प्रशासनिक प्रशिक्षण :** राज्य सरकार को पंचायती राज संस्थानों के माध्यम से चुनी गई महिला प्रतिनिधियों के लिए अनिवार्य प्रशासनिक एवं विधिक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने चाहिए। यह प्रशिक्षण न केवल पंचायती कार्यों को समझने हेतु हो, बल्कि निर्णय लेने की क्षमता, आत्मविश्वास और नेतृत्व कौशल को बढ़ावा देने हेतु भी हो।

3. **महिला साक्षरता एवं विधिक जागरूकता अभियान :** राज्य स्तर पर ''महिला ग्राम नेता साक्षरता मिशन'' जैसे विशेष कार्यक्रम चलाकर पंचायतों में कार्यरत महिलाओं को साक्षर बनाने के साथ–साथ उनके विधिक अधिकारों की जानकारी देना आवश्यक है। इससे वे न केवल अपने अधिकारों के प्रति सजग होंगी, बल्कि ग्रामीण समाज में भी जागरूकता फैलेगी।

4. **स्थानीय महिला प्रतिनिधि मंचों की सोपना :** महिला सरपंचों और पंचों के बीच सहयोग एवं अनुभव साझा करने के लिए ज़िला व राज्य स्तर पर महिला प्रतिनिधि मंचों या नेटवर्क की स्थापना की जाए। राज्य में जिला स्तर पर ''महिला पंच–सरपंच परिषद'' जैसे संगठनों का गठन किया जाए, जो न केवल अनुभव साझा करें बल्कि एक–दूसरे को सशक्त बनाने का माध्यम भी बनें। यह मंच राज्य स्तरीय नीति–निर्माण में भी भागीदारी कर सके।

5. **तेज़ और सक्रिय न्यायिक प्रणाली :** महिला प्रतिनिधियों के विरुद्ध यदि कोई भेदभाव, धमकी या कार्य में बाधा उत्पन्न की जाती है, तो इसके निवारण हेतु तेज़ न्यायिक प्रणाली की आवश्यकता है। इसके लिए पंचायत मामलों से संबंधित विशेष न्यायाधिकरण गठित किए जाएँ जो त्वरित निर्णय दे सकें।

6. **राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र और महिला भागीदारी :** राजनीतिक दलों को प्रोत्साहित किया जाए कि वे पंचायत चुनावों में केवल आरक्षण के आधार पर नहीं, बल्कि महिला प्रत्याशियों को सामान्य सीटों से भी मैदान में उतारें। इससे महिला नेतृत्व की गुणवत्ता और दीर्घकालिक भागीदारी सुनिश्चित होगी।

7. **सकारात्मक सामाजिक और मीडिया समर्थन :** महिला पंचायती प्रतिनिधियों की सफलताओं, संघर्षों और उपलब्धियों को प्रचारित करने हेतु मीडिया को सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। इसके साथ ही स्कूलों और समुदायों में लिंग–संवेदनशील प्रशिक्षण के माध्यम से समाज को मानसिक रूप से तैयार करना आवश्यक है कि वे महिला नेतृत्व को स्वीकार और सम्मान करें।

इन नीतिगत सुझावों को अपनाकर न केवल राजस्थान की पंचायती राज प्रणाली को अधिक समावेशी एवं न्यायसंगत बनाया जा सकता है, बल्कि यह पूरे भारत के लिए महिला सशक्तिकरण का एक अनुकरणीय मॉडल सिद्ध हो सकता हैं।

संदर्भ :-

1. 73वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1992
2. पंचायत अंतरण (विकेंद्रीकरण) सूचकांक 2024
3. विशाखा और अन्य बनाम राजस्थान राज्य, एआईआर 1997 एससी 3011
4. Smt. Sarika Versus State of Rajasthan & Others, Civil Writ Petition No. 9237/2010, 16 जुलाई 2010, राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ।
5. The Rajasthan Panchayati Raj (Second Amendment) Act, 2010
6. अनुच्छेद 243डी
7. यूनियन ऑफ इंडिया बनाम राकेश कुमार, (2010) 4 एससीसी 50
8. जावेद बनाम हरियाणा राज्य, (2003) 8 एससीसी 369
9. हरियाणा पंचायती राज अधिनियम, 1994
10. शायरा बानो बनाम भारत संघ, (2017) 9 एससीसी 1

अन्य स्रोत :-

1. पंचायती राज मंत्रालय, भारत सरकार एवं राजस्थान सरकार की रिपोर्ट।
2. महिला सशक्तिकरण, ग्रामीण शासन, सामाजिक न्याय विषयक साहित्य।
3. महिला प्रतिनिधियों से संबंधित समसामयिक घटनाएँ एवं विश्लेषण।

mpchoudhary1978@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 187–191

The Impact of the Indian Knowledge System in Education

Dr. Vidhya. P, Associate professor and Head,
Department of BCOMCS, Sri Ramakrishna College of Arts & Science
Dr. Reka. R, Assistant professor, Department of BBA,
Sri Ramakrishna College of Arts & Science
Dr. Sajitha. J, Assistant professor and Head Department of Languages,
Sri Ramakrishna College of Arts & Science

Abstract :

The Indian Knowledge System (IKS) represents a vast, rich heritage of philosophical, scientific, artistic, and cultural traditions developed over millennia. In recent years, there has been a renewed interest in integrating IKS into modern educational frameworks, particularly with the implementation of the National Education Policy (NEP) 2020. This article explores the historical roots, components, and contemporary relevance of IKS in education. It evaluates the pedagogical benefits of IKS, highlights practical implementations in curricula, and discusses challenges and future prospects. By revitalizing IKS within academic spaces, India can foster a more holistic, inclusive, and culturally resonant education system that prepares students for both local relevance and global participation.

Keywords : Indian Knowledge System, Education, NEP 2020, Indigenous Knowledge, Ancient India, Curriculum Reform, Holistic Learning, Sanskrit, Ayurveda, Gurukula

1. Introduction :

India's educational heritage is among the oldest and most profound in the world. From the Vedas and Upanishads to works on mathematics, medicine, astronomy, and the arts, India's indigenous knowledge has shaped global civilizations. The Indian Knowledge System (IKS) encompasses this vast intellectual tradition.

In the post-colonial era, Indian education largely followed Western pedagogical frameworks, often sidelining native knowledge systems. However, the NEP 2020 has proposed a paradigmatic shift by integrating IKS into mainstream curricula. This initiative aims to develop an education system

that is deeply rooted in Indian ethos while being globally competitive.

This article delves into the significance, evolution, and practical implications of IKS in education. It critically examines how integrating IKS contributes to sustainable learning, cultural identity, and innovation in the 21st century.

2. Historical Overview of Indian Knowledge System

2.1 Vedic and Post-Vedic Education :

The Vedic period (1500–500 BCE) laid the foundation of Indian intellectual traditions. Knowledge was transmitted orally through the Gurukula system, where students lived with their teachers and learned subjects such as philosophy, linguistics, astronomy, and mathematics.

2.2 Classical Contributions :

Texts such as the Arthashastra, Charaka Samhita, and Aryabhatiya demonstrate early Indian excellence in political science, medicine, and mathematics, respectively. Universities like Nalanda and Takshashila attracted students worldwide and fostered critical thinking and scientific inquiry.

2.3 Medieval Innovations :

During the medieval period, scholars continued to advance knowledge in linguistics, astronomy, music, and metallurgy. Bhaskara II's astronomical work and the literary excellence of Bhartrihari remain influential.

2.4 Colonial Disruption and Westernization :

British colonial education policies emphasized English-medium instruction and Western curriculum, marginalizing indigenous practices. Macaulay's Minute (1835) dismissed Indian literature as inferior, leading to the decline of Sanskrit-based education.

3. Components of the Indian Knowledge System

IKS is a multidisciplinary and integrative framework that includes :

3.1 Philosophical Systems :

Six classical schools of Indian philosophy—Nyaya, Vaisheshika, Samkhya, Yoga, Mimamsa, and Vedanta—offer diverse approaches to epistemology, ethics, and metaphysics. These schools foster critical thinking, logic, and value-based reasoning.

3.2 Language and Literature :

Sanskrit, Tamil, Pali, and Prakrit have rich literary traditions. The Paninian grammar system (Ashtadhyayi) is considered one of the most sophisticated linguistic models globally.

3.3 Science and Technology :

Ancient Indian texts include treatises on astronomy (Surya Siddhanta), chemistry (Rasaratnakara), mathematics (Lilavati), and metallurgy (Iron Pillar of Delhi).

3.4 Medicine and Health :

Ayurveda and Siddha systems emphasize holistic healing, dietary science, and preventive care, forming the basis for modern integrative medicine.

3.5 Arts, Architecture, and Aesthetics :

Classical music (Carnatic and Hindustani), dance (Bharatanatyam, Kathak), and temple architecture reflect a deep interconnection between spirituality, creativity, and mathematics.

4. Pedagogical Relevance of IKS

IKS-based education promotes holistic development, fostering not just cognitive growth but also emotional, ethical, and spiritual awareness.

4.1 Experiential Learning :

Gurukulas emphasized "learning by doing," which aligns with modern pedagogical principles such as experiential and project-based learning.

4.2 Multisensory Approach :

Traditional Indian education utilized oral recitation, music, visuals (yantras, mandalas), and movement (yoga, dance) to enhance retention and creativity.

4.3 Contextual and Local Knowledge :

IKS promotes locally relevant knowledge—such as indigenous farming, water conservation, and herbal medicine—thus making education more meaningful and community-driven.

4.4 Interdisciplinarity :

Subjects in IKS are interconnected. For example, Ayurveda combines botany, chemistry, anatomy, and psychology. This aligns with NEP's call for multidisciplinary education.

5. Integration of IKS in Modern Education

5.1 NEP 2020 Mandate :

NEP 2020 encourages integrating IKS in all levels of education—school to higher education. It advocates for teaching Sanskrit, promoting Indian languages, and revisiting ancient Indian achievements in textbooks.

5.2 Curriculum and Content :

Several CBSE schools and universities now include modules on Vedic mathematics, Indian logic, Ayurveda, and Indian philosophy. The AICTE has launched IKS Centers to promote related research.

5.3 Teacher Training :

Capacity building is essential. Workshops on Indic pedagogies, Sanskrit teaching, and integrative health are conducted to familiarize educators with IKS.

5.4 Research and Publications :

IKS is gaining attention in academia. Journals, research papers, and digitization projects are documenting India's vast indigenous knowledge resources.

6. Case Studies and Best Practices

6.1 Chinmaya Vishwavidyapeeth and Indic Academy :

These institutions offer courses in Indian epistemology, linguistics, and aesthetics, combining ancient texts with modern inquiry.

6.2 IITs and IIMs :

Select IITs and IIMs offer electives on Indian heritage, yoga science, and management principles from texts like the Bhagavad Gita and Arthashastra.

6.3 NCERT and CBSE Initiatives :

Curriculum reforms include celebrating Indian festivals, teaching local stories, and learning regional arts and crafts.

6.4 Community-Based Learning :

Non-formal education platforms integrate tribal knowledge, folk medicine, and ecological wisdom into learning systems.

7. Challenges in Mainstreaming IKS

7.1 Resistance and Misconceptions :

IKS is sometimes dismissed as unscientific or outdated. Overcoming this bias requires evidence-based research and academic rigor.

7.2 Curriculum Overload :

Adding IKS to existing curricula may create information overload if not designed integratively.

7.3 Resource Constraints :

There is a lack of trained teachers, updated textbooks, and scholarly translations of classical texts.

7.4 Standardization vs. Diversity :

IKS is inherently diverse. A standardized approach may risk oversimplification or loss of local specificity.

8. Policy Recommendations :

- **Institutional Support** : Establish IKS departments in all major universities.
- **Curriculum Development** : Create flexible, modular IKS content aligned with NEP guidelines.
- **Research and Translation** : Fund research in Sanskrit, Tamil, Pali, and tribal languages to unlock knowledge hidden in primary texts.

- **Teacher Training** : Conduct regular in-service training on IKS pedagogy and content.
- **Public Awareness** : Use documentaries, mobile apps, and exhibitions to promote IKS to the wider public.

9. Global Relevance of IKS :

Indian philosophy and Ayurveda are gaining global acceptance. Yoga is now a billion-dollar global industry. IKS-based sustainability models—like zero-waste living, ethical economics, and cooperative societies—resonate with global movements toward environmental and social responsibility.

10. Future Prospects :

With digitization, AI, and global collaboration, IKS can be revived and shared globally. Creating open-source databases, multilingual platforms, and virtual museums can democratize access. A future-ready education system must integrate the best of tradition and innovation, and IKS offers precisely that blend.

Conclusion :

The Indian Knowledge System is a living heritage that offers profound insights into education, health, ethics, and sustainability. Integrating it into mainstream education fosters national pride, intellectual independence, and holistic development. As India seeks to redefine its role in the global knowledge economy, re-embracing IKS is both a cultural imperative and a strategic opportunity.

References :

1. National Education Policy 2020 – Government of India
2. AICTE Indian Knowledge System Cell [https://iksindia.org]
3. Radhakrishnan, S. (2009). Indian Philosophy. Oxford University Press.
4. Michel Danino (2010). The Lost River: On the Trail of the Sarasvati. Penguin.
5. Subhash Kak (2000). The Astronomical Code of the Rigveda.
6. Kapil Kapoor (2016). Text and Interpretation: The Indian Tradition.
7. NCERT Position Paper on Heritage Education (2005)
8. Dharampal. (2000). The Beautiful Tree: Indigenous Indian Education in the 18th Century.
9. UNESCO. (2003). Convention for the Safeguarding of the Intangible Cultural Heritage.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 192-196

नारी सशक्तिकरण में शिक्षा की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

सत्यवती कुमारी
शोधार्थी, पंचपरगनिया भाषा विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची।

सारांश :-

एक नारी को शिक्षित करने का तात्पर्य एक पूरे परिवार व समाज को शिक्षित करना है। समाज के लिए नारी का स्वस्थ, खुशहाल, समझदार, व्यवहार कुशल, बुद्धिमान होना जरूरी है और शिक्षा से ही संभव है। आज हमारा देश जनसंख्या की दृष्टिकोण से प्रथम स्थान पर पहुँच गया है। प्रथम स्थान सुनकर मुझे बहुत ही आनन्द का अनुभव हो रहा है। मगर उतना ही दु:ख का भी।

दु:ख इसलिए कह रही हूँ कि कालान्तर में भी हमारा देश गरीबी और अशिक्षा से उभर नहीं पा रहा है। आज जहाँ नारियों को जितनी शिक्षा मिलनी चाहिए, उतना नहीं मिल पायी।

नारी सशक्तिकरण का तात्पर्य है कि नारियों द्वारा शक्ति तथा संसाधनों की प्राप्ति से है जिससे कि वे अपने सही निर्णय ले सके एवं दूसरों के द्वारा लिए गए गलत निर्णयों का विरोध कर सके। शिक्षा नारी सशक्तिकरण के लिए प्रथम और मूलभूत साधन है। प्रस्तुत शोधालेख में नारी सशक्तिकरण में शिक्षा की क्या भूमिका है तथा नारी शिक्षा के मार्ग में जो भी बाधाएँ हैं, उनको दर्शाने का प्रयत्न किया गया है।

प्रमुख शब्द :- सशक्तिकरण, सहसंबंध, समाज, शिक्षित, संसाधन, नारी।

प्रस्तावना :-

यह सर्वमान्य है कि शिक्षा ही वह उपकरण है जिससे महिला (नारी) समाज में अपनी सशक्त, समान तथा उपयोगी भूमिका की अनुमति करा सकती है। मनुष्य जीवन में शिक्षा ही एक ऐसा आधार है जहाँ नारियों में दक्षता, कौशल, ज्ञान एवं क्षमताओं का विकास होता है। शिक्षित महिला न केवल अपने आप को शिक्षित करती है, बल्कि अपने परिवार, समाज को भी शिक्षित करने का काम करती है।

शिक्षा ही मानव समाज की सबसे कीमती गहना है, चाहे वह पुरूष हो अथवा नारी। खासकर अगर जिस किसी भी नारी के पास शिक्षा नहीं है और वह स्त्री अत्यधिक कीमती गहना अपने आप को सुन्दर दिखाने के लिए पहनी हो तो वह सुन्दरता बाहरी रूप से चमकेगा, मगर आंतरिक दृष्टि से फीका ही दिखेगा।

शिक्षा के द्वारा एक नारी असहाय व अबला से सशक्त और सबला बनती है। नारी सशक्तिकरण का तात्पर्य है नारियों में छिपी हुई उन शक्तियों, गुणों तथा प्रतिभाओं को विकसित करना, जिनको व्यवहार में लाकर

व अपने विकास की ओर स्वयं कदम बढ़ा सके। यह कार्य केवल शिक्षा के द्वारा ही संभव है। शिक्षा हर मानव जीवन के दरवाजे की कुंजी है, जिसका प्रथम एवं अंतिम लक्ष्य ज्ञानरुपी प्रकाश को फैलाना तथा अज्ञानता रूपी अंधेरे को दूर करना है।

सदियों से पतिभक्ति में दीक्षित भारतीय नारी अभी तो मुक्ति का संघर्ष लड़ रही है। इस मुक्ति के लिए उसे शक्ति चाहिए। भक्ति, मुक्ति, शक्ति और तृप्ति की ये चार लहरें नारी शक्ति को एक अभिव्यक्ति देती है।

बीते हुए समय में पितृसत्तात्मक और सामन्ती समाज में नारी को वस्तु की तरह प्रयोग किया है। एक तरह से उसे दास बनाकर रखा गया, जैसे – भीगे कपड़े को निचोड़ा जाता है, वैसे ही नारी को निचोड़ा गया, उसका दोहन किया गया। वर्तमान समय में नारी शिक्षा के प्रति नारी शिक्षा के प्रचार और प्रसार ने नारी चेतना को एक नूतन ऊर्जा प्रदान की है। राज्य और केन्द्र की सरकारों की विभिन्न योजनाओं ने नारी शक्ति को शक्ति प्रदान की है। ग्रामीण नारी को शिक्षा के द्वारा स्वावलंबी बनाने का प्रयास किया जा रहा है। आज डिजिटल प्रौद्योगिकी और सूचना क्रांति ने ग्रामीण समाज में परिवर्तन की नयी जमीन तैयार की है। आधुनिक राजनैतिक चेतना ने ग्रामीण समाज में लोकतंत्रीय सोच व विचार को एक नयी दिशा दी है।

"यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।"

अर्थ – जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। यह सूक्ति पूरे भारतवर्ष में स्वतः चरितार्थ होती है।

यह कहना उचित होगा कि जहाँ जगत जननी सीता, राधा, रूक्मणी, अहिल्याबाई, शबरी एवं सती सावित्री आदि महान नारियों ने नारी जाति के लिए आदर्श प्रस्तुत किया, जिसका अनुकरण सम्पूर्ण नारी जाति के लिए करना चाहिए, जिससे वे अपना जीवन कल्याणकारी बना सके। नारी शक्ति का रूप होती है। यदि नारी अपनी शक्ति का प्रयोग कल्याण मार्ग में करती है तब वह पूजनीय व वंदनीय हो जाती है तथा जब वह इस शक्ति का प्रयोग अमंगल व अशोभनीय कार्यों में लगाती है तब वह विनाश का रुप ग्रहण कर लेती है जो परिवार, समाज, राष्ट्र, संसार सबके लिए अहितकारी हो जाता है।

जब हमारा देश अंग्रेजों के गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था, उस समय इस देश को आजाद कराने में महान नारियों का अहम् योगदान था। उन सभी महान नारियों में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का नाम अग्रणी व अमर है, जिन्होंने अपने धर्म व राष्ट्र की रक्षा के लिए प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का कुशल नेतृत्व करते हुए अपनी वीरता से अंग्रेजों के दांत खट्टे कर दिए थे।

इस तरह अगर पंचपरगनिया भाषा–भाषी ग्रामीण क्षेत्रों के नारियों के संदर्भ में देखा जाये तो शिक्षा का स्तर बहुत ही निम्न है, क्योंकि जिस स्तर का नारियों को शिक्षा मिलनी चाहिए, वैसा नहीं मिल पाया है। ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारी विद्यालय है भी तो उसमें शिक्षक नहीं है और बिना शिक्षक के पढ़ाई संभव नहीं है।

पूरे विश्व में पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं (नारियों) में शिक्षा का स्तर आधे से भी कम है। भारत आज भी विकसित देशों की श्रेणी में नहीं आता है। इसका मुख्य कारण शिक्षा भी है। स्वतंत्रता के पश्चात् मुख्यतः नारियों की शिक्षा का स्तर अत्यंत ही दयनीय थी। उस समय पुरूषों की साक्षरता दर 20 प्रतिशत थी, वहीं महिलाओं (नारियों) की साक्षरता दर 8.9 प्रतिशत ही था।

उद्देश्य :-

निःसंदेह स्वतंत्र भारत में नारियों की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। मगर ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी शिक्षा के क्षेत्रों में काफी पीछे है और संतोषप्रद स्वीकार नहीं किया जा सकता है। वर्तमान समय में देखा जाये तो आजादी के कई वर्षों के बाद भी शिक्षा व्यवस्था में कोई खास सुधार नहीं हुआ है। आज भी लाखों, करोड़ों महिलाओं (नारियों) का शोषण, उत्पीड़न व गरीबी, भूखमरी की दंश झेल रही हैं। न जाने इन समस्याओं के कारण हर दिन कितने नारियाँ काल की कगार में समा जा रहे हैं।

इस प्रकार से नारियों की शिक्षा व्यवस्था में हो रही समस्याओं का कुछ प्रमुख बिन्दु निम्न प्रकार है :-

- **गरीबी** – ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतर छात्र–छात्राएँ गरीबी की पृष्ठभूमि से आते हैं और उनके शिक्षा का खर्चा जैसे – ड्रेस, पाठ्यपुस्तकें, परिवहन खर्च आदि का वहन नहीं कर सकते हैं। इस कारण से भी नारी शिक्षा को प्रभावित करता है।
- **योग्य शिक्षिकाओं की कमी** – नारी शिक्षा में योग्य शिक्षिकाओं की कमी भी एक मुख्य कारण है, क्योंकि जब तक प्रशिक्षित शिक्षिका नहीं होगी, तब तक वह सही शिक्षा नहीं दे सकती। इसलिए प्रशिक्षित शिक्षिकाओं का होना अति आवश्यक है।
- **उचित मार्गदर्शन का अभाव** – दूरदराज के क्षेत्रों में अर्थात् ग्रामीण इलाकों के छात्राओं (नारियों) में अपार क्षमता है और इसलिए वे सीखने के लिए इच्छुक हैं, परन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में खराब शिक्षा परिदृश्य के कारण उन्हें सरकारी विद्यालयों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तो नहीं मिलता और साथ ही साथ उचित कोचिंग भी नहीं मिल पाती है।
- **लैंगिक असमानता** – ग्रामीण शिक्षा में एक प्रमुख मुद्दा जो अभी भी मान्यता है, वह है लैंगिक असमानता तथा नारी शिक्षा की कमी। कुछ क्षेत्रों में नारियों को विद्यालय जाने की अनुमति नहीं है और अगर अनुमति है भी तो एक निर्दिष्ट आयु सीमा तक ही सीमित है। उन्हें उच्च शिक्षा तथा बेहतर रोजगार के अवसरों की तलाश में अपने समाज को छोड़ने की अनुमति नहीं है।
- **बाल विवाह** – अभिभावक बेटियों की पढ़ाई को उनकी शादी पर होने वाले खर्च के साथ जोड़ते हैं। इसी कारण से वे अपनी बेटियों को उसी स्तर तक का शिक्षा देते हैं, जहाँ वे उनके लिए सुयोग्य दुल्हा (वर) मिल सके। इसी कारण से छोटी उम्र में ही शादी होने के कारण बेटियाँ पढ़ नहीं पाती और अपना जीवन को मजबूर होकर अंधकार की ओर ढकेल देती है।
- **आर्थिक समस्या** – ग्रामीण क्षेत्रों में सबसे बड़ी समस्या आर्थिक समस्या ही है। कारण है समानता एवं असमानता का क्योंकि लड़कों की अपेक्षा लड़कियों को कम शिक्षा देना।

खासकर ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों की यही मानसिकता है कि लड़कियाँ तो पराया धन होती है, वे शादी होकर अपना ससुराल चली जाएगी तो उनको ज्यादा शिक्षा देकर क्या लाभ? लेकिन ऐसा सोचना बिल्कुल गलत है।

वर्तमान समय में शिक्षा एक निवेश है जिसके लिए समुचित मात्रा में धन की आवश्यकता होती है। सरकार को ध्यान देना चाहिए कि लड़कियों के शिक्षा के लिए अलग से धनराशि लागू करना चाहिए, ताकि नारियों की शिक्षा में आर्थिक समस्या के कारण कोई भी रूकावट नहीं पैदा हो।

- **बुनियादी ढांचे का अभाव** – अधिकतर देखा गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों के कई विद्यालयों में स्वच्छ पानी, शौचालय, बिजली और पर्याप्त कक्षाओं जैसे बुनियादी सुविधाओं का अभाव है। जिससे कि सभी छात्र –छात्राओं के लिए अपनी पढ़ाई पर ध्यान केन्द्रित करना कठिनाई होती है।
- **स्थानीय भाषा में बाधा** – कई क्षेत्रों में देखा गया है कि छात्र–छात्राओं में अपनी स्थानीय बोली बोलते हैं जो शिक्षण भाषा से अलग होती है।
- **दोषपूर्ण प्रशासन** – नारी शिक्षा का पूर्णतः विकास न होने का कारण दोषपूर्ण प्रशासन भी है। नारियों की शिक्षा के विकास में अनेक प्रकार की प्रशासनिक कठिनाईयों एवं बाधाएँ देखने को मिलता है। अध्ययन के पश्चात् पता चला कि लगभग सभी राज्यों में नारी शिक्षा का प्रशासनिक अधिकारी के तौर पर पुरूष ही है। पुरूष अधिकारी होने के कारण संभवतः नारियों की विशिष्ट आवश्यकताओं को न समझ पाते हैं और न ही नारी शिक्षा में विशेष रूचि लेते हैं। नारी शिक्षा के लिए प्रशासन व पर्यवेक्षण का उत्तरदायित्व नारियों को ही सौंप देना चाहिए।

यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय समाज पुरूष प्रधान समाज है। महिलाओं को पुरूषों के बराबर सामाजिक दर्जा नहीं दिया जाता है और उन्हें घर की चाहरदिवारी तक ही सीमित कर दिया जाता है। हालांकि ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों में स्थिति अच्छी है, परन्तु इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि कालान्तर में भी देश की अधिकांश आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है।

- **घर से विद्यालय की दूरी** – हमारा देश अथवा प्रदेश, जहाँ शिक्षा के नाम पर हमेशा राजनीति होती है। शिक्षा के नाम पर सरकार करोड़ों–अरबों रुपया केवल कागज–कलम तक ही पानी की तरह बहा दे रही है। इन पैसों का सदुपयोग धरातल पर कभी देखने को नहीं मिलता है। अभी भी ऐसे बहुत सारे बच्चे हैं जिनके लिए प्राथमिक विद्यालय तक पहुँचना बहुत ही मुश्किल है। यह समस्या खासतौर पर लड़कियों के मामले में गंभीर होते जा रही है। पूर्व सर्वेक्षण से पता चला कि जिन गांवों–कस्बों में विद्यालय नहीं है, वहां ही लड़कियाँ प्रायः कक्षा पांच के बाद पढ़ाई छोड़ देती है। इसका मुख्य कारण यह है कि माता–पिता अपनी बेटियों को पढ़ाई के लिए दूसरे जगह के विद्यालय (जहां उच्च विद्यालय हो) में भेजना पसंद नहीं करते।

नारी शिक्षा की आवश्यकता निम्नलिखित दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है :–

- नरी शिक्षा परिवार, समाज के लिए विशेष उपयोगी होता है।
- शिक्षित नारी अपने तथा आने वाली पीढ़ी के भविष्य को उज्जवल बनाने में सफल होती है।
- अपने संतानों की सुशिक्षा एवं सुसंस्कार शिक्षित नारी से ही संभव है।
- नारी का 'नारीत्व' शिक्षा से ही निखर आता है, न कि कपड़ों व ब्यूटीक्रीम से।
- शिक्षित नारी ही गौरवान्वित अस्तित्व को समझ सकती है।
- नारी शिक्षा, नारियों को पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय दायित्वों एवं कर्तव्यों का बोध करती है।
- सहिष्णुता, साहस, सहनशीलता जैसे गुणों का व्यक्तित्व में शामिल करने हेतु नारी शिक्षा की आवश्यकता है।
- नारी की शिक्षा से उनका शोषण रोकने में सहायता मिलेगी और निर्णय लेने की क्षमता सशक्तिकरण का

एक बड़ा मानक है। शिक्षा का निर्णय लेने की क्षमता से घनात्मक एवं सार्थक सह–संबंध है।

- शिक्षा सामाजिक सशक्तिकरण के लिए प्रथम एवं मूलभूत साधन है। नारी सशक्तिकरण का तात्पर्य है कि नारियों में छिपी हुई उन शक्तियों, गुणों तथा प्रतिभाओं को विकसित करना, जिनको व्यवहार में लाकर वे अपने विकास की ओर स्वयं कदम बढ़ा सके और यह कार्य केवल शिक्षा के द्वारा ही संभव है।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि नारी सशक्तिकरण के लिए नारी शिक्षा अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। शिक्षा के बिना किसी को भी सशक्त बनाना असंभव है। शिक्षा से ही नारियों में आत्मविश्वास, आत्मजागृति एवं अपने अधिकारों तथा सरकार के द्वारा दिये जाने वाले सभी प्रकार के अवसरों की जानकारी प्राप्त हो सकेगी, ताकि वे अपने कौशल का विकास कर सकेगी एवं आत्मनिर्भर बनकर अपने महत्वपूर्ण निर्णय स्वयं लेकर एक मजबूत राष्ट्र के निर्माण में सहयोग कर सकती है। नारी शिक्षा समाज के निर्माण में महत्वपूर्ण जिम्मेदारी निभाती है। यदि परिवार, समाज व सरकार नारियों के शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण और सहयोगी भावना रखकर अपना योगदान देगा तो शिक्षित नारियों की संख्या बढ़ेगी और नारी के साथ–साथ समाज भी सशक्त बनेगा। इस तरह प्रदेश सरकार भी यह प्रयास कर रहा है कि आधी आबादी को शिक्षा के द्वारा इतना सशक्त बनाया जाये कि वह न केवल स्वयं बल्कि परिवार, समाज व सरकार को एक नई दिशा व दशा प्रदान कर सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. पी० डी० शर्मा – महिला सशक्तिकरण और नारीवाद।
2. डॉ० वी० एन० सिंह – नारी सशक्तिकरण और ग्रामीण समाज।
3. ई० प्रेमलता सिंह, डॉ० सुधा सिंह – महान नारी शक्ति।
4. भाग्यलक्ष्मी जे० (2008) – महिला अधिकारिता बहुत कुछ करना शेष योजना।
5. देवपुरा प्रतापमल (2006) – महिला सशक्तिकरण में शिक्षा का महत्व।
6. तिवारी, आर० पी० (1999) – भारतीय नारी : वर्तमान समस्याएँ एवं समाधान।
7. गुप्ता, एस० पी० तथा अलका गुप्ता (2008) – भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
8. अग्निहोत्री, रविन्द्र (2006) – आधुनिक भारतीय शिक्षा की समस्याएँ और समाधान, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
9. मकोल नीलम, शर्मा संदीप (2006) – सामाजिक विकास में शिक्षित महिलाओं का योगदान।

मो० नं० –9155761616

E-Mail ID : satyawatik337@gmail.com

surekhalakra61@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 197-200

परिवार में नातेदारी का घटता महत्व : एक सामाजिक चुनौती

डॉ. दीपिका शुक्ला
समाज शास्त्र विभाग।

सारांश :-

भारतीय परंपराओं में नातेदार एक ऐसा माध्यम होते थे जिनके ठहाकों के शोर में घर की चारदीवारी महक उठती थी।दशकों से चली आ रही परंपराओं में हमारे नातेदारी की भुमिका बहुत महत्वपुर्ण होती थी। सारी रस्में–रिवाजों में परिवार के अधिकतर नातेदार जैसे हमारे सगे–संबंधियों पर ही निर्भर होती थी। वर्तमान में परिवारों की रीतियां परिवार्तित हो गई है। कुछ परिवर्तन में आधुनिकता, दिखावे का शोर, पाखंडता, व्यक्तिगत मनमुटाव ने तेजी से वह भूमिका निभाई जो विज्ञान और उसके द्वारा निर्मित उपकरणों के माध्यम से भी न हुआ था। भारतीय ही परंपराओं के आरंभिक जनक थे। सतत प्रथाओं की जड़े परिवारों, सगे–संबंधियों, पड़ोसियों को बेल के जैसे जोड़े रखती थी। संभवतः हमारी पीढ़ी इनके जड़ों को सींचना भूल गई है, नहीं तो समाज की यह बेल घरों की मुंडेर पर तोरण के रूप में सजती रहती थी। इस अध्ययन का उद्दे य वर्तमान परिवारों के नातेदारी की घटती भूमिकाओं को परिवारिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करना है साथ ही कुछ ऐसे प्र नों जैसे कि –

(1) किन कारणों से भारतीय नातेदारी समाप्त होने के कगार पर है।

(2) क्या आधुनिकता पारिवारिक संवेदनाओं पर हावी है।

इनका समाधान खोजने का प्रयास करना है।

संकेतक शब्द – नातेदारी, संवेदना, परिवार, व्यक्तिगत स्वार्थ।

वर्णनात्मक शोध आलेख

प्रस्तावना :-

वर्तमान की कुछ ऐसी घटनाएँ जिन्होंने मानवीय समाज व पारिवारिक प्रेम से सींचे जाने वाली नातेदारियों को शर्मसार कर दिया है। सोचिए एक ऐसा देश जहाँ नातेदारों के बिना परिवार की रस्में पूरी नहीं होती थी, वहाँ पर चाचा ने भतीजी के साथ, फुफेरे भाई ने ममेरी बहन के साथ, देवर ने भाभी के साथ छेड़खानी की जैसी खबरों नें मानवीयता को झकझोर कर रख दिया है। हमारा समाज विकास की ओर अग्रसर है पर क्या यह विकास सकारात्मक रूप से परिवारों में दिखाई देता है? मानवीय संवेदनाएँ अचानक से विलुप्त होने लगी हैं जिसका

सर्वाधिक प्रभाव हमारे पारिवारिक नातेदारी में दिखता है। प्राचीन काल में व्यवहारात्मक नातेदारी में राजा भी अपना कर्त्तव्य नहीं भूलते थे। महाभारत में द्रौपदी और कृष्ण का संबंध, कृष्ण.देवकी से ज्यादा यशोदा कृष्ण संबंध, दुर्योधन व कर्ण का संबंध कई ऐसे व्यवहारात्मक नातेदारी के प्रतिमान जिनमें नातेदारी की व्यवहार बहुलता उत्पन्न हुई है।

इरावती कर्वे का मानना है कि महाभारत सकारात्मक व नकारात्मक दोनो मानवीय भावनाओं की एक विस्तृत श्रृंखला है।

वर्तमान परिदृश्य यह वर्णन करता है कि हमारी पारंपरिक नातेदारी का परिवार में महत्व निरंतर कम होता जा रहा है। समाज इसे एक समस्या, एक चुनौती और एक विडम्बना के रूप में देख रहा है। मैने अपने अध्ययन में पारंपरिक नातेदारी के घटते महत्व से संबंधित कुछ प्रश्नो की जिज्ञासा को हल करने का प्रयास किया है। प्रश्न नातेदारी क्या है् नातेदारी के स्थापित प्रतिमान कौन से हैं?

''श्री जी् डंकन मिचेल'' के अनुसार नातेदारी संस्कृति का वह हिस्सा जो जन्म और विवाह के आधार पर बने संबंध की अवधारणाओं एवं विचारों से संबंधित होता है अर्थात व्यक्तियों का ऐसा समूह जो एक दूसरे के रक्त संबंधी होते हैं या वैवाहिक संबंधी।

कर्वे द्वारा अपनी पुस्तक ''किनशिप आर्गनाइजेशन इन इंडिया'' में भारतीय नातेदारी के चार प्रतिमानों का वर्णन किया है।

1) उत्तरी क्षेत्र में भारोपीय अथवा सांस्कृतिक व्यवस्था।
2) दक्षिण क्षेत्र में द्रविड़ नातेदारी।
3) मिश्रित प्रतिमानों का एक मध्य क्षेत्र (यथा महाराष्ट्र में विद्यमान) तथा
4) पूर्व में मुडांरी नातेदारी व्यवस्था। जबकि कई अन्य लोग भारत में– दो प्रकार की नातेदारी की बात करते है उत्तर या दक्षिण अर्थात आर्य नातेदारी और द्रविड़ नातेदारी व्यवस्था।

प्रश्न – क्या वर्तमान नातेदारी व्यवस्थित पारंपरिक स्वरूप में समाज व परिवार में स्थापित है?

डॉ. अमित कुमार शर्मा अपने लेख में लिखते हैं कि भारतीय नातेदारी व्यवस्था जन्म से विवाह तक संबंधित प्रथाओं एवं रीतियों की विविधता की अभिव्यक्त करती है। मैंने भी आकलन किया कि जितनी भी सांस्कृतिक परिपाटियाँ हैं हमारे समाज में उसमें नातेदारी के प्रत्येक सदस्य को लेकर कोई न कोई रिवाज बनी हुई हैं। बरहौं संस्कार के कलश उत्तारने में देवर, सोबर पुताई में ननद, पिपरी पिसाई में सास, विवाह के पहले उबटन लगाने की प्रथा में बुआ व भाभी, जूता छुपाने में साली, तिलक में जीजा–साले, परछन में घर परिवार की बड़ी औरतें तथा द्वार छेकाई में वर की बहनों से रस्में पूरी होती थी। जो कि अब कुछ रस्मे पार्लर में या किसी जुगाड़ में सम्पन्न कर ली जाती हैं। जीजी, जीजा, भाभी के बिना होली का त्योहार फीका पड़ जाता था। उत्तर भारत कि अपेक्षा दक्षिण या द्रविड़ नातेदारी में वही पारंपरिक रूप देखने को मिलता है इसकी वजह हम मान सकते कि

विवाह के लिए आस–पास की नातेदारी में सुयोग्य घर परिवार पर ही विवाह संबंध बनाना।

प्रश्न – नातेदारी का महत्व क्या है? कौन सी समस्याओं से परिवार को बचाती हैं नातेदारी?

हमारे परिवार मे नातेदारी एक फूलों की बगिया के जैसे होती थी जिसकी हर क्यारी अलग प्रकार के फूलों से महकती रहती थी, उस क्यारी का व्यवस्थित स्वरूप वर्तमान में रुफ गार्डन के रूप में देख सकते हैं। फूलों की पसंद की तरह वर्तमान में नातेदारी का निभाना भी पसंद पर निर्भर हो गई हैं।

परिवार व समाज के विकास के स्वरों को समझने में नातेदारी मदद करती है। व्यक्तियों व सदस्यों के व्यवहारों को नियंत्रित करती है। नातेदारी ही हमारे अधिकारों तथा कर्तव्यों का निर्धारण करके व्यक्तियों को सम्मान व प्रतिष्ठा दिलाती हैं।

मानवशास्त्री ए. आर. रेडक्लिफ ब्राउन का कहना है कि नातेदारी में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली अन्य विशेषताओं के अतिरिक्त एक निश्चित नातेदार के अधिकारों व कर्तव्यों के वर्गीकरण की ओर इंगित करता है। परिवार में देवलोक गमन जैसी समस्याओं पर नातेदार ही साथ खडे होते हैं। विवाह व्यवस्था में हर सदस्य का छोटा–सा प्रयास रहता है। मानवीय संस्कारो के विलोपन मे फूफा–मामा की फटकार की कमी ही मानी जा सकती है। आधुनिकता युवा पीढ़ी को चुबक के जैसे आकर्षित कर रही जिसमें हमारी दादी–नानी, मौसी–बुआ की पारंपरिक परिहास को जानने में मददकर उनकी रस्मों को "TRENDING" में लाया जा सकता हैं।

प्रश्न – कौन से प्रयासों से नातेदारी का घटता महत्व भारतीय परिवारों में पारंपरिक पुरातन स्वरूप में वापस लाया जा सकता है?

1953 में प्रकाशित ''इरावती कर्वे का लेख– द किनसिप मैप ऑफ इंडिया में'' कर्वे कहती है कि महिलाएं बारबार अपने माता पिता के घर आ–जा सकती है जिससे विवाहित महिलाओं द्वारा झेला जा रहा तनाव भी कम किया जा सकता है। प्रायः हम कह सकते है कि तनाव में स्वंम के नातेदार उसकी मानसिक स्थिति को शांत करने का प्रयास करते हैं। परिवार को जोड़कर रखने की सलाह बड़े बुजुगों द्वारा सदैव से ही दी जाती रही है। नातेदारी की पुनः स्थापना या उचित स्थान पर लाने के लिए नातेदारी या सगे–संबंधियों को हंसी–मजाक के संबंध, आत्मीयता एवं असीमित स्वतंत्रता पर कड़ी नजर का माहौल देकर बच्चों में विकास करना होगा।

परिवार में व्यवस्था एवं मर्यादा बनाए रखने के लिए कुछ व्यवहारो की आवश्यकता अनुरूप सामाजिक मान्यता एवं स्वीकृति प्राप्त होती है। नातेदारी के माध्यम से हंसीं–मजाक, विनोद का संबंध परिवार की सुख–शांति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परिणामस्वरूप वैचारिक मतभेद, वैमनस्य अपना स्वार्थपरकता जैसी मानसिक विभीषिकाओं से सदस्यों को सुरक्षित रखती है नातेदारी।

निष्कर्षः हम कह सकते हैं कि भारतीय परिवार की जड़े हमारी सगे–संबंधियों को बेल के पेड़ जैसे जोड़े रखने वाली रही हैं। संभवतः हमारी पीढ़ी इन जड़ों को सींचना भूल गयी हैं नहीं तो परिवार की नातेदारी बेल की तरह घरों के मुंडेर पर तोरण के रूप में सजती रहती।

वक्त के साथ हमें नातेदारी की मिठास और मुरझाती भावनाओं को व्यक्तिगत प्रेम की औषधि से परिवार

को जोड़कर रखना होगा। आत्मीयता ब अपनापन एकमात्र शस्त्र है परिवार में नातेदारी के घटते महत्व को कम करने लिए। आधुनिकता की पराकाष्ठा से भारतीय संवेदना को बचाकर भावी परिवारों में संयुक्त परिवार प्रणाली अपनानी होगी समाजीकरण व सामाजिक नियंत्रण नातेदारी में होते है जिनसे परिवार की जड़े मजबूत रहती हैं।

संन्दर्भ सूची :-

1. डॉ. अमित कुमार भार्मा, भारत में नातेदारी व्यवस्था आलेख, भारत ब्रांड डॉट कॉम 23/04/2023 लेखक समाज ाास्त्र जवाहरलाल नेहरू वि ववविद्यालय नई दिल्ली।
2. श्री कैला ा मीणा, नातेदारी अर्थ, परिभाशा, प्रकार, श्रेणियां, कैला ा एजुके ान 03/10/2022
3. डॉ. ज्योति राघवन, कमला नेहरू कॉलेज नई दिल्ली कृत, इरावती कर्वे एवं नातेदारी व्यवस्था।
4. डॉ. इरावती कर्वे 1953 किनि ाप ऑर्गनाइजे ान इन इडिया डेक्कन कॉलेज मानोग्राफ सीरिज 11 पूनाः डेक्कन कॉलेज पोस्ट– ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च।
5. वेवसाइट https://www.nayadost.in>2021/04 सुत्रों के अनुसार नातेदारी।
6. द्वितीयक स्रोतों पर आधारित।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 201–205

समाज और शिक्षा के क्षेत्र में डॉ. आम्बेडकर के जीवन दर्शन की प्रासंगिकता

डॉ. बिक्रम कुमार साव
असिस्टेंट प्रोफेसर, बैरकपुर राष्ट्रगुरु सुरेंद्रनाथ कॉलेज।

जातिवाद और अस्पृश्यता के दलदल में फंसे भारतीय समाज को उबारने का उपक्रम करने वालों में डॉ. आंबेडकर अग्रणी हैं। दुर्दम्य जिजीविषा वाले बाबा साहेब जैसे सत्पुरुष किसी–किसी देश में पैदा होते हैं। उन्होंने भारतीय समाज के स्वाधीनता आंदोलन, मजदूर आंदोलन, प्रशासन और शिक्षा को एक साथ प्रभावित किया। चूंकि समाज परिवर्तन की प्रक्रिया कई स्तरों पर और कई पद्धतियों से चलने वाली एक अखंड प्रक्रिया है। व्यक्ति या वर्ग के समूह से जब समाज बनता है तो धीरे–धीरे कुछ नियम–उपनियम बनाये जाते हैं। इन नियम–उपनियमों को समूहमन बनाता है। इसके मूल में दृष्टि केवल इतनी ही होती है कि उस समाज में स्थित प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तित्व विकास के अवसर प्राप्त हों, मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करा लेने के लिए किसी और पर जबरदस्ती न हो अथवा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर, एक गुट दूसरे गुट पर हावी न हो। प्रत्येक को विकास के अवसर उपलब्ध करा देना किसी भी समाज की पहली और अंतिम नैतिक जिम्मेदारी होती है। अवसरों को प्राप्त करा देने हेतु धीरे–धीरे नियम, उपनियम और नियंत्रण की एक चौखठ बनने लगती है। उसके समर्थन के लिए शास्त्र बनता है, धर्म और नैतिकता का उपयोग भी इस चौखठ को मजबूत बनाए रखने के लिए किया जाता है। जब यह कार्य समाज मन से नहीं हो पाता अथवा पारंपरिक चौखठ व्यक्तित्व विकास में बाधा बनने लगती है तब उनमें से कोई संवेदनक्षम व्यक्ति नई चौखठ की घोषणा ईश्वर या धर्म के नाम पर कर देता है।

धर्म–संस्थापक के रूप में वह वास्तव में व्यक्ति और समाज की पशुवत आकांक्षाओं को नियंत्रित करने का काम करता है। यह बनी बनाई चौखठ सैकड़ों वर्षों तक उपयोगी सिद्ध हो जाती है। कालांतर में जब यह चौखठ व्यक्ति विकास में बाधा उपस्थित करती है, तो परिणामतः कोई और संवेदनक्षम व्यक्ति इस चौखठ के विरोध में विद्रोह कर एक नयी चौखठ देता है। प्रत्येक युग के अनुसार व्यक्ति की आवश्यकताओं में, आशा–आकांक्षाओं में और महत्त्वाकांक्षाओं में परिवर्तन होने लगता है। नई आकांक्षाओं को पुरानी चौखठ द्वारा पूर्ण करना संभव नहीं हो पाता इसलिए विद्रोह अनिवार्य–सा हो जाता है। इस कारण प्रत्येक देश, समाज और धर्म में विद्रोही और क्रांतिकारी महापुरुष जन्म लेते हैं और तत्कालीन समाज को नई दिशा देते हैं। डॉ. आंबेडकर इसी परंपरा के विद्रोही महापुरुष हैं। पारंपरिक सामाजिक सिद्धांत को गलत साबित करते हुए वे लिखते हैं "व्यक्ति समूह से समाज बनता है। यह एक बहुत ही स्थूल और मामूली वक्तव्य है। समाज कभी भी व्यक्ति से नहीं बनता, वह वर्ग

से ही बनता है। प्रत्येक समाज में वर्ग अस्तित्व में होते हैं। वर्ग–रचना के मूल में निहित कारण अलग–अलग होते हैं। कभी आर्थिक, कभी बौद्धिक, कभी राजनीतिक कारणों से वर्ग बनते हैं। व्यक्ति किसी–न–किसी वर्ग की इकाई बनकर ही जीना चाहता है। यह एक वैश्विक सत्य है। हिंदू समाज भी इसके लिए अपवाद नहीं है। इस नियमनुसार वर्ग जाति में रूपांतरित होते गए। वास्तव में 'जाति और वर्ग यह आमने–सामने रहने वाले पड़ोसी की तरह होते हैं। बहुत मामूली भेदों के कारण उनका अस्तित्व भिन्न–भिन्न लगता है। वस्तुतः जाति एक स्वयं मर्यादित वर्ग है।''[1]

भारतीय समाज के जाति–व्यवस्था के मूल में श्रम विभाजन का सिद्धांत काम कर रहा है, ऐसी स्थापना आर्यसमाजियों की रही है। परंतु डॉ. आंबेडकर ने कहा "जाति–संस्था केवल श्रम विभाजन नहीं है. वह श्रमिकों का भी विभाजन है। केवल श्रमिकों का विभाजन करके ही वह रुकती नहीं, अपितु श्रमिकों के एक–एक समूह को वह नीचे से ऊपर की ओर, एक–दूसरे पर रखती जाती है और सबसे भयंकर बात यह है कि यह क्रमबद्धता जन्म के आधार पर हमेशा के लिए चिपका दी जाती है। विश्व के किसी भी देश में श्रम विभाजन को श्रमिकों के सामाजिक स्तर के साथ चिपकाया नहीं गया है।''[2] भारतीय समाज में जाति को धार्मिकता से जोड़ा गया है। मूल धर्म ने ही एक गलत अमानवीय व्यवस्था का समर्थन किया है। शास्त्रों में जाति–धर्म की परंपरा को बनाये रखा गया है। शास्त्रों की हँसी उड़ाकर यह व्यवस्था खत्म होने वाली नहीं है। इसके विरोध में प्रखर बुद्धिवाद और समतावादी समाज रचना के प्रति प्रतिबद्धता की नितांत आवश्यकता है। बाबा साहेब का मानना था कि वर्ण व्यवस्था की जड़ों पर आघात करना जरूरी है। जब तक यह जड़ें तोड़ नहीं डाली जाएँगी, तब तक अस्पृश्यता की मनसिकता या वर्ग भेद की मनसिकता समाप्त नहीं हो सकती। इसलिए संपूर्ण देशभर की जनता के लिए वे 'समान नागरी कानून के आग्रही प्रतिपादक थे। संसद में उन्होंने कहा "समान नागरी कानून होना ही चाहिए। हिंदू, मुसलमान और ईसाई धर्म पर आधारित कानूनों में जहाँ मतभेद के मुद्दे हैं, उन्हें विचारपूर्वक हल करना चाहिए। सब में कुछ समानता के मुद्दे भी हैं। केवल मतभेदों के मुद्दों से बात नहीं बन सकती। समान नागरी कानून हमारा अंतिम उद्देश्य है।"[3]

अखिल भारतीय सेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन के 30.01.45 को कानपुर में हुए अधिवेशन में भाषण देते हुए उन्होंने यह स्पष्ट किया कि सामाजिक समता की इस लड़ाई में दलितों को महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है। कमजोर वर्ग को संघटित होकर अपने अधिकार खुद ही प्राप्त करने चाहिए। उनका कथन है "मैं अस्पृश्य समाज को राजनीतिक अधिकार दिला देने के लिए प्रयत्नशील हूँ। देश की स्वतंत्रता के लिए काम करने वाले बहुत से युवक हैं। दलित युवकों का उद्‌घार उन्हें खुद करना है। दलितों के उद्‌घार से ही सचमुच का स्वराज्य संभव है।"[4]

उनके मतानुसार किसी भी देश की समाज रचना में निम्नलिखित बातें होनी चाहिए :

1. उस समाज–व्यवस्था में विषमता अधिक मात्रा में न हो।
2. वहाँ विरोधी दल का अस्तित्व हो।
3. कानून और प्रशासन में समानता हो। ये एक–दूसरे के लिए पूरक हों, विरोधक नहीं।
4. संवैधानिक नैतिकता के पालन की वृत्ति जनता तथा शासक में हो। असंवैधानिक आचरण न हो।
5. बहुसंख्यकों का वर्चस्व न हो।
6. उस समाज में नैतिक मूल्यों को सर्वोपरि महत्त्व दिया जाता है। नैतिक मूल्य आचरण में प्रस्थापित हुए

हों।

7. जागृत जनमत हो। देश के प्रशासन के प्रति जनता संवेदनशील हो। देश में घटित घटनाओं, पारित कानूनों के प्रति उनमें अत्यधिक जागरूकता हो।
8. संविधान और कानून से प्राप्त अधिकारों का उपयोग करते समय किसी व्यक्ति या वर्ग को अगर आतंकित किया जाये अथवा वहिष्कृत किया जाये तो उसे कानूनन अपराधी घोषित किया जाना चाहिए।
9. धर्म के नाम पर इकट्ठी होने वाली संपत्ति का दुरुपयोग न हो। इस हेतु सार्वजनिक धर्मादाय संस्थाएँ निर्माण कर उन पर नियंत्रण रखने के लिए कानून बनाने चाहिए।

इस प्रकार अन्य समाज सुधारकों की तुलना में आंबेडकर की अपनी कुछ विषेशताएँ हैं। चिंतन के स्तर पर सामाजिक पुनर्रचना संबंधी विचारों को स्पष्ट करना, उन्हें सिद्ध करना और उसी समय उन विचारों के आधार पर सामाजिक आंदोलनों की मोर्चेबंदी करना– यह आंबेडकर के समाज सुधारक व्यक्तित्व की विषेशता है। अपने समय में वे संपूर्ण समाज की पुनर्रचना की बात कर रहे थे। समाज रचना की पुरानी इमारत को दुरुस्त करने के स्थान पर वे उसे पूर्णतः गिराकर नई इमारत बाँधना चाह रहे थे। अन्य समाज सुधारकों में और उनमें यहीं पर अंतर दृष्टिगोचर होता है। उनकी धारणा थी कि छोटे–मोटे उपचार से सामाजिक विषमता का यह रोग समाप्त नहीं हो सकता। वर्ण और जाति–व्यवस्था की नींव पर भारतीय समाज की इमारत खड़ी हुई है। इस नींव को खत्म कर समता, बंधुता और करुणा की नींव पर नई इमारत खड़ी करनी होगी, ऐसी उनकी प्रतिबद्धता थी।

सामाजिक विचारों की तरह ही उनकी शिक्षा संबंधी विचार बहुत स्पष्ट और सरकार की जिम्मेदारी की ओर संकेत करने वाले हैं। समाज के सबसे सामान्य, शोषित और उपेक्षित व्यक्ति तक शिक्षा की सुविधाएँ पहुँचनी चाहिए, ऐसा उनका आग्रह था। परंपरा से नकारे गये वर्ग को उच्च शिक्षा हेतु अधिक खर्च करना न पड़े, ऐसी व्यवस्था हो, ऐसा उनका आग्रह था। परंपरा से नकारे गये वर्ग को उच्च शिक्षा हेतु अधिक खर्च करना न पड़े, ऐसी व्यवस्था हो, ऐसा उनका आग्रह था। विश्वविद्यालय की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा था "स्नातक और छात्रों के पाठ्यक्रम द्वारा सांस्कृतिक प्रगति करने के लिए महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों को एकत्र होना जरूरी है।"[5]

शिक्षा को डॉ. आंबेडकर दुधारू शस्त्र मानते हैं। उनका मानना था – "चरित्रहीन और विनयहीन शिक्षित व्यक्ति पशु से भी अधिक भयंकर होता है। सुशिक्षित मनुष्य का ज्ञान और उसकी शिक्षा जनहित के विरोध में जा रही हो, तो ऐसा व्यक्ति समाज के लिए शाप साबित होता है।"[6] शिक्षा संबंधी उनके इन विचारों में और प्रेमचंद के विचारों में अद्‌भुत समानता है। प्रेमचंद भी शिक्षा को 'कुशिक्षा और सुशिक्षा' में बाँटते हैं। डॉ. आंबेडकर भी शिक्षा के माध्यम से चरित्र निर्माण को अधिक महत्त्व देते हैं। शिक्षा संबंधी उनके विचार इस प्रकार हैं :–

1. निःशुल्क और अनिवार्य रूप से प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था प्रत्येक के लिए हो।
2. साक्षरता प्रचार के लिए अशिक्षित, प्रौढ़ शिक्षा की योजना हो।
3. औद्योगिक शिक्षा पर विशेष बल हो।
4. दलित, अस्पृश्य और पिछड़ी जातियों के प्रतिभा संपन्न और बुद्धिमान युवकों को उच्च शिक्षा के लिए सरकारी कोष की व्यवस्था हो।
5. प्रादेशिक विश्वविद्यालयों की स्थापना हो।

शिक्षा के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था में सुधार लाने का प्रयत्न डॉ. आंबेडकर ने पूरे मनोयोग से किया। किसी भी समाज की उन्नति का अंदाजा वे उस समाज की स्त्रियों की उन्नति से करते थे। भारतीय समाज में नारियों की दयनीय स्थिति को देखकर वे बहुत दुखी होते थें। दलित परिवारों में ही नहीं, अपितु तथाकथित उच्च वर्गों की महिलाओं की दशा भी भारतीय समाज में ठीक नहीं थी। समाज में उनका नारी उत्थान का काम दलित–शोषित नारी समाज तक ही सीमित नहीं रहा। वे भाषण बाजी में विश्वास नहीं रखते थे बल्कि अपनी सोच को विचारों को खुद से क्रियान्वित भी करते थे। बंबई लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य और वायसराय की कार्यकारिणी परिषद में लेबर सदस्य रहते वक्त नारी समाज के कल्याण हेतु उन्होंने जो कार्य किया, उसे भूलाया नहीं जा सकता। 'वर्तमान साहित्य' पत्रिका में आंबेडकर जयंती के अवसर पर प्रकाशित आलेख 'नारी उत्थान और डॉ. आंबेडकर' में सुरेश उजाला लिखते हैं "डॉ. भीमराव अंबेडकर ने मालावार भूभाग में नारी समाज को वस्त्र पहनने का तरीका बताया। वहाँ आदिम जाति के लोग रहते थे, उनकी नारियाँ अपने गुप्तांगों को पत्तों से ढंककर रहती थीं। डॉ. अंबेडकर ने उन्हें आदमी बनने का संदेश दिया और वस्त्र पहनना सिखाया। नागपुर के एक भाषण में उन्होंने कहा – "यदि तुम्हारे पति शराब पीकर या जुआ खेलकर आएँ, तो दरवाजा मत खोलो, उन्हें खाना मत दो, क्योंकि वे शराब पीना छोड़कर उतने ही पैसों से बच्चों को तंदुरुस्त रखने के लिए अच्छा खाना खिला सकते हैं, अच्छे कपड़े पहना सकते हैं।"[7]

बहरहाल, डॉ. आंबेडकर के जीवन के सामाजिक और शिक्षा संबंधी विचारों का केंद्र बिंदु 'मनुष्य' है। उनकी समग्र जीवनयात्रा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनका संघर्ष 'मनुष्य' की प्रतिष्ठा के लिए था। वे पद दलितों के त्राता थे। इस देश के या विदेश के किसी भी व्यक्ति के साथ उनकी तुलना नहीं हो सकती। संपूर्ण समाज की उपेक्षा और अपमान को झेलते हुए उनकी यह यात्रा शुरू हुई थी। प्रतिकूल स्थितियों में परिस्थितियों के साथ संघर्ष करते हुए वे राजनीति, ज्ञान और धर्म के क्षेत्र में चरम उत्कर्ष पर पहुँच चुके थे। इस देश की पच्चीस प्रतिशत से अधिक जनता को अस्पृश्यता की श्रृंखला से मुक्त करवा देना यह मानव इतिहास में घटित एक बहुत बड़ी और महत्त्वपूर्ण घटना है। अस्पृश्य जाति का यह व्यक्ति शिक्षा दृ विशेषज्ञ, अर्थशास्त्रज्ञ, प्राध्यापक, देशभक्त, नेता, संविधान देनेवाला, संशोधक, दलितों का उद्धारकर्ता आदि विशेषणों को प्राप्त कर गया। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में "आंबेडकर का जन्म सर्वहारा वर्ग के सबसे नीचले स्तर में हुआ था। वहीं से उठते हुए वायसराय की काउंसिल के सदस्य हुए और भारत के संविधान के निर्माता बने। संविधानवाद के चौखठे के भीतर काम करते हुए वे बार–बार पूँजीवादी लोकतंत्र का खोखलापन दिखाते थे। यह चौखठा तोड़कर क्रांतिकारी परिवर्तन होना चाहिए, इसका वे स्वप्न देखते थे।"[8]

ढाई हजार वर्ष की ज्ञान की परंपरा जिस समाज के पास है, वे डॉ. आंबेडकर जैसे व्यक्ति को दे नहीं सके और ढाई हजार वर्ष की अज्ञान की परंपरा जिस जाति को प्राप्त थी उस जाति में आंबेडकर जैसी श्रेष्ठ और वैविध्यपूर्ण प्रतिभा का जन्म लेना इस बात को प्रमाणित करता है कि मनुष्य जन्म, जाति या वर्ण से श्रेष्ठ नहीं होता। ये एक ऐसी शिक्षित समाज व्यवस्था के लिए प्रयत्नषील थे जहाँ मनुष्य मनुष्य के प्रति आदर रखता हो, जहाँ मनुष्य मनुष्य के प्रति प्रेम, बंधुता और मानवीयता से जुड़ा हो, जहाँ मनुष्य मनुष्य का शोषण न करता हो। मनुष्य को उसके न्याय का हक दिला देने के लिए वे संघर्षरत थे। ठीक इसी समय इतिहास के गंभीर अध्ययन से शिक्षित समतावादी समाज रचना के लिए आवश्यक दर्शन और चिंतन की अभिव्यक्ति भी वे कर रहे

थे। जिससे भारतीय समाज को एक नई दिशा प्राप्त हो सके। इस प्रगतिशील दिशा को प्राप्त करने हेतु उन्होंने भारतीय समाज को तीन सूत्र दिया पढ़ो, संघटित हो जाओ और संघर्ष करो।

संदर्भ-सूची :-

1. रघुवंशी, गजेंद्र, हिंदूची जातिप्रथा आणि ती मोडण्याचा मार्ग डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, पुणे 1989, पृष्ठ 14
2. वही, पृष्ठ 50
3. फडके, भालचंद्र, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, श्री विधा प्रकाशन, पुणे–1985, पृष्ठ–249
4. रघुवंशी, रमेश, डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर रांचे प्रासंगिक विचार, पुणे–1989, पृष्ठ 44
5. दिघे, प्रभाकर, महामानव डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, पुणे 1989, पृष्ठ 144
6. वही, पृष्ठ 14
7. सिंह, नमिता (सं.), वर्तमान साहित्य, अलीगढ़, अप्रैल 2012, पृष्ठ 37
8. शर्मा, डॉ. रामविलास, गांधी, आंबेडकर, लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008, पृष्ठ 641

दूरभाष : 9331087920

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 206–213

पर्यावरणीय चिंता, करियर प्राथमिकताएं और बच्चा न पैदा करने का निर्णय : वाराणसी के युवाओं की दृष्टि से

डॉ. चन्द्रशेखर सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

परिचय (Introduction)

21वीं सदी की बदलती सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ पारंपरिक पारिवारिक संरचनाओं और प्रजनन निर्णयों को पुनर्परिभाषित कर रही हैं। विशेष रूप से युवाओं में, पारिवारिक दायित्वों और जनन से जुड़ी अवधारणाओं में तेजी से बदलाव देखा जा रहा है। जहां पहले संतानोत्पत्ति को जीवन का अनिवार्य हिस्सा माना जाता था, आज एक बढ़ती हुई संख्या में युवा, विशेष रूप से 20–30 वर्ष आयु वर्ग के शहरी युवक–युवतियाँ, 'Childfree by Choice' जैसे विचार को अपनाने लगे हैं। यह प्रवृत्ति केवल एक व्यक्तिगत विकल्प नहीं, बल्कि सामाजिक, पर्यावरणीय, और आर्थिक कारकों से भी प्रभावित है।

वाराणसी, जो भारत का सांस्कृतिक और धार्मिक केंद्र माना जाता है, वहाँ भी अब युवा पीढ़ी में इस सोच में बदलाव देखने को मिल रहा है। इस ऐतिहासिक शहर के शहरी और शिक्षित युवाओं में पर्यावरणीय असंतुलन, जलवायु परिवर्तन, जनसंख्या विस्फोट, और आर्थिक अनिश्चितता जैसे मुद्दे, उनके जीवन निर्णयों में निर्णायक भूमिका निभा रहे हैं। साथ ही, स्वतंत्रता, करियर निर्माण, और व्यक्तिगत विकास की प्राथमिकताएँ भी पारंपरिक पारिवारिक मूल्यों को चुनौती दे रही हैं।

विशेष रूप से, कई युवा अब यह मानने लगे हैं कि दुनिया पहले से ही अत्यधिक जनसंख्या, संसाधनों की कमी, और जलवायु संकट का सामना कर रही है। ऐसे में नए जीवन को जन्म देना, उनकी दृष्टि में, न केवल एक पर्यावरणीय उत्तरदायित्व का उल्लंघन है, बल्कि यह उनके करियर, स्वतंत्रता और मानसिक स्वास्थ्य पर भी असर डाल सकता है।

इसके अतिरिक्त, वैश्विक प्रभावों– जैसे सोशल मीडिया पर चल रहे Childfree Movements, Feminist विचारधाराएँ, और वैकल्पिक जीवनशैली की चर्चाएँ–भी इस सोच को बल दे रहे हैं।

इस अध्ययन में, हम वाराणसी के 20–30 वर्ष के युवाओं की दृष्टि से यह समझने का प्रयास करेंगे कि कैसे पर्यावरणीय चिंता और करियर प्राथमिकताएं, संतान न पैदा करने के निर्णय को प्रभावित कर रही हैं। यह शोध इस प्रवृत्ति के सामाजिक प्रभावों और संभावित दूरगामी परिणामों की भी व्याख्या करेगा।

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि (Theoretical Background) :-

सैद्धांतिक पृष्ठभूमि (Theoretical Background)

किसी भी सामाजिक व्यवहार या प्रवृत्ति को समझने के लिए उसके पीछे मौजूद वैचारिक एवं सैद्धांतिक आधारों का अध्ययन आवश्यक होता है। वाराणसी के युवाओं द्वारा 'बच्चा न पैदा करने' जैसे निर्णय को समझने के लिए यह अध्ययन मुख्यतः दो प्रमुख सिद्धांतों पर आधारित है :

1. तर्कसंगत विकल्प सिद्धांत (Rational Choice Theory)

यह सिद्धांत मानता है कि व्यक्ति अपने प्रत्येक सामाजिक निर्णय को सोच–समझकर, लाभ और हानि की तुलनात्मक समीक्षा के आधार पर करते हैं। युवा जब संतान न पैदा करने का निर्णय लेते हैं, तो वे इसे निम्नलिखित कारकों के संदर्भ में तौलते हैं :

- बढ़ती महंगाई और जीवन यापन की लागत।
- नौकरी और करियर की प्रतिस्पर्धा।
- समय, स्वतंत्रता और मानसिक संतुलन की प्राथमिकता।
- सामाजिक दबाव बनाम व्यक्तिगत स्वायत्तता।

इस परिप्रेक्ष्य में, बच्चा न पैदा करना एक तर्कसंगत, भविष्य–दृष्टि से लिया गया निर्णय बन जाता है, न कि केवल सामाजिक परंपरा का उल्लंघन।

2. पारिस्थितिक आधुनिकता सिद्धांत (Ecological Modernization Theory)

यह सिद्धांत सुझाव देता है कि आधुनिक समाज पर्यावरणीय खतरों को गंभीरता से लेते हुए अपनी नीतियों, तकनीकों और जीवनशैली को इस प्रकार ढालते हैं जिससे सतत विकास सुनिश्चित हो सके। इस संदर्भ में :

- युवा जलवायु परिवर्तन, संसाधनों की सीमितता और जनसंख्या वृद्धि को देखते हुए जनन संबंधी निर्णय ले रहे हैं।
- 'संतान न पैदा करना' को वे एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में "पर्यावरण के प्रति संवेदनशील विकल्प" मानते हैं।
- यह दृष्टिकोण समाज के पारंपरिक रुझानों से हटकर पर्यावरणीय विवेकशीलता पर आधारित है।

3. उत्तर आधुनिकता का दृष्टिकोण (Postmodern Perspective) (पूरक दृष्टिकोण)

उत्तर आधुनिक विचारधारा यह मानती है कि आज का समाज विविधता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और जीवन शैली के प्रयोग को महत्व देता है। विवाह, मातृत्व/पितृत्व और परिवार जैसे पारंपरिक ढांचे अब अपरिवर्तनीय नहीं रह गए हैं। "Childfree by Choice" जैसे विचार इसी उत्तर आधुनिक सोच के प्रतिनिधि हैं, जहाँ व्यक्ति समाज से अलग हटकर अपने जीवन की परिभाषा स्वयं तय करता है।

सैद्धांतिक निष्कर्ष :–

इन सिद्धांतों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि वाराणसी के युवा 'बच्चा न पैदा करने' के निर्णय को केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि तर्कसंगत, पर्यावरणीय और आधुनिक दृष्टिकोण से भी देख रहे हैं। यह सोच सामाजिक बदलाव, पर्यावरणीय चेतना और जीवन की गुणवत्ता की तलाश का प्रतिनिधित्व करती है।

समीक्षा और विश्लेषण (Review and Analysis)

1. पूर्ववर्ती साहित्य की समीक्षा (Review of Existing Literature)

पिछले दो दशकों में वैश्विक स्तर पर "Childfree by Choice" की अवधारणा पर कई महत्वपूर्ण अध्ययन हुए हैं। इनमें से अधिकांश शोध यह दर्शाते हैं कि युवाओं द्वारा संतान न पैदा करने का निर्णय केवल आर्थिक कारणों से प्रेरित नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक, पर्यावरणीय और वैचारिक चेतना का भी परिणाम है।

- **Sarkar (2020)** ने अपने अध्ययन में यह स्पष्ट किया कि भारत के शहरी युवाओं में climate anxiety एक गंभीर मनोवैज्ञानिक स्थिति बन रही है, जो सीधे उनके जीवन निर्णयों को प्रभावित कर रही है।
- **Basten & Verropoulou (2015)** के अनुसार, यूरोपीय देशों में युवा जनसंख्या वृद्धि को 'अनैतिक कार्य' के रूप में देखने लगी है, जिससे जन्म दर में उल्लेखनीय गिरावट आई है।
- **Patel (2019)** ने भारत में करियर–प्रेरित महिलाओं के बीच "Childfree Identity" को उभरती प्रवृत्ति के रूप में रेखांकित किया है।

भारतीय संदर्भ में, हालांकि पारंपरिक परिवार संरचना अब भी प्रबल है, फिर भी शहरी और उच्च शिक्षित वर्ग में जीवन की गुणवत्ता, करियर प्राथमिकता, और पर्यावरणीय जिम्मेदारी जैसे पहलुओं के कारण जनन संबंधी विचारों में बदलाव देखा जा रहा है।

2. वाराणसी क्षेत्र का विश्लेषण (Empirical Analysis in Varanasi) :–

शोध के अंतर्गत वाराणसी नगर क्षेत्र के 120 युवा प्रतिभागियों (20–30 वर्ष आयु वर्ग) से डेटा एकत्रित किया गया, जिसमें पुरुष और महिला दोनों शामिल थे।

प्रमुख निष्कर्ष (Key Findings) :

1. पर्यावरणीय चिंता (Environment&Related Concern) :

- 63 प्रतिशत प्रतिभागियों ने माना कि जलवायु संकट, जल संकट, और प्राकृतिक संसाधनों की कमी के कारण वे संतान न पैदा करने के पक्ष में हैं।
- कई प्रतिभागियों ने "पृथ्वी पहले से ही बोझिल है" जैसी भावनाएँ व्यक्त कीं।

2. कैरियर प्राथमिकताएं और स्वतंत्रता :

- 71 प्रतिशत प्रतिभागियों ने बताया कि वे पहले अपनी शैक्षणिक और पेशेवर स्थिरता को प्राथमिकता देना चाहते हैं।
- विवाह और परिवार को "बाधक" के रूप में देखा गया, खासकर महिलाओं के लिए।

3. सामाजिक अपेक्षाओं से तनाव :

- यद्यपि युवाओं के विचार स्वतंत्र हैं, फिर भी 58 प्रतिशत ने कहा कि "परिवार और समाज" के कारण उन पर पारंपरिक निर्णय लेने का दबाव रहता है।

4. लैंगिक भिन्नता :

- महिलाएं पुरुषों की तुलना में अधिक स्पष्ट और दृढ़ थीं कि वे संतान नहीं चाहतीं, और इसके पीछे करियर, स्वास्थ्य और स्वतंत्रता को कारण बताया।

5. डिजिटल प्रभाव :

- लगभग 40 प्रतिशत प्रतिभागियों ने Social Media और Online Communities (जैसे Reddit, Instagram

पर Childfree Forums) से इस सोच को प्रेरणा मिलने की बात कही।

3. विश्लेषणात्मक व्याख्या (Interpretation)

यह अध्ययन दर्शाता है कि वाराणसी जैसे सांस्कृतिक और पारंपरिक शहर में भी अब युवा वर्ग में एक वैकल्पिक जीवन दृष्टिकोण विकसित हो रहा है, जो उनके निर्णयों को केवल सामाजिक स्वीकृति पर आधारित नहीं रहने देता। यह एक ऐसा बदलाव है जिसमें पर्यावरणीय उत्तरदायित्व, जीवन की गुणवत्ता, और मानसिक स्वतंत्रता को जीवन के केंद्र में रखा जा रहा है।

करियर प्राथमिकताएं, सामाजिक अपेक्षाओं के साथ संघर्ष करती हैं, और इस संघर्ष का परिणाम एक ऐसा निर्णय बन रहा है, जो पहले "अकल्पनीय" था – बच्चा न पैदा करने का निर्णय। यह सिर्फ एक व्यवहारिक रुझान नहीं, बल्कि एक वैचारिक और नैतिक चेतना का प्रतीक है।

निष्कर्ष (Conclusion)

यह अध्ययन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि वाराणसी जैसे पारंपरिक और धार्मिक नगरी में भी युवा पीढ़ी अपने जीवन निर्णयों के प्रति अधिक स्वतंत्र, जागरूक और उत्तरदायी होती जा रही है। विशेषकर 20–30 वर्ष की आयु वर्ग के युवक–युवतियों में पारंपरिक संतानोत्पत्ति की अनिवार्यता को अब एक वैकल्पिक विकल्प के रूप में देखा जा रहा है, न कि सामाजिक बाध्यता के रूप में।

शोध के निष्कर्षों से यह ज्ञात होता है कि :-

1. पर्यावरणीय चिंता (जैसे जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों की समाप्ति, जनसंख्या विस्फोट) युवाओं के मानस को प्रभावित कर रही है। वे स्वयं को "स्मार्ट नागरिक" या "जिम्मेदार वैश्विक मानव" के रूप में देखना चाहते हैं जो आने वाली पीढ़ियों के प्रति अपने कर्तव्यों को समझते हैं।
2. कैरियर और आत्मनिर्भरता को प्राथमिकता देना भी इस निर्णय का केंद्रीय तत्व है। युवा अब अपने भविष्य को लेकर स्पष्ट हैं और वे मानते हैं कि संतान जन्म देना उनकी स्वतंत्रता, आर्थिक संतुलन और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकता है।
3. लैंगिक दृष्टि से, महिलाएं इस निर्णय को लेकर अधिक मुखर और स्पष्ट हैं। वे मातृत्व को विकल्प के रूप में देख रही हैं, न कि स्वाभाविक कर्तव्य के रूप में।
4. डिजिटल और वैश्विक प्रवाह, जैसे Childfree Movements और वैकल्पिक जीवनशैली चर्चा मंच, युवाओं के निर्णयों को वैचारिक समर्थन प्रदान कर रहे हैं।

हालाँकि यह प्रवृत्ति व्यापक स्तर पर नहीं फैली है, परंतु इसके संकेत स्पष्ट हैं कि भारत के महानगरों और सांस्कृतिक केन्द्रों में नवोन्मेषी सामाजिक परिवर्तन की लहर धीरे–धीरे आकार ले रही है। यह परिवर्तन केवल व्यवहार में नहीं, बल्कि सोच, विचारधारा और समाज की परिभाषा में भी परिलक्षित हो रहा है।

इस प्रकार, 'बच्चा न पैदा करने का निर्णय' अब केवल व्यक्तिगत पसंद नहीं रहा, बल्कि यह एक सामाजिक, नैतिक और पर्यावरणीय चिंतन का परिणाम है। इसे एक उत्तरदायी, विवेकशील और समकालीन युवा पीढ़ी के उभरते रूप के प्रतीक के रूप में देखा जा सकता है।

सुझाव (Recommendations)

अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किए जा रहे हैं, जिनके माध्यम से

नीति–निर्माता, समाजशास्त्री, शिक्षाविद् तथा जन–जागरूकता संस्थान भविष्य की योजनाओं और जन संवाद को अधिक प्रभावी बना सकते हैं :

1. पर्यावरणीय शिक्षा में जनसंख्या और प्रजनन निर्णयों को शामिल किया जाए :

विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पर्यावरणीय शिक्षा के पाठ्यक्रम में "जनसंख्या, संसाधन और टिकाऊ जीवनशैली" जैसे विषयों को सम्मिलित किया जाए ताकि युवा पीढ़ी जागरूक निर्णय ले सके।

2. स्वतंत्र जीवन शैली की सामाजिक स्वीकृति को बढ़ावा दिया जाए :

संतान न पैदा करने के निर्णय को सामाजिक कलंक (stigma) से मुक्त करने की दिशा में संवाद और विमर्श की आवश्यकता है। इसके लिए मीडिया, सिविल सोसाइटी और परिवारों को सहयोगात्मक भूमिका निभानी चाहिए।

3. युवाओं के मानसिक स्वास्थ्य व वैचारिक स्वतंत्रता का सम्मान हो :

कैरियर, विवाह और प्रजनन को लेकर युवाओं पर सामाजिक दबाव मानसिक तनाव को जन्म देता है। काउंसलिंग सेवाओं, विश्वविद्यालय हेल्पलाइन, और मानसिक स्वास्थ्य जागरूकता कार्यक्रमों को सक्रिय रूप से आगे लाना आवश्यक है।

4. महिलाओं की आत्मनिर्भरता को नारी सशक्तिकरण के रूप में स्वीकार किया जाए :

महिलाएं जब संतान न पैदा करने का निर्णय लेती हैं, तो इसे नकारात्मक रूप से नहीं देखा जाना चाहिए। यह उनके सशक्तिकरण का एक स्वरूप है, जिसकी समाज द्वारा सराहना की जानी चाहिए।

5. नीति निर्माण में युवाओं की आवाज को शामिल किया जाए :

परिवार नीति, जनसंख्या नीति, और पर्यावरणीय योजनाओं में युवाओं की विचारधाराओं को भी स्थान मिलना चाहिए ताकि नीतियाँ अधिक यथार्थपरक और संवेदनशील बन सकें।

केस स्टडी : 'पायल और अमन' कृ वाराणसी के युवा दंपती का दृष्टिकोण

परिचय :

यह केस स्टडी वाराणसी के लंका क्षेत्र में रहने वाले एक शिक्षित, शहरी युवा दंपती – पायल (28 वर्ष) और अमन (30 वर्ष) – पर आधारित है। दोनों ने विवाह के पाँच वर्ष बाद भी संतान न पैदा करने का निर्णय लिया है और इसे स्थायी रूप से Childfree रहने की सोच से जोड़ा है।

पृष्ठभूमि :

- पायल : बीएचयू से स्नातकोत्तर (M.A. पद Environmental Science), वर्तमान में एक NGO में पर्यावरण शोधकर्ता के रूप में कार्यरत।
- अमन : इंजीनियरिंग स्नातक, एक निजी आईटी कंपनी में कार्यरत।
- दोनों का परिवार उत्तर प्रदेश के पारंपरिक मध्यमवर्गीय पृष्ठभूमि से आता है।

मुख्य विचार (Insights) :

पर्यावरणीय चिंता :

पायल के अनुसार, "जब हम अपने काम के माध्यम से देखते हैं कि जलवायु कितनी तेजी से बदल रही है, संसाधन कितने सीमित हो चुके हैं, तो हमें लगता है कि आने वाले वर्षों में जीवन और कठिन हो जाएगा।

ऐसे में किसी और को इस दुनिया में लाना एक जिम्मेदारी नहीं, एक अपराध जैसा लगता है।"

कैरियर और जीवन प्राथमिकता :

अमन कहते हैं, "हम दोनों अपने जीवन में बहुत संतुलित हैं, अपने करियर, यात्राओं और आत्मिक विकास में समय देना चाहते हैं। हमारा मानना है कि बच्चे के साथ हमारी वह स्वतंत्रता समाप्त हो जाएगी जो अभी हमें अपने विकास के लिए चाहिए।"

सामाजिक दबाव और पारिवारिक प्रतिक्रियाएँ :

दोनों को शुरुआत में परिवार की तरफ से "समझाने", "धमकाने" और "दया" जैसी प्रतिक्रियाओं का सामना करना पड़ा। पायल बताती हैं, "मेरे माता–पिता ने मुझे यहाँ तक कह दिया कि 'महिला का अस्तित्व माँ बनने में है', लेकिन मैंने उन्हें शांति से समझाया कि एक महिला का अस्तित्व उसके सोचने की स्वतंत्रता में है।"

नैतिक दृष्टिकोण और संतुष्टि :

दोनों मानते हैं कि वे इस निर्णय से आत्मिक रूप से संतुष्ट हैं। उनके अनुसार, यह नकारात्मकता नहीं, बल्कि भविष्य के प्रति जिम्मेदारीपूर्ण सकारात्मक सोच है।

विश्लेषण (Interpretation) :

पायल और अमन जैसे शिक्षित, जागरूक, शहरी युवा दंपती इस बात का उदाहरण हैं कि "Childfree by Choice" अब केवल पश्चिमी अवधारणा नहीं रह गई है। यह निर्णय सूचना–संपन्न, पर्यावरण–संवेदनशील और आत्मनिर्भर व्यक्तियों द्वारा लिया गया स्वायत्त सामाजिक विकल्प बनता जा रहा है।

निष्कर्ष (Conclusion of Case Study) :

यह केस दर्शाता है कि जब युवाओं को सोचने, निर्णय लेने और जीवन जीने की स्वतंत्रता मिलती है, तब वे पारंपरिक अपेक्षाओं के स्थान पर दीर्घकालिक वैश्विक हित और व्यक्तिगत संतुलन को चुनने लगते हैं। पायल और अमन जैसे उदाहरण समाज में प्रजनन स्वतंत्रता, पर्यावरणीय विवेक और लैंगिक समानता जैसे मूल्यों की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं।

केस स्टडी : 'सोनाली और दीपक' : ग्रामीण पृष्ठभूमि से आए युवा और जीवन के नए निर्णय

परिचय :

यह केस स्टडी वाराणसी जनपद के बड़ागाँव ब्लॉक के अंतर्गत आने वाले एक गांव के निवासी सोनाली (27) और दीपक (29) पर आधारित है। दोनों की पृष्ठभूमि पारंपरिक कृषक परिवारों से जुड़ी है, किंतु दोनों ने उच्च शिक्षा प्राप्त कर शहर में बसने और संतान न पैदा करने का साझा निर्णय लिया है।

पृष्ठभूमि :

- सोनाली : स्नातकोत्तर (M.A. in Sociology), वर्तमान में एक निजी स्कूल में शिक्षिका।
- दीपक : बी.एड के बाद एक कोचिंग संस्थान में शिक्षक, प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी भी कर रहे हैं।
- दोनों की शादी को 3 वर्ष हो चुके हैं, और वे वाराणसी शहर में किराए पर रहते हैं।

मुख्य विचार (Insights) :

पर्यावरणीय जागरूकता का ग्रामीण अनुभव से संबंध :

सोनाली बताती हैं, "गाँव में हमने देखा कि कैसे जमीन बंजर हो रही है, बारिश का चक्र बिगड़ गया है,

और खेती में घाटा हो रहा है। हम जानते हैं कि जलवायु संकट केवल शहरों का नहीं, गांवों का भी यथार्थ है।" उनका मानना है कि जब पर्यावरण ही जीवन के लिए अनुकूल न रहे, तो नई पीढ़ी को जन्म देना नैतिक रूप से उचित नहीं।

आर्थिक अस्थिरता और प्राथमिकता :

दीपक कहते हैं, "अभी खुद की नौकरी स्थिर नहीं है। प्रतियोगी परीक्षाओं का दबाव है। बच्चे की जिम्मेदारी लेने का मतलब है कि हम दोनों अपनी शिक्षा और करियर से समझौता करें।"

उनके अनुसार, ग्रामीण पृष्ठभूमि से आए युवा जब शिक्षा और आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ते हैं, तो वे परंपरा से अधिक तर्क को महत्व देते हैं।

सामाजिक दबाव और अपेक्षाएं :

ग्रामीण समाज में आज भी संतानोत्पत्ति विवाह का अभिन्न हिस्सा मानी जाती है। दीपक बताते हैं, "गाँव में अब भी लोग पूछते हैं – 'खुशखबरी कब दोगे?' लेकिन हमने तय कर लिया है कि हम केवल समाज के लिए नहीं, अपने लिए भी जीएंगे।"

स्वतंत्रता की भावना :

सोनाली कहती हैं, "मुझे अपने निर्णय पर गर्व है। मैं माँ बनने की तुलना में एक शिक्षिका, नागरिक और जिम्मेदार व्यक्ति बनना अधिक चाहती हूँ।"

विश्लेषण (Interpretation) :

यह केस स्टडी दर्शाती है कि आज के ग्रामीण पृष्ठभूमि से आए युवा भी यदि शिक्षित और जागरूक हैं, तो वे पारंपरिक अपेक्षाओं को चुनौती दे सकते हैं। उनका निर्णय सिर्फ शहरी जीवनशैली की नकल नहीं है, बल्कि यह स्वतः अर्जित जीवन दर्शन है जो अनुभव, संघर्ष और तर्क पर आधारित है।

निष्कर्ष (Conclusion of Case Study) :

'सोनाली और दीपक' जैसे उदाहरण यह दर्शाते हैं कि "Childfree by Choice" जैसी अवधारणाएं अब केवल उच्च वर्ग और महानगरीय संदर्भ तक सीमित नहीं रहीं। यह एक सामाजिक रूपांतरण का संकेत है, जहाँ ग्रामीण पृष्ठभूमि से आए युवा भी पर्यावरण, करियर और आत्म–संतुलन को केंद्र में रखकर जीवन के निर्णय ले रहे हैं।

संदर्भ सूची (References) :

1. Basten, S., & Verropoulou, G. (2015). Why have children in the 21st century?. Population Studies Review, 67(2), 123–138.
2. Sarkar, S. (2020). Climate Anxiety and the Childfree Movement in India. Indian Journal of Social Work, 81(3), 211–228.
3. Gerson, K. (2010). The Unfinished Revolution: Coming of Age in a New Era of Gender, Work, and Family. Oxford University Press.
4. Patel, R. (2019). Childfree by Choice: Changing Perceptions of Parenthood Among Indian Youth. Journal of Family Sociology, 44(1), 45–60.

5. Government of India (2023). Youth in India: Status and Trends Report. Ministry of Youth Affairs and Sports.
6. Singh, R. (2022). Changing Family Structures and Parenthood Trends in Urban India. Economic and Political Weekly, 57(12), 25–30.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 214-223

श्रीमंत शंकरदेव और गुरू नानक : एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. करबी देवी
विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, नगांव विश्वविद्यालय।

प्रस्तावना :–

भारतवर्ष के असम प्रांत में जन्म ग्रहण करने वाले श्रीमंत शंकरदेव और गुरुद्वारा ननकाना साहिब पाकिस्तान में जन्म ग्रहण करने वाले गुरु नानक देव दोनो ही भक्ति आन्दोलन के पुरोधा व्यक्ति थे। दोनों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को देखा जाये तो दोनों व्यक्तियों में बहुत सारे साम्य अथवा मेल देखने को मिलता है। दोनों निराकार ईश्वर के उपासक, धर्म प्रचारक, गुरु, कवि–साहित्यकार, दार्शनिक, गायक, सुरकार, पर्यटक, समाजसुधारक, देशभक्त थे। शंकरदेव और नानकदेव दोनों ने ईश्वर के नाम स्मरण, भजन, कीर्तण, गुरु भक्ति पर बल दिया है। दोनों संतों ने संसार को क्षणभंगुर और मायाग्रस्त कहा है। बलि–विधान का खण्डन किया है। जात–पात, उच्च–नीच की भेद भाव को मिटाने की कोशिश की है। निराकार ईश्वर के प्रति दोनों संतों ने सेवा और श्रद्धा का भाव रखने को कहा है। क्योंकि गुरु और ईश्वर के प्रति सेवा का भाव रखने पर पाप और अहं दुर हो जाते हैं। फलस्वरूप संत शंकरदेव के अनुसार मनुष्य को वैकुण्ठ और नानकदेव के अनुसार "सचखंड" प्राप्त होते हैं। इस शोधपत्र के जरिए इन दो महान व्यक्तिओँ के तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने की कोशिश की गयी है।

श्रीमंत शंकरदेव :–

पूर्वोत्तर भारत के असम प्रांत में संत श्रींमंत शंकरदेव का जन्म 1449 को नगाँव जिले के बरदोवा (आलिपुखुरी) नामक स्थान पर हुआ था। पिता कुसुम्बर भुञाँ और मातृ सत्ससंध्या के एकमात्र पुत्र शंकर जन्म के कुछ दिन पश्चात ही माँ की ममता से बिछड़ गये। दादी खेरसुती ने उनका पालन–पोषण किया। जन्म के बाद बारह साल तक आप घर में ही आवारगर्दी करते रहे। बाद में महेन्द्र कन्दली की पाठशाला में जाकर पढ़ने लगे। सिर्फ स्वरवर्ण और व्यजनवर्ण को ही सिखकर आपके आपने बिना मात्रा लगे "करतल कमल कमल दल नयन, भवदव गहन, गहनवन शयन" जैसे आध्यात्मिक भावपूर्ण कविता लिखकर सबको चमकृत किया। इसके बाद गुरु गृह में रहकर चौदह शास्त्र, अठारह पुराण का अध्ययण सम्पूर्ण किया।

गुरु गृह से लौटकर कीर्तण, दशम, भक्ति रत्नाकर, नाट्य साहित्य, बरगीत–भटिमा, ब्रजावली भाषा का निर्माण, चिह्नयात्रा भाउना, बारह साल की तार्थ भ्रमण और वृन्दावनी वस्त्र जैसे अनोखे वस्त्र का निर्माण किया।

ऊधर गुरु नानक का जन्म सम्वत 1526 वैशाख सुदी तृतीया अर्थात 15 अप्रैल, सन् 1469 को तलवण्डी

नामक गाँव में हुआ। आज इस स्थान को "ननकाना साहब" कहते है। यह स्थान लाहौर के (पाकिस्तान) के दक्षिण–पश्चिम में पैंसठ किलोमीटर की दूरी पर है। आपके माता जी का नाम तृप्तादेवी था। जो क धार्मिक विचारों वाली महिला थी। पिता का नाम कल्याण चंद मेहता जिन्हें लोग कालू मेहता के नाम से ज्यादा जानते थे।

गुरु नानक देवजी के जन्म के अवसर को भाई गुरदास ने लिखकर इस प्रकार चित्रित किया है–

"सतिगुरू नानक प्रगतिया मिटी धूंध जगि चाणानु होआ।
जिउ करि सूरजु निकलिओ तारे छिपि अंधेरू पलोआ।।"

(वार–1, पउडी 27)

इसमे कोई संशय की बात नहीं कि जिस समय नानक देव का जन्म हुआ, उस समय भारत अपने इतिहास के भयानक संकट में से गुजर रहा था। दिल्ली की सल्तनत लड़खड़ा रही थी, लेकिन मध्य एशिया से मुगलों की जो दूसरी आँधी उठ रही थी, वह नए सिरे से भारत को आक्रांत करनेवाली थी। ऐसे संक्रमण काल में नानक का पदापर्ण होता है।

(क) निर्गुण एकेश्वरवाद मे विश्वास :

श्रीमंत शंकरदेव के धर्म ऐकेश्वरवाद पर विश्वास रखते थे। आपके अनुसार ईश्वर एक है और निर्गुण है। उसका कोई दूसरा रूप या आकार नहीं है। इसलिए आपने कहा है–

"एक देव एक सेव एकत बिने नाइ केउ"

अर्थात– एक ही ईश्वर है और सिर्फ मन–मस्तिष्क से उनका ही ध्यान एवं स्मरण करना चाहिए।

फिर शंकरदेव ने कहा है–

"नाहि जन्म तोमार तथापि जन्म धरा।
सोहि जन्म जीवर जनम दूर करा।।
... .
तुमि प्रभु निर्गुण गुणरे सीमा नाई।
निर्गुण होवर जीव सेहि गुण गाई।"

(बरगीत– मुकुर, पृ.सं. 227)

अर्थात– हे प्रभु,तुम अजन्मा हो। अजन्मा होकर भी तुम इस संसार के सारे जीव के दुख को दूर करते हो। तुम निर्गुण–निराकार हो। फिर भी तुम्हारा गुण वर्णनातीत है। समस्त जीव और जगत सिर्फ तुम्हारा नाम लेकर गुणों की व्याख्यान कर इस भव सागर को पार कर जाता है।

उसी प्रकार गुरु नानक जी ने भी वही मत देते हुए अपने 'जपजी साहिब' में कहा है कि :–

"ऐंकार सतिनामु करता पुरूष
निरभउ निरवैर आकालमूरत
अजुनी चेभंग, गुरूप्रसाद, जप
आदि सच्च युगादि सच्च।
हेभी सच्च् नानक हो सेभि सच्च।"

अर्थात्– भगवान एक है, उनका नाम ही सत्य है। वही परमपुरुष है। वह न किसी से डरते है न किसी

को डराते है। उनका कोई शत्रु नहीं है। उनको जप और स्मरण करो। वह काल के अतीत है, जन्म–मृत्यु से रहीत है। समस्त सृष्टि को वह कृपा कर रहे है। वही एकमात्र स्तय है। इसे कोई नकार नहीं सकता।

फिर आपने परमात्मा के निर्गुण और उदेवतवाद के बारे में प्रसंग उठाते हुऐ कहा है कि–सर्वशक्तिमान परमात्मा के एक हुक्म से समस्त सृष्टि का निर्माण हुआ है। जैसे "**कीता पसाऊ एकै कवाओ।**" (गुरु ग्रंथ साहिब, पृ.सं.–169) एवं "**घट-घट जाच सव**" (उपरिवत, पृ.सं.– 97)

अर्थात– सृष्टि का अद्‌भूत कर्ता होने के साथ–साथ परमात्मा उसके कण–कण में व्याप्त है। परमात्मा समस्त सृष्टि का संचालक भी है। इस सारी सृष्टि का रहस्य स्वयं परमात्मा ही जानता है। क्योंकि उन्हीं का प्रसार हम मनुष्य समस्त सृष्टि के विस्तार में देखते है। जैसे–

"आपे करता पुरखु विधाता। जिनि आपे आपि उपाइ पछाता।
आपे सतिगुर आपे सेवक आपे स्त्रिसटि उपा है।"

(गुरु ग्रंथ साहिब, पृ.सं. 2026)

परमात्मा के एकत्व का विश्लेषण करते हुऐ मलहार गाना में गुरु नानक जी का कथन है कि "परमात्मा आप ही पट्टी है, आप ही लेखनी है। तथा उसके उपर लिखा हुआ लेखक भी वह स्वयं है।" (जग्गी ड. गुरशरन कौर, 2002)

(ख) गुरू महत्व :-

श्रीमंत शंकरदेव ने गुरु के महत्व पर बहुत बल दिया था। गुरु को ही ईश्वर से मिलवाने का एकमात्र सहारा कहा है। गुरु और सत्संग को आश्रय करके मुक्ति का मार्ग निश्चित करने के लिए कहा है। आपने कहा है–

"इसब धर्मत तुष्ट नुहिको सिमत।
जेन तुष्ट हउ मइ गुरू भजनत।।
जदि हउ समस्तरे आत्मा अर्न्तयामी
तथापितो गुरू सेवातेसे तुष्ट आमि।"

संतों की साधना में गुरु का महत्व वर्णनातीत है। इसलिए संत शंकरदेव ने शिष्य माधवदेव को कहा था–

"सुनिउ माधव मोर थाकिबार थान
कीर्तन दशम मोर मुटिर समान।
निपुने मोहोक गुरू जिजने बोलय।
कीर्तनते दशमते देखिबे बोलय।।"

अर्थात– गुरु से श्रेष्ठ और उत्तम और कोइ नहीं है। एकशरण हरिनाम धर्म के चार तत्व गुरु, देव, नाम, भकत– इनमें से कार्तण में मुक्त रूप से गुरु तत्व को ही श्रेष्ठ कहा गया है।

फिर आपने कहा,

"भकतक बादे मइ आनक नभजो।
सर्वतत्व भकतक मइ गर मानु।।"

अर्थात– मैं भक्त को ही गुरु मानता हूँ। गुरु के सिवा अन्य किसी को भजन–स्मरण नहीं करता हूँ। उसि

प्रकार गुरु नानक देव ने कहा है कि–

"पवन अरंभु सतिगुर मति बेला, सबहु गुरू सुराति धुति चेला।।
अकथ कथा ले रहउ निराला। नानक जगि जगि गुर गोपाला।"

(रामकलि, सिद्धागोष्ठी–44, महला–1)

अर्थात– जीवन का मूल प्राण है। सतगुरु का मत भी यही है। शब्द ही गुरु है। गुरु शब्द से ही हरि कथा का विचार किया गया है। शब्द ही मेरा गुरु है। गुरु ही परमब्रह्म है।

आपने फिर 'गुरु' शब्द का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहा है–

"अंतरि सबहु निरंतरि मुझ मउमै ममता दूरि करी।।
कामि क्रोधु अहंकारू निवारै गुरू के सबहि सु समझ परी।।
स्विंथा झोली भरिपुरि रहिआ नानक तारै एकु हरी।।
साचा सहिबु साची नाई परखै गुर की बात खरी।".

(रामकला, सिद्धगोष्ठी–10, महला–1)

अर्थात– मैंने अपने मन को गुरु शब्द द्वारा नियंत्रण में कर लिया है। जिसमें अब पाँचों विकार– काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार मुझसे दूर भागते है। यदि आप भी ऐसा चाहते हो तो, इस आंडंबरों से भरे भेष को त्यागकर गुरु की सीख पर जावन–यापन करना सीख लो। गुरु ही एकमात्र मुक्ति का मार्ग दिला सकता है। आपने फिर कहा है कि–

"सतगुरू मिलै तो दुविधा भागै,
कमल विगासी मनु हरि प्रभु लागै।।"

(ग) सर्वगुण सम्पन्न :-

जगतगुरु श्रीमंत शंकरदेव सिर्फ धर्म प्रचारक ही नहीं थे। वे एक कवि, साहित्यकार, धर्म–प्रचारक, गुरु, गीतकार, सुरकार, गायक, वादक, नाट्यकार, चित्रकार आदि बहुत सारे गुणों के अधिकारी थे। इसलिए कहा है–

"जय गुरू शंकर सर्वगुणाकर
जाकेरि नाहिके उपामस
तुम्हारी चरणक रेणु शतकोटि
बारेक करोहो प्रणाम।।"

ठीक उसी प्रकार गुरु नानक देव जी भी सर्वगुण सम्पन्न व्यक्ति थे। आप एक कवि, लेखक, साहित्यकार, गीतकार, सुरकार, धर्म प्रचारक, ज्ञानी और परिश्रमी व्यक्ति थे।

(घ) आत्मत्यागि -

श्रीमंत शंकरदेव और गुरु नानक दोनों ही बड़े आत्मत्यागि व्यक्ति एवं संत थे। हमेशा समाज, राष्ट्र एवं देश की भलाइ के लिए ही काम करते चले गये।

संत शंकरदेव को अगर देखा जाये तो आपने एकशरण हरिनाम धर्म को प्रचार–प्रसार करन के उपरांत मृत्यु से पहले ही उस 'गुरु आसन' एवं 'एकशरण हरिनाम धर्म' के पथ को उनके प्रिय शिष्य माधव देव को अर्पण किये न कि उनके पुत्र परिवार को। क्योंकि गुरु शंकरदेव को यह मालुम था कि उनके वैकुण्ठगामी होने के बाद

शिष्य माधवदेव ही इस पंथ को अच्छी तरहा चला सकेंगे।

ठिक उसी प्रकार गुरु नानक जी को भी देखा जाये तो वह भी आत्मत्यागि और प्रकृत लोकनायक थे। क्योंकि सारा जीवन स्वयं के सख–दुख, आराम आदि के बारे में न सोंचकर दूसरों की सेवा और समाज कल्याण की भावना को लेकर ही काम करते चले गये। मृत्यु के कुछ दिन पहले आपने भी गुरु आसन के दायित्व आपके दोनों पुत्र वावा श्रीचाँदजी और वावा लक्ष्मीदासजी को न देकर उनके प्रिय शिष्य भाई लहनाजी को दिये थे। भाई लहना जी शिख धर्म के दश गुरुओं में से पहला गुरु है और गुरु नानक के बाद ही आपका स्थान है।

ङ) जात-पात का खण्डन :-

श्रीमंत शंकरदेव जी ने अपने एकशरण हरिनाम धर्म में या वैष्णव धर्म के प्रचार–प्रसार करने हेतु जात–पात का खंडन किया 6था। गारो जाति के नरोत्तम, मिरि जाति के परमानन्द, भूटिया जाति के पूर्णानन्द, चवन के चाँदगोसाई, कैवर्त जाति के पूर्णानन्द और उच्च वर्ग के मिश्र कंदली आदि ब्राह्मण और कायस्थ के साथ मिलकर धर्म की चर्चा की थी। आपने लिखी है–

"नाहि भकतित जाति अजाति विचार,
कृष्ण भकतित समस्तरे अधिकार।।
.....
ब्राह्मणर चंडालर निविचारि कूल
दातात चोरत जेन हस्त्रि समतुल। (कीर्तण)

फिर लिखा है –

"कृष्णर कथात जितों रसिक,
ब्राह्मण जन्म तार लागे किक।
स्मरोक मात्र हरि दिने राति,
नवाछे भकति जाति अजाति।।"

ठीक उसी प्रकार गुरु नानक जी ने भी कहा है कि किसी को जन्म के आधार पर नीचा समझना और आपने आपको केवल जन्म के आधार पर ऊँचा समझना भारतीय समाज की सभी बीमारियों की जड़ है। इसलिए आपने कहा है–

"नीचा अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु।
नानकु तिन कै संगि साथि बहिआ सिउ किआ रीस।
जिथै नीच समालीअति तिथै नदरि तेरी बखसीस।"

(सिरी, शब्द, महला–1)

अर्थात– तथाकथित ऊँची जाति के लोग जातिगत भेदभाव नहीं छोड़ते, तो नानक का स्पष्ट कहना है कि– ऐसे ऊँची जाति के लोगों से उन्हें कुछ लेना–देना नहीं है। मैं तो उनके साथ हूँ, जिनको समाज नीची जाति से भी नीचा मानता है। जहाँ तथाकथित नीच की देख–रेख होती है, वही परमात्मा की कृपा होती है। फिर आपने कहा है–

नानक जंत उपाइके, संभालै सभनाइ।

जिन करते करना का, चिंताभिकरणी ताहरं।

(च) छुआछुत की भावना का खण्डन :

संत शंकरदेव ने छुआछुत की भावना का भी खण्डन किया है। आपने अपने कीर्तण में लिखा है कि–

"समस्त भूतते व्यापि आछो मई हरि,
सबाको मानिबा तुमि बिष्णु-बुद्धि करि।"

अर्थात– इस समस्त संसार में मैं व्याप्त हूँ। विराजमान हूँ। इसलिए हे मनुष्य, तुम इस संसार के हरेक जीव–जंतु को भगवान विष्णु का एक अंश मानकर उन्हें सेवा करने, उनके प्रति प्यार और श्रद्धा का भावना रखना।

फिर आपने 'भागवत' के दशम स्कन्ध में लिखा हे–

"कुकुर श्रृगाल गदर्भरो आत्माराम,
जानिउ सबाको परि करिवा प्रणाम।"

अर्थात– इस संसार में जितने भी प्राणी निवास करते है कुकुर, श्रृगाल, गधा से लेकर कीड़े–मकोड़े तक सब में मैं (ईश्वर) निवास करता हूँ। इसलिए सबके प्रति सम्भाव, स्नेह और आदर रखना मेरे प्रति भक्ति अर्पण करना जैसा है।

उसी प्रकार गुरु नानक देव ने भी छुआछुत की भावना के खिलाफ जन चेतना जाग्रत किया था। आपने कहा था–

"कुवुधि डुमणी कुदइआ कसाइणि
पर निंदा घट चूहड़ी मुठि क्रोधि चंडालि।
कारी कढ़ी किआ थोए जां चारे बैठीआ नालि।
सचु संजमु करणी कारां नावणु नाउ जपेही।
नानक अगै ऊतम सेइ जि पापां पंदि न दे ही।
किआ हंस किआ बगुला जो कउ नदरि करेइ।
जो तिसु भावै नानका कागहु हंस करेइ।।"

(सिरी, वार, महला–1)

अर्थात– आप जिस चौके को पवित्र मानकर बैठे हो, वह पवित्र कहाँ है। वहाँ तो चार–चार नीच ओरतें पहले से ही बैठी है। आपकी कुबुद्धि बिना किसी आधार के मनुष्य–मनुष्य में भेद करती है। आप में दया–भाव नहीं बचा है। क्योंकि हम सभी के मन मे ऊँच–नीच, अस्पृश्यता का भाव विराजमान है। जन्म के आधार पर किसी को नीचा मानना बड़ी निर्दयता है। यह निर्दयता रूपी कसाइन आपके शरीर में पहले से ही आसन लगाकर बैठी है। परनिंदा से तुम्हें पल भर के लिए भी फुरसत नहीं मिलती और यही परनिंदा रूपी मेहतरानी भी तुम्हारे भीतर घर करके बैठी हुई है। क्रोध रूपी चंडालिनी को भी तुम अपने मन में संभाले रखे हो। ये चार वृत्तियाँ ही निम्न या नीच है। छुआछुत की भावना रखना हो तो इन वृत्तिओं से करो।

(छ) नाम-स्मरण पर महत्व :-

संत श्रीमंत शंकरदेव के नाम स्मरण, कीर्तण और भजन पर अधिक बल दिया है। वलि–विधान, व्रत,

उपवास का खण्डन किया है। नाम स्मरण से ही जीव को इस संसार से मुक्ति मिल सकती है। आपने कहा है–

"बोलहू राम नामेसे मुकुति निदाना,
बुलिते एक, सुनिते शत नितरे,
नाम धरम बिपरीत।"

(बरगीत, मुकुर–27)

अर्थात– हे बान्धव, राम नाम के बिना दूसरा कुछ भी नहीं है। बाकी सब तो दिखावा है। राम नाम ही एकमात्र मुक्ति का उपाय है। इसलिए सब राम नाम का स्मरण करो। राम नाम के विपरीत बाकी सब मिथ्या है।

फिर आपना भागवत में लिखा है–

"यद्यपि भक्ति नवबिधि माधवर
श्रवण कीर्तण आतो महा श्रेष्ठतर।।"

अर्थात– भक्ति नौ प्रकार की है जिसे नवधा भक्ति कहा जाता है। और इसी नवधा भक्ति के अन्तर्गत कीर्तण एवं नाम सम्रण ही श्रेष्ठ एवं प्रमुख है।

आपने फिर कीर्तण में नाम स्मरण की महिमा को इस प्रकार प्रकट की है–

"नभजोहो सुख भोग नलागे मुकुति।
तोम्हार चरणे मात्र थाकोक भकति।।"

अर्थात– भक्ति और कीर्तण के अभाव में ज्ञान, कर्म, जप–तप, तीर्थाटन इत्यादि सब व्यर्थ है। नाम–स्मरण ही मुक्ति का एकमात्र उपाय है। इसलीए है प्रभु मेरा मन हमेशा तुम्हारे ही चरणों में रमा रहे और मुँह में तुम्हारा ही नाम स्मरण अविरत चलता रहे।

ठीक उसी प्रकार नानक देव ने कहा है कि हम इस अगोचर के साथ तादात्म स्थापित कर सकते है। उठते–बैठते, खाते–पीते, सोते–जागते प्रभु का नाम स्मरण करते रहना चाहिए। जो नाम स्मरण नहीं करते उनका जीना ही व्यर्थ है। उसका नाम लेकर ही भव–सागर पार किया जा सकता है और नरक से बच सकते है। जैसे–

"नाओं तेरा निरंकार है,
नाओं लाइएँ नरक न जाइऐ।
नाओं लइऐ ज तरूंदा।।"

गुरु नानक देव ने फिर नाम स्मरण पर, अजपा–जप पर महत्व देते हुऐ कहा है कि–

"सबदै का निबेड़ा सुणि तू अ बिन नै जग न होई।
नामे राते अनदिनु माते नामै ते सुखु होई।।
नामै ही ते सभु परगटु हौवै नामे सोझी पाई।
बिनु नावै भैरव करहि बहुतेरे सचौ आपि खुआई।।
सतिगुरू ते नामु पाईए अउधू जोग-जुगति ता हो।
करि विचारू मनि देखहु नानक बिन नावै मुकति ता होई।।"

(रामकलि, सिद्धगोष्ठी–72, महला–1)

अर्थात– इस सारे संसार में हरि नाम के जप के बिना कोई योग साधना नहीं है। प्रभु के नाम का स्मरण

ही सच्चा योग साधना है। जो व्यक्ति प्रभु नाम स्मरण में अनुरक्त रहता है, प्रभु के नाम जप करने में ही सुख अनुभव करता है वही योगी है, प्रकृत भक्त है। 'नाम' से ही इस अनंत संसार का रहस्य प्रकट होता है, नाम से ही बुद्धि प्राप्त होती है। जो लोग अपने भीतर से 'नाम' को भूला देते है वे सत्य से कोशों दूर चले जाते है। उनको हरि की प्राप्ति नहीं होती। गुरु नानक कहते है कि सति गुरु से ही नाम की प्राप्ति होत है। हरि नाम के स्मरण बिना मक्ति संभव नहीं है।

(ज) रहस्य भावना एवं संसार की अनित्यता :-

रहस्य भावना एवं संसार की अनित्यता पर संत शंकरदेव ने कहा है कि संसार क्षणभंगुर है। माया का जाल है। जहाँ हम वृथा पड़कर आपने मनुष्य रूपी जीवन को नष्ट करते है। जबकि मनुष्य जन्म दुर्लभ है, इसलिए उसे वृथा गवाना उचित नहीं है। जैसे–

"कमने रमया मन बिछुड़ि रहु।
वृथा मोहे भुलावे।
राम चरण चिंत चिंतक
मृत्यु तरण उपाय।"

(बरगीत मुकुर– राग–गौरी, पृ–37)

फिर आपने कहा है–

"अथिर धन जन जीवन अथिर एहो संसार।
पुत्र परिवार सवहि असार करवो वैहरि सार।।"

(राग–केदार, बरगीत, मुकुर, पृ.सं.– 09)

अर्थात– जीवन–यौवन, धन–ऐश्वर्य, मान–मर्यदा सब अस्थिर है, क्षणभंगुर है। पुत्र–परिवार, संसार–घर भी सारहीन, अर्थहीन है। यहाँ एकमात्र सत्य है भगवान, परमईश्वर। वही स्थायी है। अतः उन्हीं के चरणों में अपना मन स्थिर करके रखना चाहिए।

गुरु नानक ने कहा है कि यह संसार एक माया है। जहाँ माया के बंधन में पड़कर जीव को नाना कष्टों का सामना करना पड़ता है। मनुष्य जन्म मरण के फेरे में पड़कर भटकता रहता है। जैसे–

"मनमुकि सोही ना पवे
बीछुड़ी चोटा खाइ।"

(गुरु ग्रंथ साहिब, पृ.सं.– 60)

आपके अनुसार प्रकृत भक्त परम ज्योति को पहचानते है और मायाग्रस्त जीव अंधकार में भटकते रहते है। क्योंकि माया उसके हृदय में वास करता है। जैसे–

"मनमखि मड़ माइआ चित वासु।"

(गुरु ग्रंथ साहिब, पृ.सं. 22)

(झ) रोढ़ीयों-बाह्याडम्बरों का खण्डन :-

शंकरदेव हो या गुरु नानक प्रायः सभी संतों ने रोढ़ीयों एवं वाह्याडम्बरों का खण्डन किया है। हिन्दूओं की मूर्ति पूजा, बलि–विधान, व्रत, मुसलमानों की रोजा–नामाज आदि का डटकर विरोध किया है। इसलिए श्रीमंत

शंकरदेव ने कहा है :–

"अन्य देवी देव नकरिवा सेव
नखाईबा प्रसाद तार।
मुर्तिकों नाचाइबा गृहको नपशिवा
भक्ति होइब व्यभिचार।"

(भागवत, अष्टम स्कन्ध)

अर्थात– देवी–देवताओं की सेवा या पूजा नहीं करनी चाहिए। उनका प्रसाद भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। नहीं तो भक्ति व्यभिचार में बदल जायेगा। फिर आपने कहा है–

"भैरबक पूजे जिटो मनष्यक मारि,
डाइनी हौया मनष्यक खाय जिटो मारि।
अन्तकाले राक्षसे रूधिर पिये तार,
करे किल बुके हानिया कुठार।"

(भागवत, अजामिल उपाख्यान)

अर्थात– मनुष्य को मारकर भैरी देवी की पूजा करने वाला भी एक प्रकार का राक्षस ही है। मृत्यू के बाद राक्षस गण उसका खुन पीते है और कूल्हाड़ी से हृदय को टुकड़े टुकड़े करते है।

ठीक उसी प्रकार गुरु नानक जी अपनी वाणी में बाहरी आचारों और आडम्बरों का खुलकर खण्डन का है। साथ ही समाज एवं जनसाधारण को इन बेकार बातों से एवं परमात्माओं से दूर रहने को कहा है :–

"मूजि सिला तीरथ बनवासा
भरमत डोलत भए उदासा
मनि मैले सूचा किउ होई
साचि मिलै पाव पति सोइ।"

(गुरु ग्रंथ साहिब, पृ.सं. 686)

आपने फिर लिखा है कि तीर्थ स्थान में स्नान करने से मनुष्य को जितना पुण्य मिलता है उससे अधिक पुण्य मनुष्य को गुरु के दर्शन से प्राप्त होता है। जैसे–

"अठसठि तीरथ मजना
गुर दरसु पशपति होई।"

(गुरु ग्रंथ साहिब, पृ.सं. 597)

उपसंहार :–

संत श्रीमंत शंकरदेव और गुरु नानक देव दोनों ही अलौकिक व्यक्तित्व के धनी थे। दोनों व्यक्तियों के आध्यात्मिक दर्शन ने नवीन समाज की संरचना की है। मानव के जीवन में सेवा की भावना, प्रेंम, शांति, श्रृंखला, सदभाव आदि स्थापन हेतु नवीन दृष्टि प्रदान की है। श्रीमंत शंकरदेव और गुरु नानक दोनों ही जगत गुरु और लोकनायक है।

आप दोनों संतों के आदर्श एवं प्रेरणा से समाज को व्यक्ति को एक नयी दिशा मिली। समाज में व्याप्त

रूढ़ी–वाह्याडम्बर, अंधविश्वास, भेदभाव, ऊंच–नीच की भावना, कट्टरता आदि से लोगों को मुक्ति मिला। सहज–सरल भक्ति की साधना पद्धति से किस प्रकार लोगों को मुक्ति का मार्ग मिल सकता है उस सही मार्ग का आप दोनों महान ज्ञानी ने दिशा दिखलाया। आप दोनों ही विलक्षण समत्तयवादी दर्शण के अधिकारी थे। बाहरी आडम्बरों से हटकर एक उत्कृष्ट समाज की रचना, सहज धर्म पद्धति का प्रचार, सही मानव का निर्माण करने में आप दोनों काफी हद तक सफल रहे। वैष्णव धर्म और सिख धर्म के इसी आदर्श को समाज और जनमानस में फैलानी ही हम सभी का उद्देश्य होना चाहिए।

संदर्भ/आधार ग्रंथ :-

1. कीर्तण, श्रीमंत शंकरदेव, ज्योति प्रकाशन, सम्पादक– यतीन्द्र नाथ गौस्वामी।
2. बरगीत मुकुर, सम्पादक– श्री गोलाप महंत, श्रीं शंकरदेव संघ 1999, शराईघाट फोटो ताइपर, गुवाहाटी।
3. श्रीमंत शंकरदे– डॉ. संजीव कुमार बरकाकती, आँक–बाँक प्रकाशन, 2020, आर.जि. बरुवा रोड, गुवाहाटी।
4. अर्थनैतिक संस्कारक श्रीमंत शंकरदेव राजीव दत्त– वेदकण्ड, जोरहाट– 2023, राजगढ़ रोड, गुवाहाटी।
5. नामधर्म, पत्रिका, श्रीमंत शंकरदेव संघ, 2012
6. आकाशी गंगा, स्मृति ग्रंथ, श्रीमंत शंकरदेव संघ, 2006
7. गुरु नानक देव– नरेन्द्र पाठक, प्रकाशक काल– 2015, एस. एन. प्रिंटर्स, नई दिल्ली।
8. श्री गुरु नानक देवजी– डा. कुलदीप चंद अग्निहोत्री, प्रकाशन वर्ष– 2019, प्रकाशक–प्रभात पेपरबैक्स।
9. नानक देव, सम्पादक– रत्न सिंह जग्गी। गुरु नानक रचनावली, पटियाला, भाषा विभाग, पंजाब 1970
10. नानक वाणी, जयराम मिश्र, प्रयागराज, लोक भारती प्रकाशन, 2006

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 224-229

'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक में व्यक्त सामाजिक सरोकार

डॉ. प्रकाश अठावले
कर्मवीर भाऊराव पाटील कॉलेज, उरून–इस्लामपुर।

सारांश :–

'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक में लेखिका ने बिगड़ी हुई शासन व्यवस्था व सरकारी व्यवस्था में फैली भ्रष्टता, अव्यवस्था या अराजकता पर तीखा व्यंग किया है. आजादी के बाद पनपे अवसरवाद, भ्रष्टाचार, चारित्रिक पतन, घूसखोरी, कालाबाजारी, बेरोजगारी, भ्रष्ट शासन तंत्र, नौकरशाही, लालफीताशाही, डॉक्टरों की मनमानी, पाश्चात्त्य संस्कृति का अंधानुकरण, आर्थिक दबाव जैसी समस्याओं का यथार्थ चित्रण किया गया है। प्रस्तुत नाटक का नायक सेवानिवृत्त क्लर्क अपनी पेंशन के इंतजार में सरकारी तंत्र की कुव्यवस्था से जो मानसिक, आर्थिक एवं शारीरिक परेशानियाँ उठाता है इसका अत्यंत मार्मिक चित्रण नाटक में किया है। 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक का व्यंग यह है कि दिल्ली ही ऊँचा सुनने लगी तो आम आदमी अपनी भोगी हुई पीड़ा को कहाँ जा कर सुनाएगा।

बीज शब्द :– लापरवाही, भ्रष्ट प्रशासन व्यवस्था, पेंशन, सामाजिक सरोकार।

प्रस्तावना :–

साहित्य का साधन और साध्य समाज ही है। हर युग में साहित्य समाज के हितचिंतन और चिंताओं को समझने का प्रतिबिंबन रहा है। समाज की प्रगति भी साहित्याश्रित है। सामाजिक मूल्यों की सुरक्षा, समाज सुधार, मानव कल्याण, शोषणमुक्त समाज का गठन समाज की प्रगति के अनिवार्य तत्व हैं। युगचेतना संपन्न साहित्यकार समाज दृष्टा और भोक्ता होने के कारण समाज के विभिन्न पहलुओं को परखकर, समाज की हर धड़कन को संजोकर उसे अपनी कल्पना के सहारे समाज के उन्नयन के लिए प्रदान करता है। जिसके जरिए जीवन और समाज को एक नई दिशा और गति मिलती है।

विविध साहित्यिक विधाओं में नाटक का विशेष महत्व है। नाटक और समाज का संबंध अत्यंत निकट और गहरा रहा है। नाटक को समाज की प्राकृतिक प्रतिकृति माना जाता है। समाज के विविध स्तरीय परिवेश, बदलते सामाजिक यथार्थ और जीवन मूल्यों को उजागर कर जनमानस को आंदोलित करना, समाज को सोचने के लिए प्रेरित करना व उसे उचित दिशा–दृष्टि देना ही नाट्य साहित्य का सामाजिक सरोकार है।

हिंदी के लगभग सौ वर्ष के नाट्य साहित्य के इतिहास में (1850–1950) श्रीमती लाली देवी का एक मात्र

नाम नाट्य लेखिका के रूप में उपलब्ध है। उसके बाद अनुरूपा देवी, कुटुम प्यारी देवी सक्सेना, ताराप्रसाद वर्मा, शिवकुमारी देवी, शारदादेवी मिश्र आदि के नाम आते हैं। स्वतंत्रता के बाद हिंदी नाट्य साहित्य को समृद्ध करने वाली महिला नाटककारों में कंचनलता, सब्बरवाल, रामकुमारी चौहान, डॉ. मिथलेशकुमारी मिश्र, विमला रैना, मन्नू भण्डारी, कंथा जैन, मृदुला गर्ग, प्रतिभा अग्रवाल, शीला भाटिया, कुसुम कुमार, शांती मेहरोत्रा, मृणाल पांडे, त्रिपुरारी शर्मा, आशा वर्मा, डॉ. सरोज बिसारिया, आयेशा अहम्मद, डॉ. मधु धवन, उषा गांगुली, मीराकांत, विभा रानी, नादिरा जहीर बब्बर आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उनके नाटकों में स्त्री और उससे जुड़ी अनेक समस्याएँ उजागर हुई हैं साथ ही बदलते पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक व सांस्कृतिक मूल्य भी अभिव्यक्ति पाते हैं। यही उनका युगबोध और सामाजिक दायित्व है। हिंदी महिला नाटककारों में डॉ. कुसुम कुमार का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है।

कुसुम कुमार बहुमुखी प्रतिभा की स्वामिनी है। उन्होंने दर्जनों मौलिक व सशक्त रचनाओं से हिंदी साहित्य भांडार को समृद्ध कर दिया है। कुसुम कुमार का जन्म एक क्षत्रिय परिवार में सनातनी वातावरण में 5 ऑगस्ट, 1939 को दिल्ली में हुआ। उन्होने 'हिंदी नाट्य चिंतन' नामक अपने शोध प्रबंध को ही पुस्तक रूप में प्रकाशित कर साहित्य सृजन का श्रीगणेश किया। उनके साहित्य सृजन का यह सिलसिला आज तक चल रहा है। वे एक सक्रिय नाटककार होने के साथ–साथ उपन्यास, कविता, एकांकी, नुक्कड़ नाटक अनुवाद आदि के क्षेत्र में भी वे सक्रिय रही है। कुसुम कुमार ने आठ मौलिक नाटकों का लेखन किया हैं। जिसमें 'ओम क्रांति–क्रांति' (1979), 'सुनो सेफाली' (1979), 'संस्कार को नमस्कार' (1983), 'रावण लीला' (1983), 'पवन चतुर्वेदी की डायरी' (1986), 'लश्कर चौक' (1992), और 'प्रश्न काल', 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' (1982), और 'चूहा' उनका लघु नाटक है। उन्होंने वसंत कानेटकर, जयवंत दलवी, विजय तेंदुलकर जैसे प्रसिद्ध मराठी नाटककारों के नाटकों का हिंदी में अनुवाद किया है। कुसुम कुमार की रचनाओं का अनेक दक्षिण भारतीय भाषाओं के साथ पंजाबी, मराठी, उड़िया, काश्मीरी और अंग्रेजी में अनुवाद भी हुआ हैं।

कुसुम कुमार ने "दिल्ली ऊँचा सुनती है के माध्यम से समूचे देश में व्याप्त नौकरशाही, लालफीताशाही और भ्रष्टाचार को अत्याधिक सबल ढंग से उजागर किया है।" (दिल्ली ऊँचा सुनती है– मल पृष्ठ) लेखिका ने माधोसिंह के माध्यम से आज की कार्यालयीन व्यवस्था के शिकार बने आम आदमी की व्यथा का चित्रण करते हुए सामान्य आदमी का जीवन संघर्ष प्रस्तुत किया है। लेखिका ने प्रस्तुत नाटक में चित्रित समस्याओं में मध्यम से सामाजिक सरोकार पर प्रकाश डाला है जैसे :–

भ्रष्ट नौकरशाही की समस्या :-

'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक में कुसुम कुमार ने सरकारी कार्यालय में भ्रष्ट नौकरशाही से त्रस्त आम आदमी की व्यस्था का चित्रण किया है। नाटक का प्रमुख पात्र माधो सिंह वित्त मंत्रालय से 36 साल की सेवा करके सेवानिवृत्त हुए हैं। पर उन्हें सेवानिवृत्ति के छ महीने बाद मिलनेवाली पेंशन अचानक बंद हो जाती है। पेंशन के लिए माधोसिंह को हर जगह भटकना पड़ता है। पेंशन कार्यालय में जाने के बाद उन्हें कर्मचारी से पता चलता है कि "माधोसिंह नाम के आदमी की तो हमारे रेकॉर्ड डेथ हो चुकी है..." (दिल्ली ऊँचा सुनती है– पृष्ठ–43) इसका मतलब सरकारी कार्यालय के दफ्तर अनुसार छः महिने पहले ही उनकी मृत्यु हो चुकी है। माधोसिंह अब खुद को जीवित होने का प्रमाण पत्र जुटाने में लग जाते हैं। इन सारे प्रयासो में उन्हें कई मुश्किलों का

सामना करना पड़ता है। खुद को जीवित घोषित करने के लिए माधोसिंह को सरकारी कार्यालय, अस्पताल, डॉक्टर, मंत्री आदि के पास बार–बार चक्कर लगाने पड़ते है। फिर भी उन्हें स्वयं का जीवित होने का प्रमाणपत्र नहीं मिलता। पेंशन के इस जद्दोजहद का परिणाम माधोसिंह पर हो जाता है और वे मानसिक तनाव में दम तोड़ते है। माधोसिंह के मृत्यु पश्चात् डाकिया उनकी पेंशन मंजूरी का पत्र लाता है। इस प्रकार कुसुम कुमार ने सरकारी कार्यालय से लेकर मंत्रियों तक भ्रष्टाचार पर टिकी हुई व्यवस्था का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

आर्थिक समस्या :-

भारत स्वतंत्र होकर 75 साल गुजर गये है फिर भी आम आदमी दिन–ब–दिन आर्थिक समस्यां से ग्रस्त बनता जा रहा है। 'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक का माधोसिंह भारत सरकार के वित्त मंत्रालय से 36 साल की प्रमाणिक सेवा कर निवृत्त हुए है। नौकरी करते वक्त अर्थाभाव के कारण दफ्तर हर रोज साइकिल से आते–जाते थे इसकी जानकारी देते हुए लिखते है। "छत्तीस साल अर्थ–मंत्रालय की क्लर्की की और छत्तीस साल ही घर से दफ्तर, दफ्तर से घर, रोज बीस मिल की दूरी साइकिल की तो ऐसी–तैसी हुई!" (पृष्ठ–18) उन्होंने अपनी नौकरी बड़ी प्रामाणिकता से की है। वेतन अतिरिक्त ऊपरी कमाई के बारे में कभी सोचा भी नहीं। माधोसिंह की पत्नी कमला निवृत्ति के बाद भी दिल्ली में ही रहना चाहती है मगर माधोसिहं महानगर में पेंशन के पैसे पर गुजारा नहीं होगा ऐसा सोचकर अपने पैतृक गाँव आकर शेष जिंदगी बिताने का निर्णय लेते हैं। माधोसिंह गाँव में अपने एक परिचित मगनलाल नामक व्यक्ति का घर किराए पर लेते हैं।

माधोसिंह की सेवा निवृत्ति के छः महीने बाद पेंशन की अदायगी बंद हो जाती है। इससे उनकी आर्थिक स्थिति अधिक गंभीर बनने लगती है। घर में उनकी पत्नी, बेटी और वे कुल तीन सदस्य हैं। फिर भी उनका खर्च चलाना मुश्किल हो जाता है। माधोसिंह की बेटी नीति आगरा जाने की इच्छा व्यक्त करती है लेकिन पैसों आर्थाभाव के कारण पिता जी उसकी इच्छा पूरी नहीं कर पाते। उनके घर का मालिक मगनलाल माधोसिंह की हालात देखकर उन्हें कही बार पैसे की मदद करता है, फिर भी दिन–ब–दिन उनकी आर्थिक स्थिति अधिक गंभीर बनने लगती है। कभी–कभी घर में चूल्हा जलाना भी मुश्किल हो जाता है। इतना ही नहीं नीति का इलाज सही समय पर न होने से नीति जहर खाकर अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर देती है। इस प्रकार आर्थिक समस्या से पीड़ित माधोसिंह का चित्रण किया गया है।

राजनीतिक भ्रष्टाचार :-

भ्रष्ट व्यवस्था के कारण देश का आम आदमी किस प्रकार व्यथित होता है। इसका चित्रण प्रस्तुत नाटक में किया है। माधोसिंह की पेंशन छः महीने से बंद हो जाने पर पूछताछ करने के लिए दफ्तर जाने पर वहां के कर्मचारी की मानसिकता का चित्रण किया है। मिस्टर ए कहता है– "यहाँ साला कोई आकर कुछ पेश करें तब ना!... रिश्वत मिलेगी और यहाँ? हुंह! भूखे–नंगों का दप्तर है यह... सब कानी कौड़ी के मोहताज साले... खुद पेंशन पर गुजरा करने वाले! उनसे रिश्वत मिलेगी? भूल जा। डी.आर. भूल जा! ... यहाँ तो जहान भर के सठियाए लोग।.. पट्ठे बाप का दप्तर समझकर चले आएंगे!" (पृष्ठ– 33)

माधोसिंह पेंशन के कारण बहुत चिंतित है। यह देखकर उनका मित्र जो उनका मकान मालिक भी है उन्हें अपने परिचित गृहमंत्री के पास ले जाता है पर वहां गृहमंत्री भी काम करने में असफलता दिखाते हुए कहते है– "तुम लोग बहुत देर से आए हो मेरे पास! महीने भर पहले आए होते तो दो दिन में तुम्हारा काम हो सकता था।

एक जमाना था, पर्लियामेंट में हमारी पार्टी को मैजोरिटी थी... स्याह करें, सफेद करें, सब चलता था! अब वह बात नहीं रही... अर्थमंत्री दूसरी पार्टी का आदमी है... मिजाज का बेहद अक्खड़... तुम्हारा केस फैसले के लिए अंत में उसी के पास जाएगा या फिर अर्थ सचिव के पास जा सकता है... मैंने तुम्हारे साथ कुछ रियायत करने को कहा तो वह जान बूझकर कुछ उलटा–सीधा फैसला लेंगे..." (दिल्ली ऊँचा सुनती है– पृष्ठ– 85) यहाँ मंत्री महोदय स्पष्ट कहते मेरी पार्टी पार्लिमेंट में नहीं है, इसलिए मैं आपका काम नहीं कर सकता। चाहे तो मैं पार्लिमेंट के मंत्री के पास एक चिठ्ठी दे सकता हूँ। माधोसिंह जब कहते है की मेरा केस एकदम जैनुइन है! सीधा साफ है सर! तब मंत्री महोदय कहते है – "हम यह काम जरुर कर देते! लेकिन तब जब कि तुम्हारा केस फ्राड होता। फ्रोड केस के लिए फ्रोड साधन अपना लिए जाते हैं...आपका केस जैनुइन है, इसलिए ऊपर से नीचे तक हर तथ्य रेकॉर्डेड है... अब कुछ नहीं हो सकता ... सच्चाई को अपनी रफ्तार से चलने दीजिए– कुछ हो गया आपका तो ठीक, नहीं तो..." (पृष्ठ– 85) इसका मतलब माधोसिंह के काम में सच्चाई है, इसलिए मंत्री महोदय कुछ नहीं कर सकते। अगर केस फ्रॅंड होता तो जरूर कुछ ना कुछ कर देते, पर आपके केस में सब सत्य लिखा है। सत्य की अपनी रफ्तार होती है उसी रफ्तार से काम होगा। इतना ही नहीं, माधोसिंह के चिठ्ठी के बदले वहां मगन से अपनी मालिश करवाना चाहता है। मगन को मंत्री की यह सब बातें सुनकर बहुत गुस्सा आता है पर वह मंत्री होने के कारण कुछ नहीं बोल सकता।

आज देश की भ्रष्ट व्यवस्था में असत्य को सत्य करार देना बड़ा आसान हुआ है, पर सत्य को सत्य बनाना बड़ा ही कठिन हो गया है। माधोसिंह जैसे बहुत सारे आम आदमी की यही विडंबना है। वह राज्य व्यवस्था से पीड़ित होकर भी कुछ नहीं कर सकता।

सरकारी अस्पताल में भ्रष्ट वैद्यकीय सेवा :-

प्रशासन के सारे क्षेत्र में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। " स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सत्ताधारियो की स्वार्थपरता, समाज में धन के बढ़ते प्रभाव, सामाजिक–नैतिक मूल्य विघटन जैसे कारणों ने प्रशासनिक भ्रष्टाचार को और भी बढ़ावा दिया। आज स्थिति यह हो गई है कि प्रशासन के पायदान पर स्थित क्लर्क से लेकर शिखर पर विराजमान सचिव, मुख्य सचिव तक सभी भ्रष्टाचार के आकंठ डूबे दिखाई पड़ते हैं। इस त्रासद स्थिति ने सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, नैतिक मूल्यों को बुरी तरह झकझोरा है। लेखिका ने प्रस्तुत नाटक में प्रशासन के विभिन्न अंगों में व्याप्त रिश्वतखोरी, कामचोरी का यथार्थ वर्णन किया है।

माधोसिंह सेवानिवृत्त होने के बाद पेंशन मिलना बंद हो जाती है। पेन्शन के ऑफिस में ऑफिस के रिकॉर्ड में माधोसिंह को मृत घोषित किया है। यदि पेंशन जारी होनी है, तो उन्हें अपने जीवित होने का प्रमाण पत्र ले आना होगा। माधोसिंह इस बात को निपटाने के लिए प्रमाण पत्र बनवाने में लग जाते हैं। वह अपने एक परिचित डॉक्टर के पास चले जाते हैं। उनसे कहते है– "सरकारी फाइलों में मेरी मौत हो चुकी है। पेंशन विभाग वालों के फैसले के मुताबिक मैं अब जिन्दा नहीं हूँ।" (पृष्ठ–48) पूरा मामला सुनने पर परिचित डॉक्टर भी उन्हें इस प्रकार का प्रमाण पत्र देने में असमर्थता व्यक्त करते हुए कहते है– "नहीं माधोसिंह ...ऐसा सर्टिफिकेट मैंने आज तक किसी को दिया नहीं... मुश्किल है...यह सर्टिफिकेट आपको देने से कोई बड़ा बखेड़ा मुझ पर खड़ा हो गया तो?" (पृष्ठ–48) इसका मतलब सत्य को सत्य कहने का धाडस डॉक्टर में दिखाई नहीं देता वह अपनी जिम्मेदारी से पलायन करते दिखाई देता है। डॉक्टर सरकारी झमेले में पढ़ना नहीं चाहता। इसलिए वह माधोसिंह

को टाल देता है। परिचित डॉक्टर के पास चक्कर काटने पर डॉक्टर उन्हें सरकारी अस्पताल भेज देता है। सरकारी अस्पताल के डॉक्टर से प्रमाण पत्र बनवाने की सलाह देता है।

माधोसिंह अब सरकारी अस्पताल जाते हैं। वहां लंबी कतार लगी हुई है। अस्पताल में डॉक्टर पहले से ही देर से आते हैं और जब माधोसिंह का नंबर आता है तब लंच टाईम का बहाना करके चले जाते हैं। दूसरे दिन सरकारी अस्पताल में लाइन में ही खड़े होकर दिन बीत जाता है। उनके पास रिश्वत और सिफारिश का अभाव है। घंटो प्रतीक्षा के काम न होने घर आकर पत्नी से कहते है– "एक बार मरकर फिर से जिन्दा होना इतना आसान नहीं होता... और फिर इस जमाने में सिर्फ साँस लेने का मतलब जिन्दा रहना थोड़े ही है। पैसा चाहिए पैसा। पैसा आदमी को मारता भी है. पैसा जिलाता भी है। (पृष्ठ क्र.)

एक कर्मचारी तो उन्हें सिर्फ एप्लीकेशन लिखने के लिए कहता है। माधोसिंह कतार में ही खड़े रहते हैं। वहां की लेडी डॉक्टर पहचान वाले मरीज को पहला नंबर दिया जाता है जो लास्ट नंबर पर खड़ा था। इस सन्दर्भ में एक युवक कहता है– "अरे वा! हरिओम कौन है। लाइन में सबसे पहले आके लगे हम और यह हरिओम कहाँ से धमक पड़े?" (पृष्ठ– 57)

बहुत दिनों तक अस्पताल के चक्कर काटते हुए, लंबी कतारों में खड़े होने के बाद उनकी मुलाकात डॉक्टर से हो जाती है। पर यहाँ प्रमाण पत्र हात में नहीं मिलता। पोस्ट से प्रमाण पत्र मिल जायेगा ऐसा उन्हें कहा जाता है। बड़ी इंतजार के बाद पोस्ट से प्रमाण पत्र प्राप्त होता है। लेकिन उस प्रमाण पत्र पर माधोसिंह की जगह माधव सिंह इस प्रकार गलत नाम लिखा जाता है। अब फिर से नाम में सुधार के लिये न जाने कितनी दिल्ली के चक्कर लगाने पड़ेंगे? ऐसा सोच कर वह फिर निराश हो जाते हैं। पर उनका दोस्त मगनलाल उन्हें धीरज देता है और अर्ज लिखकर स्वयं दिल्ली जाने के लिए तैयार हो जाता है। इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में आम आदमी को वैद्यकीय सेवा लेते वक्त पसीना पड़ता है, अस्पताल के चक्कर काटते काटते वह स्वयं बीमार पड़ जाते हैं।

अक्सर हम देखते है कि सरकारी अस्पताल भी भ्रष्टाचारी ठेकेदारों के इशारे पर चलते है। यहाँ की कीमती दवाएँ सरकार के चाचा–भतीजे हड़प ले जाते हैं। यहाँ आम आदमी के लिए सुरक्षित मुक्त की दवाएँ कहाँ? एक जिंदा व्यक्ति के जिंदा रहने का प्रमाण पत्र देने के लिए भी इन राष्ट्रीय यमदूतों की सिफारिशों और रिश्वत की जरुरत है। नहीं तो माधोसिंह के समान कई दिन के परिश्रम के बाद निराश होकर लौटना पड़ेगा। सरकारी अस्पतालों में डॉक्टरों की लापरवाही, वक्त पर काम न आना, फोन पर पर्सनल और बेकार बातें करते रहना आदि बातों का चित्रण लेखिका ने सूक्ष्मता से किया है।

परित्तक्या नारी की समस्या :-

भारतीय समाज में विवाह संस्था को बड़ा पवित्र माना जाता है। विवाह के कारण पति–पत्नी जीवन भर साथ निभाने का संकल्प करते हैं। पर कभी–कभी पति–पत्नी के संबंधों में तनाव निर्माण होता है। दोनों अलग हो जाते हैं। पति द्वारा छोड़ी हुई औरत को जीवनभर दुःख उठाना पड़ता है। उसे दर–दर की ठोकरें खाकर जीना पड़ता है। पति द्वारा त्यागी हुई नारी को परित्यक्ता कहा जाता है। प्रस्तुत नाटक में नीति के माध्यम से परित्यक्ता नारी की समस्या चित्रित की है। नीति सुंदर है किन्तु परित्यक्ता होने के कारण वह अधिकांश समय अस्वस्थ व उदास रहती है। उसका सारा जीवन नासूर बनकर रह गया है। नीति के माता–पिता माधोसिंह और

कमला अपनी बेटी से अधिक प्यार करते हैं। परित्यक्ता बेटी नीति की देखभाल न करने तथा आर्थिक दुरावस्था माधोसिंह को हमेशा कचोटती रहती है। उसका दिल बहलाने के लिए पिता माधोसिंह सुबह उसके साथ टहलने के लिए जाते हैं। उसे खुश रखने के लिए, उसकी उदासी दूर करने के लिए कुछ ना कुछ बातें करते रहते हैं। आर्थिक स्थिति ठीक ना होने पर भी नीति की दवा दारू पर खर्च करते हैं। नीति हमेशा इस बात पर बेचैन रहती है कि आर्थिक पराधीनता में दम तोड़ता उसका परिवार कहाँ तक उसकी दवा पर खर्च करेगा। इस प्रकार की दर्दभरी जिंदगी जीना उसे अच्छा नहीं लगता। अपने पिता की परेशानी और स्वयं के दर्द को झेलते–झेलते अंत में वह आत्महत्या कर लेती है। लेखिका ने नीति के उदाहरण से परित्यक्ता नारियां अपने जीवन में किस प्रकार उदास रहती है कभी–कभी अंत में प्राण त्याग कर देती है। इस पर प्रकाश डाला है।

अंत में हम कह सकते है कि 'दिल्ली उंचा सुनती है' यह समस्या प्रधान व्यंग्य नाटक है। इसमें कुसुम कुमार जी ने भारतीय स्वतंत्रता के बाद देश में एक ओर आर्थिक, सामाजिक, औद्योगिक क्षेत्र में विकास के द्वार खुले हैं तो दूसरी ओर देश के सामान्य व्यक्ति का जीवन आजाद भारत के भ्रष्ट राजनेताओं, उच्चपदस्थ अधिकारी, स्वार्थांध नीतियों से प्रभावित हो गया है। जिसे आम आदमी का जीवन दूभर होने लगा है।

निष्कर्ष :-

'दिल्ली ऊँचा सुनती है' नाटक के नायक माधोसिंह के माध्यम से सेवानिवृत्त व्यक्ति की व्यथा को चित्रित किया है। इसमें आज की बिगड़ी हुई शासन व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य किया है। यहाँ महानगर की संस्कृति अपनी समस्त विकृतियों के साथ उपस्थित हुई है। दिल्ली हमेशा ऊँचा ही सुनती है, इसलिए यहाँ आम आदमी की रोदन और संवेदना धीमी पड़ गई है। रिश्वत और सिफारिश ही सरकारी कार्यालयों के ऊर्जा का स्त्रोत बनी है। यहाँ भी राजनीतिक ठेकेदार का हाथ कायम रहा है। मध्यम वर्ग के अवकाश पाप्त माधोसिंह को पेंशन नहीं मिलती क्योंकि प्रशासन की अकर्मण्यता, लापरवाही, कर्मचारियों की मनमानी, उत्तर दायित्व हीनता, मंत्रियों की उदासीनता, बढ़ती रिश्वतखोरी आदि प्रमुखतः कारण है। जिसकी वजह से आम आदमी का जीवन अंत तक संघर्ष रहता है।

संदर्भ :-

1. दिल्ली ऊँचा सुनती है– कुसुम कुमार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, छात्र संस्करण, 2024
2. हिंदी महिला नाट्य लेखन के सामाजिक सरोकार – डॉ. मिनी जोर्ज, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2017

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 230–232

समग्र दृष्टिकोण और शैक्षणिक नींव (एनईपी–2020)

डॉ. कविता शर्मा
सहायक आचार्या, राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ,
शाहपुरा बाग, आमेर रोड, जयपुर, राजस्थान।

सारांश -
शिक्षण एक बहुत ही महान व्यवसाय है जो व्यक्ति के चरित्र, क्षमता और भविष्य को आकार देता है - ए.पी.जे. कला शिक्षा समाज की एक आत्मा की भांति हे। जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जाती हे - जी.के. चेस्टर्टन

इन वाक्यों से हमें मालूम होता है कि शिक्षा हमारे जीवन में कितनी अनमोल है। इससे राष्ट्र की प्रगति और समृद्धि मानव संसाधनों के विकास भी निर्भर करता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में सरकार द्वारा महत्त्वपूर्ण बदलाव एवं चमत्कारी परिवर्तन किये गये है। लेकिन इसे एक व्यवहारिक रूप प्रदान किया जाए ताकि देश को विश्व के समक्ष आदर्श शिक्षा मंडल के रूप में प्रस्तुत किया जा सके ताकि एक श्रेष्ठतर समाज की रचना की जा सके जिससे एक श्रेष्ठ विश्व की रचना हो सके शिक्षा एक सफल, शिक्षित और सम्पन्न समाज की सबसे महत्त्वपूर्ण नींव है। यह हमारे समाज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास और विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है।

प्रस्तावना -
शिक्षा शब्द को देखे तो पता चलता है कि शिक्षा एक संस्कृत शब्द है। जिसका अर्थ है - सीखना या सीख होता है। जबकि अंग्रेजी भाषा में शिक्षा को "एजुकेशन" कहते है। शिक्षा का सही अर्थों में मतलब सीखना होता है। वह सीख चाहे आप अपने माता-पिता से सीखते है। या फिर समाज से या स्कूल तथा कॉलेज या अपने दोस्तों से। जहां कहीं से भी हगें सीखना होता है। वह शिक्षा कहलाती है। शिक्षा से हगें ज्ञान, उचित आचरण तकनीकि दक्षता विद्या आदि को प्राप्त करने की प्रक्रिया को कहते है। इसमें आचरण, तकनीकि दक्षता तथा ज्ञान का समाविष्ट होता है। इसी प्रकार यह कौशलों, व्यापारों या व्यवसायों एवं मानवीय नैतिक और सौन्दर्य विषयक के उत्कर्ष पर केन्द्रित है।

ज्ञान के परिप्रेक्ष्य में विश्व बहुत बड़े-बड़े परिवर्तनों से गुजर रहा जिसमें नई-नई तकनीकि अपनी जगह बना रही है। जिसके डेटा संग्रहण तकनीकि, ब्लॉक चैन सिस्टग गशीन लर्निंग, कृत्रिग बुद्धिगत्ता अपनी जग बना रही है। अर्थात् जो अकुशल कामगार की जगह मशीन ले लेगी वर्तमान विश्व में व्यक्ति को कुशल एवम कौशल की आवश्यकता है इसी वैश्विक परिस्थिति के अनुसार बच्चों को यह ध्यान देने की आवश्यकता है। कि इन्हें जो-जो सिखाया जा रहा है। वह तो सीखे ही और साथ में सतत् सीखते रहने का भी गुण भी विकसित करे।

भारत के पास अगला दशक विश्व गुरू बनने का सुनहरा अवसर प्रदान कर सकता है क्योंकि विश्व में सर्वाधिक युवा जनसंख्या भारत में निवास करती है। युवा जनसंख्या का अभिप्राय कार्य क्षमता अधिक तथा सीखने तथा जानने की अत्यधिक तीव्र प्रवृत्ति शिक्षा के क्षेत्र में भारत प्रयासरत रहा है। आजादी से पहले तथा आजादी के पश्चात् कई कमिटि तथा समितियां बना चुका है। लेकिन शिक्षा के लिए पहली नीति 1968 में इन्द्रा गांधी सरकार के समय लायी तथा द्वितीय शिक्षा नीति 1986 में लागू की गई थी और तीसरी शिक्षा नीति जिसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020 का नाम दिया गया। जिसकी अध्यक्षता कस्तूरीरंगन की जिसमें इन्होंने एनईपी- 2020 का लक्ष्य 2040 तक एक कुशल शिक्षा प्रणाली बनाना है। जिसमें सभी शिक्षार्थियों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि की परवाह किए बिना उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा तक समान पहुंच हो। यह अपने देश की पहली नीति है जिसमें देश के परम्परागत एवं सांस्कृतिक महत्त्व को शामिल करते हुये सतत् विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करना शामिल होगा।

पिछली नीति तथा उसका आधार -

भारत सरकार ने पिछली नीतियां तथा कई समितियां को आधार बनाते हुये कार्य किया जिसमें अब तक सरकार ने तीन शिक्षा नीतियों का योगदान रहा है। जिसमें 1968 इन्द्रा गांधी सरकार के समय प्रथ नीति तथा 1986 में राजीव गांधी सरकार के समय द्वितीय शिक्षा नीति एवमं वर्तमान में कई समितियों को आधार बनाया गया है। जिसमें 19982 (1986 का संशोधित) अधूरे काम को इस नीति के द्वारा पूरा करने का प्रयास किया गया। जिसमें प्राथमिक शिक्षा को आसान एवं वैधानिक आधार प्रदान करने का प्रयास किया गया जिसके परिणामस्वरूप 86वां संविधान संशोधन 2002 को एक संवैधानिक स्थान प्रदान किया गया जो संविधान में अनुच्छेद 21-ए के तहत मौलिक अधिकारों के तहत संरक्षण प्रदान किया गया और उच्च शिक्षा के लिये छात्रवृत्ति प्रदान की जायेगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के आधार सिद्धान्त -

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसे सुखपूर्वक एवं सन्तुलित जीवन बिताने के लिए शिक्षा का सहारा लेना पड़ता है। जिससे अच्छे इंसानों का विकास हो सके तथा जिनके विचार तर्कसंगत हो जो अधिकांश कार्य करने में सहायक हो उस मनुष्य में करूणा दया भाव विचारों में लचीलापन तथा नैतिक मूल्य, रचनात्मक शक्ति जो सभी कार्य अपने संवैधानिक अनुस्थ कर सके ये सब कुछ हासिल करना प्रत्येक शिक्षण संस्थान का लक्ष्य होना चाहिए जिससे मनुष्यों में परस्पर संवाद बना रहे।

मूलभूत सिद्धान्त जो व्यक्ति एवं संस्था दोनों को दिशानिर्देशित कर सकते हैं।

1. चरित्र निर्माण एवं विकास का उद्देश्य - स्पेन्सर ने लिखा "मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता चरित्र है, शिक्षा नहीं" सामाजिक अथवा धार्मिक जीवन में व्यक्ति का चरित्रवान होना आवश्यक है। एक अंग्रेजी विद्धान ने कहा है कि यदि चरित्र चला गया तो सब कुछ खो दिया।

2. प्रत्येक बच्चे की विशिष्ट क्षमताओं की स्वीकृति और उनके विकास हेतु प्रयास करना- अभिभावकों शिक्षकों तथा समाज को छात्र एवं छात्राओं की विशिष्ट क्षमताओं का सर्वांगीण विकास करने पर अत्यधिक जोर दिया जाना चाहिए।

3. बुनियादी या आधार साक्षरता और संख्या ज्ञान को सर्वाधिक प्राथमिकता देना - इससे व्यक्ति को संज्ञानात्मक कौशल सीखने में आसानी हो सकती है। प्रत्येक व्यक्ति को कक्षा 3 तक का तथा आधारभूत ज्ञान लेने में आसानी हो सकता है।

4. लचीलापन - शिक्षा में लचीलापन होना चाहिए छात्र एवं छात्राओं को अपनी प्रतिभा के अनुसार बदलाव का अवसर या मौका प्राप्त होता रहे।

5. अवधारणात्मक समझ पर जोर - रटने की पद्धति नहीं और ना ही परीक्षा के बल्कि भविष्य को ध्यान में रखते हुए शिक्षा पर जोर।

6. रचनात्मक और तार्किक सोच - निर्णय लेने में तार्किकता हो तथा नवाचार को प्रोत्साहन दिया जाये।

7. तकनीकि के उपयोग पर जोर - जो भाषा सम्बन्धी समस्याऐं है उनको दूर करना एवम दिव्यांग बच्चों को ब्रेल लिपी या इससे अच्छे उपयोग में मदद करना।

8. कौशल विकास पर अत्यधिक जोर दिया गया जिससे व्यक्तियों के आपसी संवाद सहयोग सामूहिक कार्य एवं लचीलेपन को बढ़ावा मिले।

9. शैक्षणिक प्रणाली की अखंडता, पारदर्शिता और संसाधन कुशलता ऑडिट और सार्वजनिक प्रकटीकरण पर अत्यधिक बल दिया गया जिससे स्वायत्ता, सुशासन और सशक्तीकरण के माध्यम से नवाचार और आउट ऑफ द बॉक्स विचारों को प्रोत्साहित किया जा सके।

10. भारतीय जड़ों तथा परम्परागत एवं सांस्कृतिक जड़ों को भी समेटते हुये नई शिक्षा नीति का विकास करना क्योंकि भारत की जो पारम्परिक एवं सांस्कृतिक इतिहास गौरवशाली है। जो आधुनिक संस्कृति में जुड़ने के बाद इस शिक्षा नीति को अधिक प्रासंगिक बनाता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का विजन - 2020

इस नीति के अनुसार शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारना एवं भारतीय मूल्यों से युक्त शिक्षा नीति अर्थात् प्रणाली का विकास करना है। जिससे भारत को वैश्विक ज्ञान से समृद्ध किया जा सके ऐसे विषय पाठ्यक्रम में जोड़ा जाये जिससे बदले परिप्रेक्ष्य में नागरिकों की भूमिका बढ़े एवं उनके व्यवहार एवं आचरण में बदलाव आ सके जिससे मनुष्यों के स्थायी विकास और जीवनयापन तथा वैश्विक कल्याण के लिए प्रतिबद्ध हो सके।

स्कूल शिक्षा -

जो पहले10+2 जिसमें3 से 18 वर्षीय पाठ्यक्रम शामिल था जिसे वर्तमान बदलकर 5+3+3+4 के सांचे मेंढाला जायेगा तथा 3 वर्ष के बच्चों को बुनियादी सुविधा तथा देखभाल के लियेआधारभूत ढांचार प्रदान किया जायेगा -

1. प्रथम बाल्यावस्था देखभाल और शिक्षा को जानने तथा सीखने की नींव डाली जायेगी जिससे बच्चोंके मस्तिष्क के साथ-साथ शारीरिक विकास भी हो सके।

2. बुनियादी साक्षरता एवं संख्या ज्ञान: सीखने के लिए तात्का लिक आवश्यकता एवं यक्ति जीवनभर कुछ सीखने की आदत मेंढालने का प्रयास किया जायेगा।

3. ड्रॉपआउट बच्चों की संख्या कम करना और सभी स्तरों पर शिक्षा की सार्वभौमिक पहुँच सुनिश्चित करना इत्यादि।

4. उच्च शिक्षा, बच्चों, दिव्यांगजनों, एवं असाहय एवम् गरीब बच्चों के लिये राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कई प्रावधान किये गये हे जिससे भारतीय शिक्षा व्यवस्था को सुधारा जा सके
जो कि देश के भविष्य निर्माण मेंसाथ निभा सके।

संदर्भ सूची -

1. शिक्षा नीति - 2020 (कुछ संस्तुतियां एवं विमर्श) डॉ. सुधांश पाण्डेय

2. नई शिक्षा नीति 2020 और मेरे विचार जितेन्द्र यादव

3. शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन - साहित्य पब्लिकेशन

4. नेशनल ऐजूकेशन पॉलिसी 2020 द की टू डवेलप इन इण्डिया - डॉ. केशव चन्द्र मण्डल

5. भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020 - डॉ. महात्मा एवं डॉ. चेतना पोख (एक क्रांतिकारी पहल)

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 233–235

पर्यावरण संरक्षण की भावना का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

डॉ मनीष राठौर
प्राचार्य, मोतीलाल दवे टीचर ट्रेनिंग कॉलेज बाँसवाड़ा, राजस्थान।

"पृथ्वी सभी की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त है, लेकिन सभी के लालच को नहीं।"

–महात्मा गांधी

शोध सारांश :–

हमारा भारतवर्ष प्रकृति–पूजन की परंपरा का संवाहक रहा है। वैदिक काल से ही पंचतत्त्वों पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश की उपासना हमारे जीवन का हिस्सा रही है। माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः जैसा भाव हमें प्रकृति से जुड़ाव और संरक्षण का संदेश देता है। बौद्ध और जैन दर्शन में भी प्रकृति के प्रति करुणा और संयम प्रमुख रहे हैं। सम्राट अशोक ने नीतिगत रूप से वन संरक्षण और जीव–जंतुओं की रक्षा को महत्व दिया। वहीं, राजस्थान के बिश्नोई समुदाय द्वारा किया गया खेजड़ली बलिदान पर्यावरणीय चेतना का एक अमर उदाहरण बन गया। स्वतंत्र भारत में चिपको आंदोलन और नर्मदा बचाओ आंदोलन जैसे प्रयासों ने पर्यावरण संरक्षण को जनांदोलन का स्वरूप दिया। संविधान के अनुच्छेद 48A और 51A(g) के माध्यम से यह विषय राज्य और नागरिक दोनों की जिम्मेदारी बन गया। अतः यह स्पष्ट होता है कि पर्यावरण संरक्षण कोई नवीन विचार नहीं, बल्कि हमारी सांस्कृतिक और ऐतिहासिक चेतना का अभिन्न अंग है। आइए, हम अपने अतीत से प्रेरणा लेकर एक हरित और संतुलित भविष्य का निर्माण करें।

भूमिका :–

पर्यावरण संरक्षण आज के युग की एक अनिवार्य आवश्यकता है, लेकिन इसकी भावना मानव इतिहास के शुरुआती चरणों से ही हमारे जीवन का अभिन्न अंग रही है। भारत जैसे देश में जहाँ प्रकृति को ईश्वर का रूप माना गया है, वहाँ पर्यावरण की रक्षा केवल दायित्व नहीं, बल्कि श्रद्धा और भक्ति का विषय रहा है। चाहे वह वैदिक युग हो, बौद्ध और जैन दर्शन, मध्यकालीन परंपराएँ या आधुनिक भारत की प्रकृति के प्रति श्रद्धा और संरक्षण की भावना हर कालखंड में दृष्टिगोचर होती है। प्राचीन काल की प्रकृति उपासना और मानवीय संबंध की धारणा का आरंभ ही प्रकृति के सम्मान के साथ हुआ। वैदिक साहित्य में पंचतत्त्वों धरती, जल, अग्नि, वायु और आकाश की उपासना की परंपरा रही है। इन तत्वों को देवताओं का रूप मानकर यज्ञों में आहुति दी जाती थी।

ऋग्वेद, अथर्ववेद, और अन्य ग्रंथों में पर्यावरणीय संतुलन की आवश्यकता पर बल दिया गया है। माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः जैसी सूक्तियाँ दर्शाती हैं कि मनुष्य ने स्वयं को प्रकृति का संरक्षक माना।

अरण्यानी सूक्त में जंगल की देवी का वर्णन है, जिससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में जंगलों को भी पवित्र माना गया और उनसे छेड़छाड़ निषिद्ध था।

बौद्ध और जैन धर्म में भी अहिंसा का विस्तृत रूप केवल प्राणियों तक सीमित नहीं था, बल्कि वृक्षों, जल स्रोतों, और मिट्टी तक का संरक्षण इसका हिस्सा था। भगवान महावीर और गौतम बुद्ध दोनों ने त्याग और संयम के माध्यम से प्रकृति के साथ तालमेल बैठाने पर जोर दिया। जैन धर्म में 'अपरिग्रह' का सिद्धांत उपभोग की सीमाओं की ओर इशारा करता है, जिससे प्राकृतिक संसाधनों के दोहन को रोका जा सके। राजनीतिक व्यवस्थाओं में पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता मौर्य सम्राट अशोक न केवल एक धर्मनिष्ठ शासक थे, बल्कि पर्यावरण संरक्षण के प्रति भी सजग थे। उनके शिलालेखों में पशु हत्या को नियंत्रित करने, औषधीय पौधों की खेती को बढ़ावा देने, और वृक्षारोपण जैसी नीतियों का उल्लेख है।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी वनों, जल स्त्रोतों, और पशुधन के प्रबंधन हेतु विस्तृत नियम दिए गए हैं। यह दर्शाता है कि प्राचीन काल में पर्यावरण संरक्षण केवल नैतिक दायित्व नहीं था, बल्कि एक सुव्यवस्थित प्रशासनिक जिम्मेदारी भी थी।

लोक संस्कृति में प्रकृति का स्थान भी भारत की विविध सांस्कृतिक परंपराएँ लोकगीत, लोककथाएँ, रीति–रिवाज और पर्व सभी में प्रकृति की गहरी उपस्थिति रही है। सावन के गीतों में वर्षा और हरियाली का स्वागत होता है। त्यौहारों जैसे वट सावित्री, तुलसी विवाह, नागपंचमी आदि में वृक्षों, पौधों और जीवों की पूजा की जाती है। राजस्थान का बिश्नोई समुदाय, जो 15वीं सदी से प्रकृति की रक्षा को धर्म मानता है, एक अनूठा उदाहरण है। अमृता देवी और उनके साथियों ने 1730 ई. में खेजड़ली गाँव में वृक्षों की रक्षा करते हुए अपने प्राण न्यौछावर किए यह बलिदान इतिहास में अमर है।

औपनिवेशिक काल और पर्यावरणीय संकट भी था। ब्रिटिश शासन काल में औद्योगीकरण और रेलवे निर्माण जैसे कार्यों के चलते वनों की बड़े पैमाने पर कटाई हुई। कोयला, खनिज और जंगलों का अंधाधुंध दोहन हुआ। हालांकि इस काल में कुछ आधुनिक वैज्ञानिक सोच भी उभरी, लेकिन भारतीय समाज में पर्यावरणीय संतुलन की पारंपरिक भावना पर गहरा असर पड़ा। फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में परंपरागत ज्ञान और प्राकृतिक संसाधनों के प्रति सम्मान बना रहा।

स्वतंत्रता पश्चात् चेतना का पुनरुत्थान, स्वतंत्र भारत में जैसे–जैसे विकास की रफ्तार बढ़ी, वैसे–वैसे पर्यावरणीय संकट भी सामने आए। परंतु यही समय था जब इतिहास की जड़ों से जुड़ी पर्यावरणीय चेतना ने आंदोलन और नीतियों के माध्यम से पुनः स्वर प्राप्त किया। चिपको आंदोलन (1973) कटाई का विरोध एक ऐतिहासिक क्षण था। यह आंदोलन भले ही आधुनिक परिप्रेक्ष्य में था, लेकिन इसकी जड़ें पारंपरिक श्रद्धा में थीं। नर्मदा बचाओ आंदोलन (1985) मेधा पाटकर और अन्य कार्यकर्ताओं द्वारा नदी, जल, और विस्थापित आदिवासी समाज के अधिकारों की रक्षा हेतु चलाया गया आंदोलन, आधुनिक लोकतांत्रिक माध्यमों से ऐतिहासिक पर्यावरणीय चेतना का स्वरूप बना।

संवैधानिक और विधिक आधार ने भी संरक्षण दिया 1976 के 42वें संविधान संशोधन के तहत अनुच्छेद 48A में राज्य के कर्तव्यों में पर्यावरण, वन, और वन्य जीवों की रक्षा और सुधार को सम्मिलित किया गया। साथ ही, अनुच्छेद 51A(g) नागरिकों को प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा और सुधार के लिए प्रेरित करता है। पर्यावरण

संरक्षण अधिनियम, 1986, जल अधिनियम, वायु अधिनियम आदि ऐसे विधिक उपाय हैं जिनमें ऐतिहासिक चेतना को विधिक रूप में स्थायित्व प्रदान किया गया।

भारतीय साहित्य और पर्यावरण भी पर्यावरण को सहेजने की चर्चा करता रहा है। प्राचीन कवियों और लेखकों ने भी पर्यावरणीय संतुलन को अपनी रचनाओं में स्थान दिया। कालिदास की ऋतुसंहार में ऋतुओं की सुंदरता और पेड़–पौधों की हरियाली का जीवंत वर्णन है। भक्तिकालीन संतों जैसे तुलसीदास, सूरदास, मीरा ने प्रकृति के सौंदर्य को आत्मिक भाव से जोड़ा। ऐसे साहित्य ने समाज में प्रकृति के प्रति सह–अस्तित्व की भावना को और मजबूत किया।

आधुनिक संदर्भ में पारंपरिक भावना की पुनः व्याख्या होता रहा है। आज जब जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और प्राकृतिक आपदाएँ हमारे सामने चुनौतियों के रूप में खड़ी हैं, तब हमारे ऐतिहासिक दृष्टिकोण से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है। सौर ऊर्जा, वर्षा जल संचयन, कचरे का पुर्नचक्रण (Recycling), जैविक खेती आदि आधुनिक उपाय वस्तुतः उसी पारंपरिक सोच के आधुनिक रूप हैं जो संसाधनों के संतुलित प्रयोग की वकालत करती थी।

निष्कर्ष :-

पर्यावरण संरक्षण की भावना भारतवर्ष की सांस्कृतिक चेतना, धार्मिक विश्वासों और ऐतिहासिक परंपराओं में गहराई से अंतर्निहित रही है। यह केवल एक आधुनिक काल की चिंता नहीं, बल्कि वह स्थायी दृष्टिकोण है जिसने मानव और प्रकृति के बीच सामंजस्य बनाए रखने में सहायक भूमिका निभाई है। प्राचीन ग्रंथों से लेकर लोक परंपराओं तक, भारतीय समाज ने पंचतत्त्वों को देवतुल्य मानकर उनका सम्मान किया। वैदिक सूक्तों में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश के प्रति कृतज्ञता की भावना स्पष्ट झलकती है। बौद्ध और जैन दर्शन में संयम, अपरिग्रह और अहिंसा के माध्यम से प्रकृति से जुड़ाव को आध्यात्मिक धरातल पर स्वीकारा गया। पर्यावरण संरक्षण की भावना का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य हमें यह सिखाता है कि प्रकृति से जुड़ाव केवल वैज्ञानिक, राजनीतिक या सामाजिक दायित्व नहीं है यह हमारी चेतना, आस्था और संस्कृति का मूल है। इतिहास हमें दिखाता है कि भारत में पर्यावरणीय चेतना केवल संकट की घड़ी में उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि यह जन्मजात और संस्कारित रही है। आज आवश्यकता है कि हम इस ऐतिहासिक भावना को पुनः जाग्रत करें और उसे नीतियों, शिक्षा, तकनीक और व्यवहार के माध्यम से सजीव बनाएँ। प्रकृति के साथ सहयोग और सह–अस्तित्व की भावना ही आने वाली पीढ़ियों के लिए एक स्थिर और समृद्ध भविष्य का मार्ग प्रशस्त कर सकती है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. भारतीय पारिस्थितिकी और पर्यावरण का इतिहास।
2. सिंह डॉ. बृजेश पर्यावरण विमर्श।
3. प्रो. अजय प्रताप, प्रो. बिंदा परांजपे, प्रो. घनश्याम, भारत का पर्यावरण और जनजातीय इतिहास।

sinha5272@gmail.com

manish11045@gmail.com

M. 9111211376

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 236–239

संत रैदास का जीवन दर्शन एवं लोकप्रचलित जनश्रुतियाँ

डॉ. परवीन वर्मा
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी, शासकीय आदर्श कन्या महाविद्यालय, श्योपुर, मध्यप्रदेश।

रैदास का जीवन-परिचय :-

भक्तिकाल के निर्गुण शाखा के सुप्रसिद्ध कवि कबीरदासजी ने संत शिरोमणि रैदास को 'संतों का संत' कहा हैं।[1] उनका जन्म 1398 ई. में बनारस (काशी) में पिता 'धुरबिनियां' व माता 'राधु' के यहाँ रविवार को हुआ था। इनके बचपन का नाम रविदास था। रैदास जाति परम्परा के अनुसार चमार जाति में जन्मे थे। यह मोची का कार्य करते थे यानि चमड़े के जूते बनाकर अपनी आजीविका चलाते थे। इनकी जाति को लेकर इनके एक पद में कहा गया है, "ऐसी मेरी जाति विख्यात चमार, कहै रैदास चमारा।" एक और पद में इसका नामोलेख इस प्रकार किया है, "ना गर्जना मेरी जाति विख्यात चमार।" इन्होंने किसी भी पाठशाला में शिक्षा प्राप्त नहीं की थी। इनकी शिक्षा और ज्ञान अपनी जीविका के कार्य को करते हुए, साधुओं की संगत, सत्संग आदि से प्राप्त किया हुआ था। भक्ति आन्दोलन को लोकभाषा व बोलियों के माध्यम से आमजन यानि निम्न जन तक ले जाकर 'लोक–जागरण' का कार्य भी उन्होंने किया। इसके साथ ही तत्कालीन समाज में उपेक्षित व वंचित वर्ग की मुक्ति की बात भी इन्होंने बार–बार की है। इन्होंने 'आध्यात्मिक मुक्ति' के स्थान पर 'सामाजिक मुक्ति' पर बल दिया है। यह सामाजिक परिवर्तन लाकर सामाजिक समानता को स्थापित करना चाहते है।

संत रैदास और जनश्रुतियाँ

जन्म व मृत्यु से जुड़ी जनश्रुति :-

इनके जन्मस्थान, मृत्यु स्थान व जन्मवर्ष के संबंध में भी जनश्रुतियाँ है। शुकदेव सिंह अपनी पुस्तक 'गैर अभिजात परम्परा और रैदास' में इनका जन्म स्थान 'माँहुर' (मंडूआड़ीह) जो कि काशी के पश्चिमी परिसर में स्थित है को मानते है, जबकि दूसरा मत इनका जन्मस्थान काशी के दक्षिणी परिसर में स्थित 'सीरगोवर्धनपुर' को मानने वालों का हैं।[2] एक जनश्रुति के अनुसार इनका जन्मवर्ष सन 1377 (माघी पूर्णिमा) और निर्वाण वर्ष 1528 (काशी/चितौड़) स्वीकार करता है। इस अनुसार उनकी कुल आयु 151 वर्ष की हुई। जबकि दूसरी जनश्रुति के अनुसार जिसका समर्थन कँवल भारती अपनी पुस्तक 'संत रैदास : एक विश्लेषण' में बताते है कि इनका जन्म वर्ष 1398 और मृत्यु 1518 मानते हुए कुल आयु 120 की मानते है।[3]

इनके जन्म के समय की एक जनश्रुति यह भी लोक प्रचलित है कि जन्म के बाद इन्होंने दूध नहीं पीया था, लेकिन जब संत रामानंद जोकि बाद में इनके गुरु भी बने उनके आने के बाद ही इन्होंने दूध का पान किया था।

यह संत कबीरदास के समकालीन होने के साथ ही उनके गुरुभाई यानि 'रामानंद जी' के शिष्य भी थे। इनकी पत्नी का नाम 'लोनादेवी' था। इनके पुत्र का नाम विजयदास था। राजस्थानी में इनकी वाणियों को 'पर्ची' कहते है। "इनके 30 से अधिक पद 'गुरुग्रंथ साहिब' में संग्रहीत है।"[4] यह ज्ञानमार्गी शाखा की निर्गुणी शाखा के प्रसिद्ध संत थे। यह निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। निर्गुण यानि निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, कण–कण में विद्यमान परमात्मा में यह विश्वास करते थे। रैदासजी तीर्थ, व्रत, मंदिरों में नृत्य–गान, वनगमन, जप–तप, सिर मुण्डन आदि में विश्वास नहीं करते थे और वर्ण व्यवस्था, जातिप्रथा, पूजा–पाठ, सम्प्रदाय के आधार पर भेदभाव, हिंसा आदि का विरोध किया करते थे।

रैदासजी ने ईश्वर को लेकर होने वाले वाद–विवाद को व्यर्थ और निरर्थक बताया है। वे सभी के परस्पर प्रेमपूर्वक मिल जुलकर रहने की बात कहते है। इन्होंने अपने पदों द्वारा सदाचार, परहित भावना, सद्व्यवहार, विनम्रता तथा शिष्टता जैसे गुणों पर अधिक बल दिया है। अभिमान का त्याग करने पर वे बहुत अधिक बल देते है। जैसे :–

"कह रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सो पावै।
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलक ह्वै चुनि खावै।।"[5]

झाली रानी और मीराबाई से संबंधित जनश्रुति :-

रैदास का भ्रमण क्षेत्र राजस्थान रहा है। एक और जनश्रुति यह भी प्रचलित है कि चितौड़ के राणा 'महाराणा सांगा' की पत्नी 'झाली रानी' जोकि इनकी शिष्या थी, के निमंत्रण पर चितौड़ आये थे।[5]

प्रसिद्ध कृष्णभक्त कवयित्री 'मीराबाई' ने इनको अपना आध्यात्मिक गुरु स्वीकार किया। इसका पता मीराबाई के इस पद से चलता है –

"गुरू मिलिआ संत गुरू रविदास जी, दीन्ही ज्ञान की गुटकी।
मीरा सतगुरू देव की करै वंदा आस।
जिन चेतन आतम कहया धन भगवन रैदास।।"[6]

इनके जीवन से जुड़ी यह जनश्रुति अत्यधिक प्रसिद्ध है कि, रैदास जी मीराबाई के बुलाने पर चितौड़ आये थे। वहाँ उन्होंने 'कुम्भ–श्याम मंदिर' में एक आरती का पाठ गाया, जिसे सुनकर बाहर निकलते ही ब्रहामणों ने उनकी हत्या मीराबाई की उपस्थिति में 1528 में कर दी थी। इसलिए कुछ लोग जनश्रुति अनुसार उनका निर्वाण चितौड़ में भी मानते है। इस हत्या को सहन न करने के कारण मीराबाई ने चितौड़ छोड़ दिया और अपने पीहर मेड़ता चली गई। चितौड़ के 'कुम्भ–श्याम मंदिर' के कोने में रैदास की स्मृति में इनके 'पद चिन्हों' वाली एक छतरी बनी हुई है।

वचनबद्धता से संबंधित जनश्रुति :-

रैदास के जीवन की छोटी–छोटी घटनाओं से समय तथा वचन के पालन संबंधी उनके गुणों के विषय में जानकारी मिलतीं है। यह जनश्रुति लोक जनमानस में बहुत अधिक प्रसिद्ध है कि, एक बार एक पर्व के अवसर पर पड़ोस के लोग गंगा स्नान के लिए जा रहे थे तभी रैदास के शिष्यों में से एक ने उनसे भी चलने का आग्रह किया तो वे बोले "गंगा स्नान के लिए मैं अवश्य चलता किंतु एक व्यक्ति को आज ही जूते बनाकर देने का मैंने वचन दे रखा है। यदि आज मैं जूते नहीं दे सका तो वचन भंग हो जाएगा। गंगा स्नान के लिए जाने पर मन

यहाँ लगा रहेगा तो पुण्य कैसे प्राप्त होगा? मन जो काम करने के लिए अंतःकरण से तैयार हो वही काम करना उचित है। मन सही है तो इस कठोती के जल में ही गंगा स्नान का पुण्य प्राप्त हो सकता है।" इस प्रकार के व्यवहार के बाद से कहावत प्रचलन में आयी कि, "मन चंगा तो कठौती में गंगा"। संत रविदास जोकि स्वभाव से बहुत ही दयालु और दानवीर प्रवृर्ति के थे जब भी किसी को सहायता की आवश्यकता होती थी तो वे बिना संकोच किए लोगों को जूते दान में दे देते थे। संत रैदास दूसरों की सहायता करना अपना धर्म मानते थे और जैसा की उनके दयालु स्वभाव में लोगों की सेवा करना आता है। यदि रास्ते में उनको कहीं कोई साधु–संत मिल जाते थे तो वे उनकी आवभगत और सेवा से कभी भी पीछे नहीं हटते थे।

सदना पीर से संबंधित जनश्रुति :-

संत शिरोमणि रविदास जी का जन्म ऐसे समय में हुआ जब उत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों में तुर्कों का शासन था। अत्याचार, गरीबी, भ्रष्टाचार, जबरन धर्मांतरण, हिंसा, आपसी वैमनस्य आदि का बोलबाला था। उस समय मुस्लिम शासकों द्वारा अधिकांश हिंदुओं को मुस्लिम बनाए जाने का प्रयास किया जाता, जिससे की अधिकांश हिन्दुओं को मुस्लिम बनाया जा सके। संत रैदास जोकि निर्गुण निराकार ब्रह्म की भक्ति का पालन करते हुए अपने द्वारा परिश्रम, सामाजिक एकता एवं साम्प्रादायिक समरसता का अपने पदों के माध्यम से प्रचार–प्रसार करके समाज में व्याप्त बुराइयों पर करारा प्रहार कर दूर करने का प्रयास कर रहे थे। जिस कारण उनकी प्रसिद्धि दिनो–दिन बढ़ रही थी और उनके भक्तों की संख्या निरंतर बढ़ रही थी, जिनमें हर जाति व सम्प्रदाय के भक्त शामिल थे। यह सब देख कर एक प्रसिद्ध मुस्लिम 'सदना पीर' जोकि उनको मुसलमान बनाने आया था। उसका यह सोचना था कि रैदास मुसलमान बन जाते हैं तो उनके लाखों भक्त भी मुस्लिम बन जायेंगे। रैदास को मुस्लिम बनाए जाने के लिए उन पर सदना पीर द्वारा हर तरह का दबाव डाला गया लेकिन संत रैदास तो एक ऐसे संत थे कि उन्हें हिंदू और मुस्लिम से नहीं बल्कि मानवता से मतलब था। सदना पीर को अंत में हार माननी पड़ी, क्योंकि संत रैदासजी ने उनके प्रलोभन, दबाव के आगे झुकने से इंकार तो किया ही उस समय के शासन–प्रशासन के आगे अडिगता, निडरता, निर्भयता, दृढ़ता, साहस आदि गुणों का उदाहरण भी प्रस्तुत किया।

विरक्ति से संबंधित जनश्रुति :-

इनकी विरक्ति के संबंध में एक जनश्रुति प्रचलित है कि, एक बार किसी महात्मा ने उन्हें 'पारस पत्थर' दिया जिसका उपयोग भी उसने बता दिया। पहले तो संत रैदास ने उसे अपने पास रखना अस्वीकार कर दिया किंतु बार–बार आग्रह करने पर उन्होंने उसको रखना स्वीकार कर लिया और अपने छप्पर में स्वयं रख देने के लिए कहा। तैरह दिन के बाद लौट कर जब उक्त साधु ने अपने पारस पत्थर के बारे में पूछा तो संत रैदास का उत्तर था की "महाराज जी जहां आपने रखा था, वहीं से ले लीजिए।" तो साधु महाराज को पारस पत्थर वहीं रखा हुआ मिला जहाँ वह रखकर गये थे। इससे यह ज्ञात होता है कि संत रविदास सीधे–सरल स्वभाव के धनी व्यक्तित्व में से एक थे, उनको किसी भी प्रकार का कोई लोभ–लालच नहीं था।

संदर्भ :-

1. पप्पूसिंह प्रजापत, 'तराइन से पानीपत', रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर, 2020, पृष्ठ–428।
2. डॉ. श्रीप्रकाश शुक्ल, M16 : रविदास 1, e-Pathshala

3. वही।
4. सुभाष चारण व रमाकांत शर्मा, राजस्थान कला एवं संस्कृति, आर,बी.डी.पब्लिकेशन, जयपुर, पृष्ठ–137।
5. m.bharatdiscovery.org
6. पप्पूसिंह प्रजापत, 'तराइन से पानीपत', रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर, 2020, पृष्ठ–428।
7. From m-hindi.webdunia.com.

मोबाइल नंबर– 9179734060
ईमेल : omsai.dr,parveen.verma@gmail.com
khemrajarya10@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 240–242

आंचलिकता और राष्ट्रीयता

प्रो. (डॉ.) विजयकुमार राऊत
अध्यक्ष, पदव्युत्तर हिंदी विभाग एवं अनुसंधान केंद्र,
न्यू आर्टस, कॉमर्स अँण्ड सायन्स कॉलेज, पारनेर (महाराष्ट्र) 414302

आंचलिकता और राष्ट्रीयता, साहित्य और संस्कृति के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं। आंचलिकता राष्ट्रीयता का आधार हो सकती है। जब लोग अपनी अंचल की संस्कृति और विरासत को महत्व देते हैं, तो वे अपने राष्ट्र की संस्कृति और विरासत को भी महत्व देते हैं। आंचलिकता और राष्ट्रीयता एक–दूसरे के पूरक हो सकते हैं। एक मजबूत राष्ट्र वही होता है जिसमें विभिन्न अंचलों की संस्कृति और पहचान का सम्मान किया जाता है। आंचलिकता और राष्ट्रीयता के बीच संतुलन बनाए रखना महत्वपूर्ण है। न तो आंचलिकता को इतना अधिक महत्व दिया जाना चाहिए कि वह राष्ट्रीय एकता में बाधक बने, और न ही राष्ट्रीयता को इतना अधिक महत्व दिया जाना चाहिए कि वह आंचलिकता की उपेक्षा करे। आंचलिकता और राष्ट्रीयता दो पृथक संकल्पनाएं है। वैसे देखा जाए तो एक में सीमितता और दूसरी में व्यापकता। इसी समझ के परिणाम स्वरूप अनेक एकांगी धारणाएं प्रचलित चुकी है। इस दृष्टि से आंचलिकता के व्यापक परिदृश्य को समझना अनिवार्य है।

आंचलिकता विश्व साहित्य का एक महत्वपूर्ण प्रदेय रही है। इस प्रवृत्ति के उद्‌भव के पीछे राजनीतिक, सामाजिक जागरणा, व्यक्तिवाद और कृत्रिमता का विरोध, जटिल परिवशः पतनोन्मुख राजनीति, सांस्कृतिक विघटन, राष्ट्रीयता का क्षय, प्रांतीय अस्मिता, नई संवेदना, प्रकृति के प्रति रुझान, पिछड़े जीवन का उद्‌घाटन, लोकसंस्कृति का अन्वेषण आदि कारण प्रधान रहे है। यह प्रतिक्रिया, अनुकरण या फैशन न होकर एक संर्जनात्मक पहल है। "आचलिकता साहित्य की यह प्रवृनि है जहां किसी अचल विशेष की प्राकृतिक पाश्वभूमि में वर्ग का समग्र लोकजीवन अपनी सपूर्ण गतिशीलता एवं मानवीय चेतना के साथ स्थानीय बोली के माध्यम से सजीव रूप में वर्णित हाता है।"[1] यह मूलतः विशेषीकरण की प्रक्रिया है। इसमें वर्णित क्षेत्र का सपूर्ण व्यक्तित्व उभर आता है। यह उस क्षेत्र का मात्र निरा भूगोल नहीं अपितु लोकजीवन एवं लोकसस्कृति का व्यापक दस्तावेज होती है। दूसरी ओर राष्ट्रीयता एक व्यापक अभिधान है। भौगोलिक, जातीय भाषायी, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं धार्मिक एकता राष्ट्रीयता के पोषक तत्व है। राष्ट्रीयता में व्यापक क्षेत्र की सामूहिक जीवन प्रणाली अंतर्भूत है। मूलतः राष्ट्रीयता किसी एक क्रिया से द्योतीत नहीं होती अपितु इसके अंतर्गत वे समस्त क्रियाकलाप आते है, जो किसी देश की संपूर्ण तसवीर उभारने में सहायक होते है। पूर्वग्रह मुक्त दृष्टी एवं एकांगी मानसिकता को त्यागकर आंचलिकता और राष्ट्रीयता पर विचार करना जरूरी है। मूलतः इन दोनों में गहरा एवं पूरक रिश्ता है। भारतीय परिवेश के परिप्रेक्ष्य में तो यह अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

भारत एक खंडप्रायः देश है। विभिन्न अचल. गाँव, प्रदश और नगर मिलकर सपूर्ण देश का निर्माण हुआ है। इन विभिन्न स्थाना में स्थित जीवन प्रणाली में पृथकता पाई जाती है। लेकिन प्राकृतिक सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि विभिन्नताओं के वावजूद भारत में एक अनूठी एकता विद्यमान है। विविधता है ना नात्र ऊपरी। हमारी एकता सताती नाहीं बल्कि अंदरूनी है। हम भारतीय वेशभूषा में नहीं ह्रदय से हैं। हम पहले भारतीय है तत्पश्चात महाराष्ट्रीयन पंजाबी, बंगाली, बिहारी आदि। आंचलिकता को लेकर भी यही बात है। जिस प्रकार नदी सागर में लीन होकर अपना निजत्व खो देती है उसी प्रकार आंचलिकता भी आरंभ में अपनी विशिष्टता रखते हुए अततः भारतीयता में लीन होती है। अतः आचलिकता राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय एकता में बाधक नहीं होती है। 'आंचलिकता वस्तृतः हमारी समसामायिक राष्ट्रीयता के अधिक निकट है। अनेक भूखंड, प्रात, धर्म, भाषा, संस्कार संस्कृति, जातिवर्ग से निर्मित भारत अनेकता में एकता के कारण ही अन्य राष्ट्रों से भिन्न है तथा लोकतंत्र का उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करता है। यह आलिकता राष्ट्र के खंड–खंड़ को आत्मसात कर सपूर्ण राष्ट्र के समग्र विराट आयाम को पूर्णतः ग्रहण करने में सहायक सिद्ध हाती है।'[2] विभिन्न अंचलों की लोकसंस्कृति भारतीय सस्कृति की मूल धरोहर है। यह लोकसंस्कृति अपनी अनूठी पहचान रखती है। इस दृष्टि से देश के पिछड़े आंचल हमारी सास्कृतिक धरोहर के भव्य स्मारक है।

पृथकता के बावजूद अंचलों की लोकसंस्कृति में एक समान स्रोत विद्यमान है। संस्कृति किसी भी राष्ट्र के लिए प्राण वायु के समान होती है। आज हमारी सांस्कृतिक पहचान धुंधली हो रही है। एक त्रिशंकू संस्कृति पनप रही है। आधुनिकता के नाम पर अंधानुकण बढ़ रहा है। देश संस्कृतिक विघटन से गुजर रहा है। भावात्मक एकता खतरे में है। इस दृष्टि से आंचलिक अस्मिता महत्वपूर्ण है। अंचलों ने भावात्मक एकता और भारतीय संस्कृति को अछूते कौमार्य की भांति सुरक्षित रखा है। आज इसकी सुरक्षा, अनुकरण एवं परिष्कार जरूरी है। भावात्मक एकता स्थापित करने में आंचलिकता महत्वपूर्ण कार्य कर सकती है। खंड–खंड में स्थित अस्मिता को अखंडता में पिरोने की क्षमता निःसंदेह आंचलिकता में है। इसमें एक पदार्थ विश्वव्यापी मानसिकता स्थित है।

मूलतः आंचलिकता व्यष्टि सत्य नहीं अपितु समष्टि सत्य की समर्थक होती है। इसका उद्‌भव ही व्यक्तिवादी साहित्य के विरोध के रूप में हुआ है। इसमें एक विशिष्ट क्षेत्र, समाज वा जाति की समग्र जीवन प्रणाली का अंकन होता है। जो देश का ही एक महत्त्वपूर्ण घटक होता है। इसमें सामूहिकता, समाज केंद्रीयता, जनचेतना, यथार्थ, लोक जीवन और लोक–सस्कृति को व्यापक धरातल पर परिभाषित किया जाता है। क्या यह तत्व राष्ट्रीयता में बाधक है? भाषा की दृष्टि में मात्र आचलिकता सर्वग्राह्य और परिनिष्ठित भाषा से परहेज रखती है। लेकिन आचलिक भाषा या बोलियां मूलत राष्ट्रभाषा की विरोधी नहीं होती है। भारतीय परिवेश के परिपक्ष्य में तो इन आचलिक भाषाओं ने हिंदी को एक नई अर्थवत्ता, गरिमा एवं सौंदर्य प्रदान किया है। इसी कारण राम नारायण उपाध्याय मानते है, "लोकभाषाएं सहायक नदी की तरह अपने दोनों कूल किनारों से विपुल शब्द संपदा,गीत,कथा और कहावतों को लेकर राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय एकता को संपन्न बनाने में अपना योगदान देती आयी है।"[3] लोकभाषा अर्थात स्थानीय भाषा जीवित होती है। उसके बिना लोकमानस और लोकचेतना की अभिव्यक्ति असंभव है।

आंचलिकता पर वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव, भावात्मकता, आदर्शवाद, सकुचित प्रवृत्ति, राष्ट्रीयता में बाधक आदि आरोप लगाए जाते है। लेकिन यह मान्यताएं एकांगी और पूर्वग्रहदूषित है। आंचलिकता राष्ट्रीयता का कतई

विरोध नहीं करती है। अंचलो का गहराई से से अन्वेषण करने पर उसमें राष्ट्रीयता की जडे मिलती है। लोकजीवन और लोकसंस्कृति राष्ट्रीयता का मेरुदंड है। इसमें गहरे रागबोध, सांप्रदायिक सौहार्दता, भावात्मक एकता, जातीय एकता और सास्कृतिक धरोहर मिलती है। यह जीवन एवं संस्कृति भावात्मक एकता की दृष्टि महत्वपूर्ण पहल साबित हो चुकी है। अनेकता में एकता का भावात्मक रूप लेकर ही अंचलिकता अवतरित होती है। आंचलिकता न खंड–खंड में बिखरी हुई संस्कृति के एकीकरण का महत्वपूर्ण कार्य किया है। राष्ट्रीयता के बीजवपनहेतु उसकी भूमिका महत्वपूर्ण है। स्वतंत्रता आंदालन में विभिन्न आंचलों का योगदान इसका प्रमाण है। आंचलिकता ने उपेक्षित एवं पिछड़े तबको के जीवन स्पंदनों को वाणी देने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। इन पिछडे क्षेत्रों का जीवन विभिन्न संदर्भ में उल्लेखनीय है। इनमें नैतिकता, मूल्य, मानवियता एवं उदात्त जीवन दर्शन का एक अनूठा कोश शेष है। "आचलिक जीवन अनूठा होने के कारण कटा हुआ नहीं लगता। अंत में संवेदय रूप धारण करके हमसे अभिन्न हो जाता है। एक अंचल विशेष की नियति समग्र विश्वक्रम का निर्देश कर सकती है। ऑथेन्टिसिटी के बिंदूतक पहुंचकर वर्तुल बनाती है।"[4]

अतः यह स्पष्ट है कि आंचलिकता राष्ट्रीयता की विरोधी नहीं है। उसके माध्यम से राष्ट्रीयता कीभावना सघन और सौंदर्यमयी बनती है। आंचलिकता के भीतर इतिहास, संस्कृति, चेतना, निष्ठा आदि के के मूल संदर्भ मिलते है।

सारांशत : आंचलिक अस्मिता, अंचल प्रेम, अंचल के प्रति निष्ठा, सहानुभूति, प्रगति की कामना, बनों के प्रति प्रेम यह राष्ट्रीयता का ही लघु संस्करण है। यदि हम अपने गाँव को सुंदर रख सकते है तो देश अपने अपने आप सुंदर बन जाता है। देशप्रेम, देशभक्ति, राष्ट्रीयता पर बड़ी–बड़ी बात करना आसान है। लेकिन जरूरी है पहल। उपदेश या कथनी की अपेक्षा आचरण और करनी महत्वपूर्ण है। आंचलिकता ने भाषाई और समाजशास्त्रीय विवचन की नई दिशाएं खोल दी है। उपेक्षितों के जीवन प्रणाली की माहित्यिक मंच पर स्थापना की है। पिछडे लोंगों के जीवन का विकास भी महत्वपूर्ण है। अन्यथा सपूर्ण विकास का दावा व्यर्थ है। और राष्ट्रीयता को यह अपेक्षित नहीं है। आंचलिकता ने साहित्य में भारतीयता का अंकन करने का महत्वपूण कार्य किया है। लेकिन यह भी महत्वपूर्ण है कि आंचलिकता के एकांगी आग्रह से बचना चाहिए। एकांगीता में प्रांतीयता की सकीर्ण मनोवृति पैदा हो सकती है। साथ ही रचनाकार युगीन समस्याओं से परावृत्त होने का खतरा है। अतः आचलिकता की यात्रा लोकचेतना से आरंभ होकर राष्ट्रीय चेतना तक पहुंचनी जरूरी है। आंचलिकता का राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में विकास होने पर उसके द्वारा व्यापक चेतना का निर्माण होगा और एक समग्र राष्ट्रीय चेतना विकसित होगी।

संदर्भ :–

1. डॉ. ह.के. कडवे, हिंदी उपन्यासों में आंचलिकता की प्रवृति, पृ. 27
2. डॉ. सुपमा प्रियदर्शनी, हिंदी उपन्यास, पृ. 81–82
3. सं. महावीर अग्रवाल, साक्षेप अगस्त– दिसंबर 1986, पृ. 202
4. रघुवीर चौधरी, आंचलिक और आधुनिकता, पृ. 47

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 243–247

Study of Kinetics and Mechanism of Ligand Substitution Reaction of Tetraaza Macrocyclic Ligand with Tridentate Schiff Base Dianionic Ligand in Copper(II) Complexes

Dr. Ramdas Narsingrao Katapalle

Late Shankarrao Gutte Gramin ACS College, Dharmapuri, Tq-Parli (v) Dist-Beed Pin-431515

Abstract: The kinetics of the ligand exchange reaction between the tetraaza macrocycle, $N_4{\cdot}2HClO_4$ (where $N_4{\cdot}2HClO_4$ is *5,7,7,12,14,14*-Hexaniethyl-*1,4,8,11* tetraazacyclo tetradeca-*4,11* diene dihydrogen perchlorate) and CuLX complexes, where L is N-(2-carboxy phenyl)salicyliden imine a tridentate Schiff base dianionic ligand and X is a neutral monodentate ligand have been studied by visible spectrophotometry in dimethylformamide, DMF, solvent at 25 ± 0.2 °C and an ionic strength of 0.1 M $NaClO_4$. The kinetics of the ligand exchange reaction were studied under pseudo-first-order with $[N_4{\cdot}2HClO_4]$ >> [CuLX] by measuring the absorbance changes at 700 nm, corresponding to the maximum difference in molar absorptivity between reactants and products. Under these conditions, the reaction was found to proceed via a two-step process (biphasic reaction). Therefore, two rate constants kobs(1) and kobs(2), were obtained. The first step was rapid and dependent on the macrocycle concentration, $[N_4{\cdot}2HClO_4]$, whereas the second step was not significantly affected by $[N_4{\cdot}2HClO_4]$ and is the determining step. A mechanism consistent with these results is proposed.

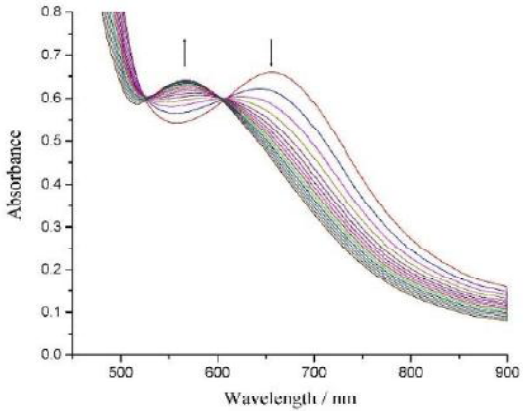

Keywords: Kinetic, Macrocyclic ligand, Cu(II) complexes, Ligand Substitution, Schiff base

1. INTRODUCTION

Macrocyclic complexes exhibit significantly enhanced thermodynamic and kinetic stability compared to their acyclic analogues, which is known as the macrocyclic effect. These ligands often impart unique properties such as high selectivity, kinetic inertness, and structural rigidity, which are challenging to achieve with analogous non-cyclic chelating systems.[1-6] Thermodynamically, macrocyclic ligands typically form complexes with higher formation constants (log K) than their non-cyclic counterparts. This indicates a thermodynamic driving force favoring the displacement of acyclic by macrocyclic.[7-10]

In particular, Cu(II) macrocyclic complexes exhibit greater kinetic inertness towards ligand substitution than their open-chain analogs. Understanding exchange mechanisms offers valuable insights for ligand design, metal ion selectivity, and the modulation of reactivity in biomimetic and catalytic Cu(II) systems.[11-14]

In previous studies, we reported on the kinetics of metal exchange[14,15] and ligand exchange in copper complexes with tri- and tetradentate Schiff base ligands.[14,16-20] This article extends our investigations to explore the ligand exchange reaction between L and X in CuLX (where L is a tridentate Schiff base ligand and X is a neutral monodentate ligand) and the tetraaza macrocyclic ligand, $N_4H_2{\cdot}2ClO_4$ (reaction 1, Scheme 1).

$$CuLX + N_4{\cdot}2HClO_4 \rightarrow CuN_4(ClO_4)_2 + HL + HX \quad (1)$$

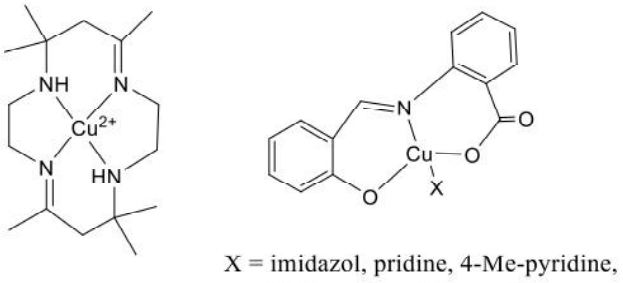

$CuN_4(ClO_4)_2$

X = imidazol, pridine, 4-Me-pyridine, 3-Me-aniline, 4-Me-aniline

CuLX

Scheme 1

2. EXPERIMENTAL

Reagents

All chemical reagents and solvents used in the syntheses and kinetic studies were purified by standard methods.

The tridentate Schiff base ligand (HL), and the Macrocycle ligand $N_4H_2.2ClO_4$ were synthesized according to the method literature procedures.[21,22]

The copper(II) complexes, CuLX (X = imidazole, **1**, pyridine, **2**, 4-methyl pyridine, **3**, 3-methyl aniline, **4**, 4-methyl aniline, **5**) were synthesized by the method Patel.[23] The macrocyclic complex $[CuN_4](ClO_4)_2$ was prepared by a method similar to that described by Sadasivan [24]. The compositions of the ligands and complexes were confirmed by elemental analysis, FT-IR, and UV–Vis spectroscopy.

Infrared spectra were recorded using a Bruker Equinox 55 FT-IR spectrometer with KBr pellets in the 400-4000 cm^{-1} range. Absorption spectra were determined in the solvent of dimethylformamide (DMF) using GBC UV-Visible Cintra 101 spectrophotometer with 1 cm quartz, in the range of 300-900 nm. Elemental analyses (C, H, N) were performed by using a CHNS-O 2400II PERKIN-ELMER elemental analyzer.

Kinetic measurements

Kinetic studies of the ligand exchange reactions were carried out on a GBC UV-Visible Cintra 101 spectrophotometer. The experiments were conducted in dimethylforamide, DMF, an aprotic polar solvent, under pseudo-first order conditions with an excess of the $N_4H_2.2ClO_4$ macrocycle. The ionic strength was maintained at 0.1 M using $NaClO_4$, and the temperature was controlled at 25±0.2 °C. The reaction progress was monitored by tracking the decrease in absorbance at 700 nm, where the spectral difference between the CuLX complexes and the final product, $CuN_4(ClO_4)_2$, is greatest.

Reactions were initiated by rapidly mixing equal volumes (1 mL each) of a stock solution of the Cu(II) complex (CuLX) in DMF with a solution containing $N_4H_2{\cdot}2ClO_4$ and $NaClO_4$ in a 1 cm path length cuvette. The absorbance at 700 nm was recorded as a function of time. At least three independent runs were performed for each concentration.

The observed rate constants, k_{obs} values were determined by fitting the absorbance versus time data to exponential functions using *Sigmaplot 12.0* software. The data tested against equations for an irreversible first-order reaction (eq. 2), a biphasic reaction (eq. 3), and a triphasic reaction (eq. 4) to identity the best fit:[5,25]]

$$A = a_1 \exp[-k_{obs}(1)t] + A_\infty \quad (2)$$

$$A = a_1 \exp[-k_{obs}(1)t] + a_2 \exp[-k_{obs}(2)t] + A_\infty \quad (3)$$

$$A = a_1 \exp[-k_{obs}(1)t] + a_2 \exp[-k_{obs}(2)t] + a_3 \exp[-k_{obs}(3)t] + A_\infty \quad (4)$$

where a_1 and a_2 are pre-exponential factors composed of rate constants and molar absorptivities.

$$a_1 = \varepsilon_A[A]_0 + \frac{\varepsilon B[A]0k1}{k2-k1} + \frac{\varepsilon C[A]0k2}{k1-k2}$$

$$a_2 = \frac{k1[A]0(\varepsilon B-\varepsilon C)}{k1-k2}$$

The rate constants k, were obtained by plotting k_{obs} versus $[N_4H_2.2ClO_4]$ and analyzing the data with Sigmaplot 12.0.

3. Results and discussion

Absorption Spectra

The visible absorption spectra of CuLX (X = imidazole, **1**, pyridine, **2**, 4-methyl pyridine, **3**, 3-methyl aniline, **4**, 4-methyl aniline, **5**) and $CuN_4(ClO_4)_2$ complexes in DMF solvent exhibit d–d transition maximum absorption at approximately 700 and 523 nm, respectively (Figure 1, Table 1). This spectral difference allowed for monitoring the ligand exchange reaction between CuLX and $N_4H_2.2ClO_4$ (reaction 1).

Table 1. Maximum absorption Cu complexes, in DMF

Complex	λ_{max}, nm (ε, $M^{-1}{\cdot}cm^{-1}$)
CuL(imidazole), **1**	661 (116)
CuL(pyridine), **2**	703 (137)
CuL(4-Me-pyridine), **3**	715 (135)
CuL(3-Me-aniline), **4**	708 (274)
CuL(4-Me-aniline), **5**	714 (248)
$CuN_4(ClO_4)_2$	523 (124)

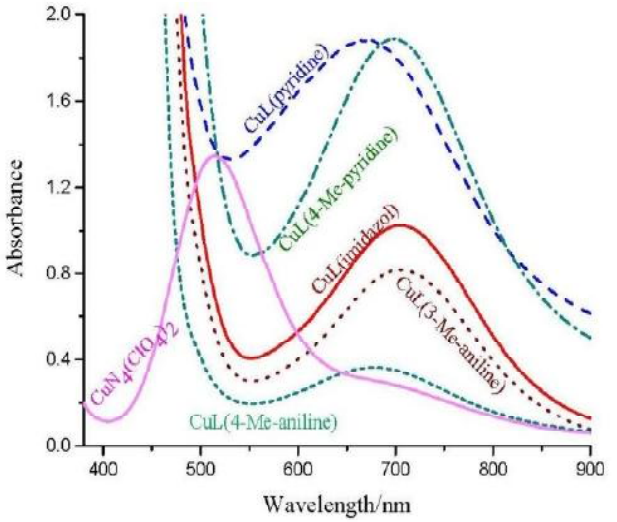

Figure 1. Visible spectra of CuLX, and $CuN_4(ClO_4)_2$ complexes in DMF.

Figure 2 shows the sequential spectral changes during the ligand exchange reaction for complex **1**, CuL(imidazole), with an equimolar concentration of $N_4H_2.2ClO_4$ in DMF. A marked decrease in absorption at about 700 nm and a concurrent increase at 523 nm are observed relative to the initial CuLX spectrum. The final spectrum matches that of an authentic $CuN_4(ClO_4)_2$ complex in DMF. Thus, results confirm the conversion of complexes **1-5** to $CuN_4(ClO_4)_2$ complex upon addition of the $N_4H_2.2ClO_4$ ligand (reaction 1). Therefore, the absorbance decrease at about 700 nm was used to study the reaction kinetics.

The observed spectral changes indicate that $[CuN_4]^{2+}$ is thermodynamically more stable than the CuLX complexes. This conclusion was further supported by the observation that the reverse reaction (conversion of $CuN_4(ClO_4)_2$ to the

CuLX) does not occur under the studied conditions. Thus, the reaction proceeds irreversibly from CuLX to $CuN_4(ClO_4)_2$, consistent with the greater stability typical of complexes.

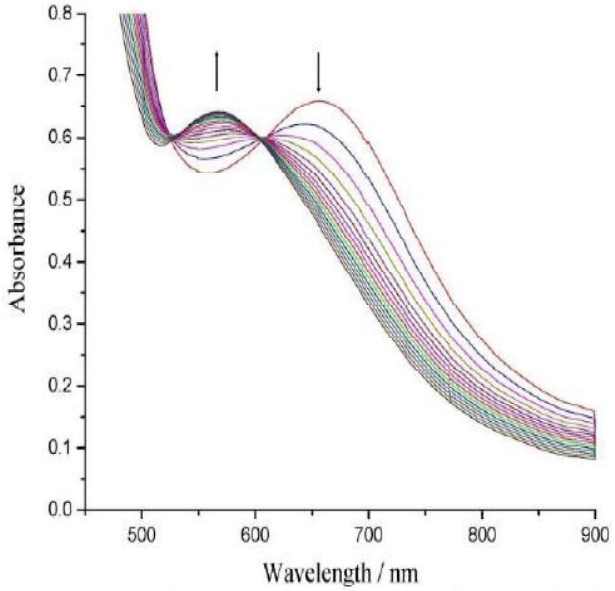

Figure 2. Spectral changes recorded in DMF solvent for the reaction of CuL(imodazol), **1** (1.40×10^{-2} M)/ $N_4{\cdot}2HClO_4$ (21.00×10^{-2} M) system

Kinetic study

Rate constants for ligand exchange reaction were obtained under the pseudo-first-order conditions ($[N_4H_2.2ClO_4] >> [CuLX]$) with varying excess concentrations of the macrocycle. The reactions were monitored by following the absorbance decrease at 700 nm. A typical absorbance versus time plot at this wavelength is shown in Figure 3. The conversion of CuLX to $CuN_4(ClO_4)$ a biphasic reaction model best described 2. Consequently, two rate constants $k_{obs}(1)$ and $k_{obs}(2)$, were obtained by fitting the data to equation 3. The first-step reaction was fast, while the subsequent step was slower (i.e. $k_{obs}(1) > k_{obs}(2)$). The dependence of these rate constants on the concentration of $N_4H_2.2ClO_4$ was also invetigated. Figure 4 shows that $k_{obs}(1)$ increases linearly with $[N_4H_2.2ClO_4]$, while $k_{obs}(2)$ remain constant. Therefore, it can be written:

$$k_{obs}(1) = k_1 [N_4H_2.2ClO_4] \qquad (5)$$

The rate constant of the second-step reaction can be expressed as

$$k_{obs}(2) = k_2 \qquad (6)$$

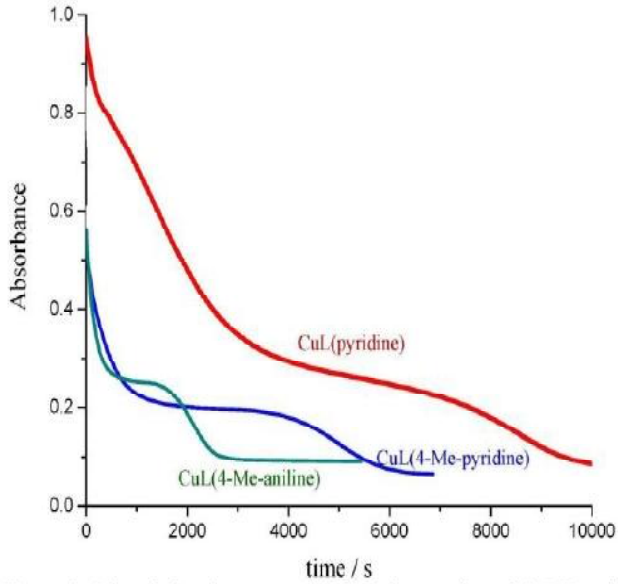

Figure 3. Plot of absorbance vs. time for the reaction of CuLX and $N_4{\cdot}2HClO_4$ recorded in DMF solvent.

Table 2 summarizes the rate constants for complexes **1-5**.

Table 2. Rate constants data for the reaction of complexes **1-5** with the $N_4.2HClO_4$ ligand

complex	$k_1 \times 10^1$ /$M^{-1}{\cdot}s^{-1}$	$k_2 \times 10^2$ / s^{-1}
CuL(imidazole), **1**	4.00 ± 0.14	2.86 ± 0.06
CuL(pyridine), **2**	6.77 ± 0.61	1.95 ± 0.03
CuL(4-Me-pyridine), **3**	9.88 ± 0.91	1.81 ± 0.03
CuL(3-Me-aniline), **4**	2.99 ± 0.14	3.56 ± 0.02
CuL(4-Me-aniline), **5**	9.58 ± 0.45	2.11 ± 0.08

Proposed mechanism

As shown in Figure 2, there are two isosbestic points for $CuLX/N_2H_2.2ClO_4$ system, indicating that the CuLX converts to the $CuN_4(ClO_4)_2$ without releasing free Cu^{2+} ions,[5,25,26] which would exhibit a distinct spectrum. Ligand exchange reactions between polydentate ligands typically proceed via intermediates where the incoming ligand is partially coordinated to the metal center and the leaving ligand is partially dissociated.[25,27] Furthermore, the linear dependence of $k_{obs}(1)$ on $[N_4H_2.2ClO_4]$ with a zero intercept (Figure 4) confirms the reversibility of the reaction does not take place and also the negligible contribution of solvent to the overall rate.

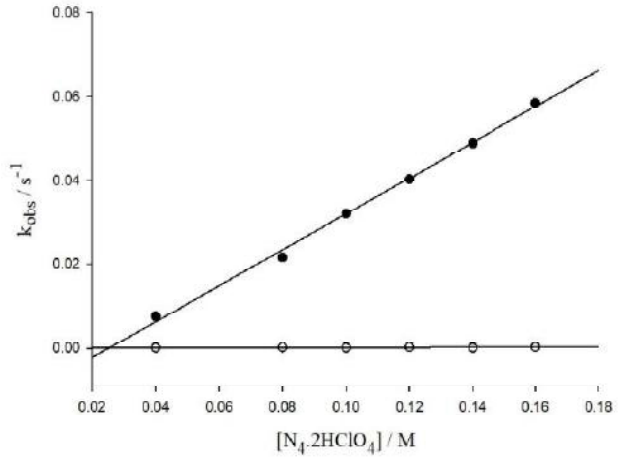

Figure 4. Plot of the rate constants $k_{obs}(1)$, ● and kobs(2), ○ vs. N_4·2HClO$_4$. for CuL(4-Me-aniline) complex.

Based on equation 5, the first step likely involves the fast cleavage of the Cu-X bond in the CuLX, followed by coordination of a nitrogen atom from the macrocycle to the copper center and a proton transfer from N_4H_2·2ClO$_4$ to the X ligand (Scheme 2). This step, with rate constant k_1 results in the formation of an intermediate species CuL.N4H.2ClO4. The dependence of this step on both reactant concentration and the nature of the X ligand supports a mechanism involving associative adduct formation, Consistent with previous studies on ligand exchange in transition metal complexes.[13,17,18,27]

The second-step is an intramolecular process independent of the macrocycle concentration, N_4H_2·2ClO$_4$ and is slower than the first-step (RDS). We propose that this step with rate constants k_2 (which is similar for all CuLX complexes), involves dissociation of the tridentate Schiff base ligand (L) and complete coordination of the macrocycle (Scheme 2). The consistent values of k_2 across different X ligands support this mechanism. As this step is slower than the first step, it controls the overall reaction rate and is considered the rate-determining step.

4. CONCLUSION

The kinetics of the ligand exchange reaction between CuLX complexes and the tetraaza macrocyclic ligand N_4.2HClO$_4$ were studied by visible spectrophotometry in DMF solution under pseudo-first-order conditions. Experimental data were fitted to exponential functions using a non-linear least-squares method. The reaction was found to be a two-step process, a fast first step dependent on the tetraaza macrocycle concentration, and slow step, concentration-independent second step. The ligand exchange reaction in the system CuLX/N_4·2HClO$_4$ system confirmed that the CuLX complexes are thermodynamically less stable than the $[Cu(N_4)]^{2+}$ complex.

CONFLICTS OF INTEREST

The authors declare that they have no known competing financial interests or personal relationships that could have appeared to influence the work reported in this paper.

ACKNOWLEDGMENTS

The authors are grateful to Yazd University for partial support of this work.

REFERENCES

1. D. W. Fitzpatrichk, H. J. Ulrich, *Macrocyclic Chemistry: New Research Developments*, Nova Science Publishers, Inc. New York, **2010**.
2. M. A. Soto, M. J. MacLachlan, *Chem. Sci.,* **2024**, *15*, 431-441.
3. Z. Garda, E. Molnár, N. Hamon, J. L. Barriada, D. Esteban-Gómez, B. Váradi, V. Nagy, K. Pota, F. K. Kálmán, I. Tóth, N. Lihi, C Platas-Iglesias, É. Tóth, R. Tripier, G. Tircsó, *Inorg. Chem.*, **2021**, *60,* 1133-1148.
4. M. Rezaeivala, *Inorg. Chem. Res.,* **2017**, *1*, 85-92.
5. R. G. Wilkins, *Kinetics and Mechanism of Reactions of Transition Metal Complexes*, 2th edn., Wiley, New York, USA, **2002**.
6. Z. Baranyai, G. Tircsó, Frank Rösch, *Eur. J. Inorg. Chem.*, **2020**, 36-56.
7. S. Camorali, A. Nucera, M. Saccone, F. Carniato, M. Botta, F. Blasi, Z. Baranyai, L. Tei, *Inorg. Chem. Front.,* **2025**, *12,* 4856-4869.
8. Y. Deng, Z. Lu, S. K. M. Lai, M. P. Tang, X. Mo, S. He, D. L. Phillips, E. C. M. Tse, H. Y. Au-Yeung, *Chem. Xxiv.* **2025**, *2.*
9. G. ChakaL. A. Ochrymowycz, D. B. Rorabacher, *Inorg. Chem.,* **2005**, *44,* 9105-9111.
10. A. Zamanpoura, M. Asadia, G. Absalana, *Inorg. Chem. Res.,* **2016**, *1,* 59-68.
11. R. Hamedani, H. Golchoubian, A. Shirvan, *Inorg. Chem. Res.,* **2024**, *8,* 24-31.
12. M. Barwiolek, D. Jankowska, A. Kaczmarek-Kedziera, I. Lakomska, J. Kobylarczyk, R. Podgajny, P. Popiclarski, J. Masternak, M. Witwicki, T. M. Muzioł, *Int. J. Mol. Sci.*, **2023**, *24,* 3017-3040.
13. M. Javadian, H. Golchoubian, *Inorg. Chem. Res.,* **2023**, *7,* 82-87.
14. R. Vafazadeh, A. R. Shiralinia, *Inorg. Chem. Res.,* **2022**, *6,* 170-175.
15. R. Vafazadeh, F. Gholami, *Acta Chim. Slov.,* **2010**, *57,* 746–750.
16. S. A. Hashemi, R. Vafazadeh, *World J. Appl.Chem.,* **2018**, *3,* 92-98.

17. R. Vafazadeh, S. Bidaki, *Acta Chim. Slov.,* **2010**, *57,* 310-317.
18. R. Vafazadeh, S. Bidaki, *Acta Chim. Slov.,* **2014**, *61,* 153-160.
19. R. Vafazadeh, M. Bagheri, *S. Afr. J. Chem.,* **2015**, *68,* 21-26.
20. R. Vafazadeh, G. Zare-Sadrabadi, *Acta Chim. Slov.,* **2015**, *62,* 889-894.
21. G. Asgedom, A. Sreedhara, J. Kivikoski, C. P. Rao, *Polyhedron.* **1997**, *16,* 643-651.
22. N. F. Curtis, R. W. Hay, *Chem. Commun.*, **1966**, 524-525.
23. R. N. Patel, N. Singh, V. L. N. Gundla, *Polyhedron.* **2006**, *25,* 3312-3318.
24. N. Sadasivan, J. F. Endicott, *J. Am. Chem. Soc.*, **1966**, *88,* 5468-5472.
25. S. Busse, H. Elias, J. Fischer, M. Poggemann, K. J. Wannowius, *Inorg. Chem.,* **1998**, *37,* 3999-4005.
26. H. Elias, S. Schwartze-Eidam, K. J. Wannowius, *Inorg. Chem.,* **2003**, *42,* 2878-2885.
27. G. V. Rao, R. Bellam, N. R. Anipindi, *Transition Met. Chem.,* **2012**, *37,* 189-196.
28. R. W. Hay, M. M. Hassan, *J. Coord. Chem.* **1996**, *37,* 271-281.

Email - ramdaskatapalle@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 13, Issue 5-6
पृष्ठ : 248–254

Reimagining Teacher Education : The Transformative Impact of NEP 2020

Harsh

Assistant Professor, B.K. College of Education, Bawani Khera

Abstract :

The National Education Policy (NEP) 2020 introduces transformative reforms in teacher education to enhance professional competency, digital integration, and inclusivity. A key initiative is the 4-year integrated B.Ed. program, aimed at strengthening pre-service teacher training. The introduction of the National Professional Standards for Teachers (NPST) sets clear benchmarks for teacher competency and career progression. Additionally, the policy mandates 50 hours of Continuous Professional Development (CPD) annually, ensuring that educators remain updated with innovative pedagogies and subject expertise. NEP 2020 also promotes technology-driven teacher education, encouraging the use of digital learning platforms, AI tools, and blended learning models. Initiatives like DIKSHA, NISHTHA, and SWAYAM have been launched to facilitate self-paced professional growth. By focusing on multidisciplinary and experiential learning, the policy aims to create skilled, adaptive, and future-ready educators. This paper examines the impact of NEP 2020 on teacher education, highlighting its key reforms and their significance. While the policy envisions a modernized and competency-based teacher training framework, its effective implementation remains a challenge. Addressing issues related to infrastructure, accessibility, and policy execution will be crucial in realizing its full potential.

Keywords : Teacher Education, NEP 2020, Professional Development, NPST, Digital Learning, Pedagogical Innovation.

Introduction :

Teacher education serves as the foundation of a strong education system, ensuring that educators are well-equipped with the knowledge, skills, and pedagogical competencies necessary for effective teaching. Recognizing the need for a systematic

and structured approach to teacher training, the National Education Policy (NEP) 2020 introduces comprehensive reforms to enhance teacher education, professional development, and career progression (Kumar, 2021). By integrating innovative pedagogical approaches, NEP 2020 envisions a transformative shift in teacher education that fosters creativity, adaptability, and student-centric learning. These reforms aim to bridge the gap between theoretical knowledge and practical application, ensuring teachers are better prepared for real-world classroom challenges. Moreover, the policy promotes competency-based learning, encouraging teachers to develop critical thinking, problem-solving abilities, and a deeper understanding of diverse learning needs.

A major reform under NEP 2020 is the introduction of the 4-year integrated B.Ed. program, replacing fragmented teacher education courses to provide rigorous pre-service training and subject specialization (MHRD, 2020). This initiative aims to improve teacher preparedness, classroom management skills, and subject expertise, ensuring higher teaching standards (Rao, 2023). Additionally, the National Professional Standards for Teachers (NPST) have been introduced to establish clear benchmarks for teacher competency, recruitment, and career advancement, fostering a culture of continuous learning (Singh, 2021).

To ensure ongoing professional growth, NEP 2020 mandates 50 hours of Continuous Professional Development (CPD) annually for teachers. This initiative focuses on updating educators with emerging pedagogies, digital tools, and subject-specific advancements, helping them adapt to changing educational needs (Patel & Verma, 2023). The integration of technology in teacher training is another significant aspect, with digital platforms such as DIKSHA, NISHTHA, and SWAYAM offering self-paced learning opportunities, online certifications, and AI-assisted teaching methodologies (Sharma, 2022). These efforts promote a blended learning model, ensuring flexibility and accessibility in professional development.

However, despite these promising reforms, the implementation of NEP 2020 in teacher education faces several challenges. Issues such as infrastructure gaps, digital access disparities in rural areas, and the need for systemic policy alignment pose hurdles to achieving the intended outcomes (Das & Roy, 2022). Furthermore, ensuring that all teacher education institutions comply with the new framework requires strong regulatory mechanisms and institutional collaboration.

This paper critically examines the impact of NEP 2020 on teacher education, analyzing its key reforms, challenges, and future implications. By evaluating how these transformations influence teacher preparation, professional growth, and student learning outcomes, this study aims to provide insights into the evolving teacher

education landscape in India and explore pathways for its effective implementation and long-term success.

Paradigm Shift and Impact of NEP 2020 on Teacher Education :

NEP 2020 has brought a transformational shift in teacher education, moving from a traditional, theory-based model to a modern, research-oriented, and technology-driven approach. The following table highlights this paradigm shift and its impact on teacher education:

Table 1: Paradigm Shift and Impact of NEP 2020 on Teacher Education

Traditional Teacher Education	Modern Teacher Education (NEP 2020)	Impact
Fragmented and outdated teacher training programs	Four-year integrated B.Ed. program	Ensures structured and multidisciplinary teacher preparation
Rote learning and theoretical approach	Experiential, inquiry-driven pedagogy	Encourages critical thinking and problem-solving skills
Limited classroom exposure	Internship-based practical training	Enhances real-world teaching competencies
Minimal use of technology in teaching	Digital learning, AI-driven assessments, and ICT integration	Prepares teachers for technology-enabled classrooms
No structured professional development	Mandatory Continuous Professional Development	Ensures lifelong learning and skill enhancement
Weak teacher eligibility and training standards Rigid, subject-specific curriculum	Stronger recruitment and training criteria Interdisciplinary, flexible, and vocationally integrated learning	Improves teaching quality and student outcomes Prepares teachers for diverse and holistic education approaches

This paradigm shift not only enhances teacher competency and professional growth but also ensures that educators can foster innovation, inclusivity, and critical thinking in classrooms. Through these reforms, NEP 2020 aims to build a future-ready

teaching workforce that can effectively contribute to India's vision of a knowledge-driven society.

Challenges in Implementing NEP 2020 in Teacher Education :

The implementation of NEP 2020 in teacher education is a transformative step towards improving the quality of education in India. However, several challenges hinder its effective execution. Addressing these challenges requires strategic planning, adequate resources, and a collaborative approach among policymakers, institutions, and educators.

- Lack of adequate infrastructure and resources in many teacher education institutions, particularly government-run colleges. These institutions often do not have modern technology, digital tools, and teaching resources, which limits the effectiveness of digital learning and resource-based teaching.
- Resistance to change among educators and institutions that are accustomed to traditional, lecture-based methods. Adapting to the new pedagogical approaches introduced by NEP 2020, such as integrating technology and inquiry-based learning, is difficult for many, delaying the transformation envisioned by the policy.
- Insufficient professional development and teacher training programs. While NEP 2020 emphasizes continuous professional development, many teachers lack access to adequate training in digital education and innovative pedagogies, making implementation challenging.
- Shortage of skilled trainers who can guide teachers in adopting new teaching methods. This shortage slows the training process and delays NEP 2020's implementation.
- Financial constraints prevent many institutions, especially in rural areas, from improving infrastructure, conducting teacher training programs, or integrating new technologies.

Difficult to align the traditional curriculum with the new interdisciplinary, flexible curriculum proposed by NEP 2020. Many institutions struggle to merge the existing curriculum with the policy's vision, causing confusion and disruption.

Future Strategies for Strengthening Teacher Education Under NEP 2020 :

To enhance teacher education under NEP 2020, several strategies need to be implemented to address existing challenges and improve the overall quality of training. Strengthening digital infrastructure and resources is essential to ensure that teacher training institutions have access to smart classrooms, e-learning tools, and technology-driven teaching aids. This will help in creating a future-ready educational

ecosystem for both teachers and students. Additionally, integrating artificial intelligence and data analytics can personalize learning experiences and track teacher progress effectively. Continuous professional development programs should focus on equipping educators with modern pedagogical techniques, digital literacy, and competency-based teaching approaches. A well-structured curriculum revamp is necessary to integrate interdisciplinary and skill-based learning, ensuring that teachers are prepared for dynamic classroom environments. Promoting interdisciplinary collaboration among educators will further enhance knowledge-sharing and the adoption of best teaching practices. Encouraging research and innovation in pedagogy will help in developing new teaching methodologies and promoting practical learning experiences. Collaboration with ed-tech companies, universities, and industry experts will facilitate knowledge exchange and provide exposure to emerging educational technologies. Policy support and adequate funding will play a crucial role in the effective implementation of these strategies, ensuring sustainable improvements in teacher education. Strengthening assessment and evaluation methods will further shift the focus from rote learning to holistic, skill-based assessments. By implementing these measures, teacher education can become more dynamic, inclusive, and future-ready, aligning with the vision of NEP 2020.

Figure 1 : *Key Future Strategies to Transform Teacher Education as per NEP 2020*

Government Initiatives for Strengthening Teacher Education Under NEP 2020 :

To ensure the successful implementation of NEP 2020 in teacher education, the government has introduced several initiatives aimed at improving teacher training, professional development, and digital learning. These initiatives focus on competency-based education, modern pedagogy, and skill enhancement to prepare future-ready educators. Additionally, they emphasize integrating technology in education, enhancing research opportunities, and aligning teacher education with global standards to meet the evolving needs of the education sector.

Table 2 : Key Government Initiatives in Teacher Education Under NEP 2020

Initiative	Description
NISHTHA (National Initiative for School Heads' and Teachers' Holistic Advancement)	A nationwide teacher training program designed to enhance pedagogical skills, leadership qualities, and subject expertise among educators.
DIKSHA (Digital Infrastructure for Knowledge Sharing)	A digital platform providing e-learning resources, teacher training modules, and interactive content to improve teaching-learning experiences.
ITEP (Integrated Teacher Education Programme)	A four-year B.Ed. program replacing traditional courses, focusing on a multidisciplinary and skill-based learning approach.
NPST (National Professional Standards for Teachers)	A framework establishing competency-based standards for teachers, ensuring continuous professional development and high-quality education.

Conclusion :

The implementation of NEP 2020 marks a transformative shift in teacher education, emphasizing quality, innovation, and inclusivity. By restructuring teacher training programs, integrating technology, and introducing competency-based learning, NEP 2020 aims to equip educators with the necessary skills to foster critical thinking and holistic development in students. Despite challenges such as resistance to change, infrastructural gaps, and the need for continuous professional development, the policy provides a roadmap for addressing these issues through structured government initiatives and strategic reforms. Moving forward, the success of NEP 2020 in teacher education will depend on its effective implementation, regular policy evaluation, and active collaboration among stakeholders. By embracing these reforms, India can build a future-ready teaching workforce capable of meeting the evolving needs of the education system and contributing to the vision of Viksit Bharat @2047.

Reference :

1. Aggarwal, R., & Mishra, S. (2022). Strengthening teacher education through policy reforms: An analysis of NEP 2020. *International Journal of Educational Development*, *25*(3), 55-72.
2. Bansal, K. (2023). The role of digital infrastructure in modern teacher training programs. *Indian Journal of Digital Education*, *12*(1), 34-47.
3. Das, P., & Roy, S. (2022). Challenges in implementing NEP 2020: A focus on teacher education. *Journal of Educational Reforms*, *15*(3), 45-62.
4. Gupta, L., & Mehta, D. (2021). The evolution of teacher education policies in India: A historical perspective. *Educational Policy Review*, *8*(4), 67-83.
5. Joshi, R. (2023). Impact of competency-based learning in teacher education under NEP 2020. *Global Journal of Teacher Education*, *11*(2), 22-39.
6. Kumar, A. (2021). Strengthening teacher education: The impact of NEP 2020. *International Journal of Pedagogical Studies*, *10*(2), 78-92.
7. MHRD (Ministry of Human Resource Development). (2020). *National Education Policy 2020*. Government of India.
8. Patel, R., & Verma, S. (2023). Continuous professional development and teacher education under NEP 2020. *Indian Journal of Teacher Education*, *18*(1), 112-128.
9. Prakash, S. (2022). Future directions for teacher education in India: A policy perspective. *Journal of Educational Innovations*, *9*(2), 88-101.
10. Rao, M. (2023). Integrated teacher education programs: A new approach under NEP 2020. *Asian Journal of Educational Research*, *7*(4), 56-73.
11. Roy, P., & Sen, I. (2022). Technology integration in teacher training: Opportunities and challenges. *Digital Learning Review*, *6*(1), 14-31.
12. Saxena, V. (2021). National Professional Standards for Teachers (NPST): A framework for quality education. *Journal of Teacher Development*, *12*(3), 98-115.
13. Sharma, T. (2022). Digital platforms in teacher training: The role of DIKSHA, NISHTHA, and SWAYAM. *Educational Technology Review*, *9*(2), 34-50.
14. Sharma, V., & Gupta, R. (2022). Multidisciplinary and experiential learning in teacher education: Insights from NEP 2020. *Global Education Review*, *14*(1), 21-38.
15. Singh, P. (2021). Implementing NEP 2020 in teacher education: Challenges and strategies. *Journal of Indian Education*, *35*(2), 56-74.
16. Srivastava, K. (2023). Reforming teacher education: The impact of NEP 2020 on professional growth. *Educational Leadership Review*, *17*(4), 90-107.
17. Verma, N. (2023). Pedagogical advancements and teacher competency in the NEP 2020 era. *Teaching and Learning Journal*, *19*(1), 62-79.
18. Yadav, R. (2022). Bridging the gap: Aligning teacher training with 21st-century skills. *Indian Journal of Educational Studies*, *16*(3), 44-58

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
HOD Hindi, Tantia University
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834

Gina Shodh SANGAM

A Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना शोध संस्थान भिवानी के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज भिवानी से छपवाकर कार्यालय 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2321:8037